हिन्दी भाषा शिक्षण

हिन्दी भाषा शिक्षण

[बी० एड०, बी० टी०, एल० टी० तथा बेसिक ट्रेनिंग कॉलेजों के विद्यार्थियों के लिए]

भाई योगेन्द्र जीत

एम० ए०, एम० एड०

प्राध्यापक

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कालेज,

दयालबाग, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर

हॉस्पिटल रोड, आगरा

पूज्य पिता

स्वर्गीय बख़शी भगवानदास जी

Retd. A. P. M. G.

को

अपने प्रयास का प्रथम पुष्प

सादर समर्पित

जिनके जीवन से

मुझ जैसे अनेकों व्यक्तियों को सदा आगे बढ़ने की

प्रेरणा

मिलती रही है

द्वितीय संस्करण के विषय में

दो शब्द

वर्ष प्रतिपदा (वैशाखी) के पुनीत अवसर पर "हिन्दी भाषा शिक्षण" का द्वितीय संस्करण प्रस्तुत करते हुए, आज मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इसका श्रेय जहाँ प्रेमी पाठकों तथा ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियों को है, वहाँ विनोद पुस्तक मन्दिर के सञ्चालकों को भी है जिनकी उत्तम व्यवस्था का ही यह परिणाम है कि लगभग एक वर्ष में ही प्रथम संस्करण समाप्त हो गया है।

इस संस्करण में पुस्तक को, पाठकों के लिए और भी उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। "नाटक की शिक्षा", "खेल द्वारा भाषा की शिक्षा" तथा "प्रौढ़ शिक्षा" नामक तीन नए अध्याय जोड़े गए हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी अध्यायों को संशोधित एवं परिवर्द्धित करके पूर्णतः नया स्वरूप प्रदान किया गया है। विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए प्रत्येक पाठ के अन्त में, भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गए प्रश्न भी दे दिए गए हैं। जो विद्यार्थी इस सम्बन्ध में और अधिक अध्ययन करना चाहें, उनके लिए अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची भी दे दी गई है।

आशा है अपने प्रस्तुत रूप में, यह पुस्तक हिन्दी भाषा में रुचि रखने वाले सभी लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी-प्रेमी तथा अन्य शिक्षा विशारद, इस पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने के लिए सुझाव देते रहेंगे।

दयाल बाग (आगरा) — भाई योगेन्द्र जीत

वर्ष प्रतिपदा (वैशाखी) २०१८ वि०

प्रथम संस्करण की भूमिका

भाषा की शिक्षा पर यद्यपि अनेकों पुस्तकें उपलब्ध हैं परन्तु या तो वे पाठ्य क्रम को दृष्टि में रखकर नहीं लिखी गईं अथवा उनकी भाषा और शैली इतनी दुर्बोध है कि ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी अपने थोड़े से समय में, उनसे पूरा पूरा लाभ नहीं उठा पाते । इस पुस्तक में इन कमियों को पूरा करने का प्रयास किया गया है । यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक बी० टी०, बी० एड०, एल० टी० तथा बेसिक ट्रेनिंग कालेजों के विद्यार्थियों के लिए ही, विशेष रूप से लिखी गई है परन्तु लेखक को आशा एवं विश्वास है कि अन्य शिक्षा प्रेमियों के लिए भी, इसमें पर्याप्त सामग्री मिलेगी । लेखक का प्रयास रहा है कि जहाँ तक सम्भव हो सरल, सुबोध भाषा में समस्त आवश्यक विषयों का स्पष्टीकरण हो । विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ पाठ संकेत तथा प्रश्न पत्र भी दे दिए गये हैं ।

मैं श्री बी० पी० जौहरी, प्रिंसीपल टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, दयालबाग (आगरा) का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को अच्छा बनाने में अनेकों सुझाव दिए हैं ।

वसन्त पंचमी के शुभ अवसर पर, मैं यह छोटी सी पुस्तक हिन्दी के अध्यापकों को, मंगल कामना के साथ भेंट करता हूँ । आशा है कि इनसे उनका योग्य मार्ग-दर्शन होगा ।

आगरा —भाई योगेन्द्र जीत

वसन्त पंचमी सं० २०१६ वि०

विषय-सूची

(१) भाषा और उसका अध्ययन १—८

भाषा क्या है ?

(i) भौतिक दृष्टिकोण

(ii) सामाजिक दृष्टिकोण

(iii) सांस्कृतिक दृष्टिकोण

भाषा एक सांकेतिक साधन है

भाषा का महत्व

भाषा का अध्ययन

भाषा के रूप

भाषा शिक्षण के उद्देश्य

(i) प्राथमिक कक्षाएं

(ii) माध्यमिक कक्षाएं

(iii) उच्च कक्षाएं

उद्देश्यों की पूर्ति

University Questions

(२) मातृभाषा और शिक्षा ९—१५

मातृ भाषा का बालक के जीवन में महत्व

सांस्कृतिक आधार

शैक्षणिक आधार

शिक्षा का माध्यम

कुछ आपत्तियाँ

मातृभाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ

University Questions

(३) मौखिक भाषा १६—२८

सामाजिक महत्व

मौखिक भाषा के उद्देश्य

वार्तालाप शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियाँ
(i) उपयुक्त वातावरण
(ii) अनुकरण
(iii) अभ्यास
वार्तालाप की विशेषताएं
वार्तालाप और भाषण
पाठशाला में वार्तालाप की शिक्षा का अभ्यास
अभ्यास के साधन
शुद्ध उच्चारण की शिक्षा
(i) उच्चारण भिन्नता
(ii) उच्चारण दोष के कारण
(iii) अशुद्ध उच्चारण का निराकरण
University Questions

(४) वाचन शिक्षण २६—४६

वाचन का जीवन में महत्व
वाचन के प्रकार
(i) सस्वर वाचन
(ii) मौन वाचन
वाचन और उसकी विशेषताएं
वाचन शिक्षण की विधियाँ
(i) स्वरोच्चार विधि
(ii) देखो और कहो विधि
(iii) अक्षर बोध विधि
(iv) अनुकरण विधि
(v) ध्वनि साम्य विधि
(vi) सामूहिक पठन विधि
(vii) भाषा शिक्षण यन्त्र विधि
(viii) साहचर्य्य विधि
(ix) वाक्य शिक्षण विधि
(x) कहानी विधि
वाचन शिक्षण से पूर्व
सामूहिक वाचन

वाचन शिक्षा का क्रम
· द्रुत वाचन
वाचन सम्बन्धी दोष और उन का उपचार
University Questions

(५) लिखना सिखाना ५०—६२

वाचन और लेखन
लेखन कला का महत्व
लेखन कला का विकास
लिपि की वैज्ञानिकता
नागरी लिपि की विशेषताएं
कुछ अन्य प्रचलित लिपियाँ
(i) रोमन लिपि
(ii) फारसी लिपि
क्या नागरी लिपि में परिवर्तन की आवश्यकता है ?
बालकों को लिखना कैसे सिखाया जाए ?
लिखना सिखाने के सम्बन्ध में कुछ नियम
लिखना सिखाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति
लिखावट के सम्बन्ध में कुछ अन्य बातें
University Questions

(६) व्याकरण की शिक्षा ६३—७३

भारतवर्ष में व्याकरण का अध्ययन
व्याकरण की परिभाषा तथा कार्य्य
व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में आधुनिक मत
व्याकरण शिक्षा पद्धति
(i) सूत्र विधि
(ii) भाषा संसर्ग विधि
(iii) सहयोग विधि
(iv) पाठ्यपुस्तक विधि
(v) प्रयोग विधि
व्याकरण की शिक्षा को सरस कैसे बनाया जाए ?
University Questions

(७) रचना शिक्षण ७४—८८

रचना का महत्व

रचना का अर्थ

रचना शिक्षण के सिद्धान्त एवं उद्देश्य

लिखित रचना की विशेषताएं

रचना शिक्षण विधियाँ

(i) प्राथमिक कक्षाओं के लिए

(ii) माध्यमिक कक्षाओं के लिए

(iii) उच्च कक्षाओं के लिए

रचना के अंग

रचना के भेद

रचना सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातें

रचना का पाठ्यक्रम

रचना संशोधन

University Questions

(८) नाटक की शिक्षा ८९—९९

हमारी नाट्य परम्परा

नाटक की परिभाषा

नाटक के उद्देश्य

नाटक शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा की दृष्टि से नाटक का महत्व

नाटक शिक्षा की विधियाँ

(i) व्याख्या प्रणाली

(ii) आदर्श नाट्य प्रणाली

(iii) प्रयोग प्रणाली

किस विधि को अपनाया जाए ?

नाटक पढ़ाने का क्रम

किस प्रकार के नाटक चुने जाएं ?

University Questions

(९) पाठ्यपुस्तक १००—१०९

पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता

पाठ्य पुस्तकों का उद्देश्य

पाठ्य पुस्तकों के प्रकार
पाठ्य पुस्तक के अपेक्षित गुण
सहायक पुस्तकों के आवश्यक गुण
पाठ्य पुस्तकों का चयन
लेखकों के लिए सुझाव
प्रकाशकों को सुझाव
पठन सामग्री
(i) प्रारम्भिक अवस्था
(ii) माध्यमिक अवस्था
(iii) उच्च माध्यमिक अवस्था
पाठ्य पुस्तकें और मुदालियर आयोग
University Questions

(१०) कविता का अध्यापन — ११०—१३२

कविता किसे कहते हैं ?
पद्य और कविता में अन्तर
गद्य और पद्य में अन्तर
छन्दोबद्ध कविता का क्रमानुसार विभाजन
(i) बाल गीत
(ii) वर्णनात्मक पद्य
(iii) साहित्यक रचनाएं
कविता का उद्देश्य
कविता का अध्यापक
कविता का चयन
कविता की प्रस्तावना
कविता का वाचन
काव्य शिक्षण पद्धति
कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न
काव्य में रुचि उत्पन्न करने के साधन
(i) अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता
(ii) सुभाषित प्रतियोगिता
(iii) समस्यापूर्ति
(iv) कवि सम्मेलन

(v) कवि जयन्ति
(vi) कवि समादार
University Questions

(११) खेल के द्वारा भाषा की शिक्षा १३३—१४२
खेल का वैज्ञानिक विवेचन
खेल की विशेषताएं
खेल की आदर्श परिभाषा
पाठशालाओं में खेल का महत्व
शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में खेलों का प्रयोग
हिन्दी भाषा की शिक्षा के लिए कुछ खेल
रचनात्मक कार्यों द्वारा भाषा की शिक्षा
University Questions

(१२) भाषा की शिक्षा और सहायक साधन १४३—१५१
भाषा शिक्षण में सहायक साधनों की आवश्यकता
प्रश्नों का प्रयोग
अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं
दृश्य-श्रव्य उपकरण
(i) पाठ्यपुस्तक
(ii) श्यामपट
(iii) फैल्ट बोर्ड
(iv) चित्र
(v) एपीडायसकोप
(vi) चल चित्र
(vii) रेडियो
(viii) टेलीविजन
(ix) ग्रामोफोन
(x) टेप रिकार्डर
University Questions

(१३) कहानी शिक्षा १५२—१५६
कहानी का महत्व
शिक्षा में कहानी का प्रयोग
कहानी शिक्षा के तीन अंग

कहानी सुनाना एक कला
कहानी सुनाने वाले अध्यापक की विशेषताएँ
कहानी का चुनाव
कहानी सुनाने का प्रयोजन
कहानी कैसे सुनाई जाए ?
विद्यार्थियों द्वारा कहानी कहलाना
विद्यार्थियों द्वारा कहानी लिखवाना
University Questions

(१४) वर्धा योजना और भाषा शिक्षण — १६०—१६४
नई तालीम का नयापन
वर्धा योजना में समवाय
क्रिया द्वारा सीखना
उद्योग के द्वारा भाषा की शिक्षा
मौखिक और लिखित कार्य
सामाजिक वातावरण के द्वारा भाषा की शिक्षा
प्राकृतिक वातावरण के द्वारा भाषा की शिक्षा
University Questions

(१५) प्रौढ़ शिक्षा — १६५—१७०
प्रौढ़ शिक्षा का महत्व
बालकों और प्रौढ़ों की शिक्षा में अन्तर
प्रौढ़ों को कैसे पढ़ाया जाए ?
(i) शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करना
(ii) व्यक्तिगत शिक्षा
(iii) शिक्षा सम्बन्धी योजना की जानकारी
(iv) धन की समस्या का निराकरण
अध्यापन सम्बन्धी समस्याएँ
शिक्षण पद्धति
पाठ्यक्रम
University Questions

(१६) हिन्दी साहित्य में नवीन प्रवृत्तियाँ — १७१—१७८
साहित्य और समाज

काव्य साहित्य

गद्य साहित्य

(i) कथा साहित्य

(ii) नाट्य साहित्य

(iii) आलोचना साहित्य

University Questions

(१७) पाठ की तैयारी — १७६—१८५

तैयारी क्यों की जाए ?

तैयारी कैसे की जाए ?

हरबार्ट का मनोविज्ञान

(i) अनुकूलता

(ii) सम्बन्ध हीनता

(iii) विरोध

शिक्षा में प्रयोग

पञ्च सोपान

गद्य के पाठ संकेत की रूप रेखा

कविता के पाठ संकेत की रूप रेखा

University Questions

(१८) पाठ संकेत का विधान — १८६—२०६

(क) गद्य पाठ—शेरपा तेनसिंह

(ख) व्याकरण पाठ—समास

(ग) निबन्ध पाठ—ताजमहल

(घ) नाटक का पाठ—अन्तर की पुकार

(च) कविता का पाठ—ओरछा नृपति की वीरता

परिशिष्ट — २०७—२०८

सहायक पुस्तकों की सूची

अध्याय 1

भाषा और उसका अध्ययन

भाषा क्या है ?

पूर्व इसके कि हम भाषा के शिक्षण और उसकी अन्य समस्याओं पर विचार करें; यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम यह देखने का यत्न करें कि "भाषा" शब्द से हमारा तात्पर्य क्या है ? और भाषा का हमारे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में क्या महत्व है ?

हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री राम चन्द्र वर्मा ने "भाषा" शब्द का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया है :—

"मुख से उच्चरित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह, जिसके द्वारा मन की बात बतलाई जाती है, भाषा कहलाता है ।"

यद्यपि विद्वानों ने "भाषा" शब्द के इस अर्थ को सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया है फिर भी और अधिक स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम भाषा पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करें ।

भौतिक दृष्टिकोण

कुछ लोग भाषा पर भौतिक दृष्टि से विचार करते हैं । उनके विचारानुसार भाषा ध्वनियों का समूह मात्र है और यह ध्वनियाँ किसी न किसी अर्थ की प्रतीति कराती हैं । यह लोग जीभ, ओठ, नाक, गला तथा अन्य स्वर यन्त्रों का अध्ययन करते हैं; क्योंकि किन्हीं भी दो व्यक्तियों के स्वर यन्त्र एक जैसे नहीं होते, इसलिये उनके बोलने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहेगा ही । प्रत्येक व्यक्ति का बोलने का ढंग कुछ निराला ही होगा ।

सामाजिक दृष्टिकोण

समाजशास्त्र के विद्वान भाषा को सामाजिक आदान-प्रदान की वस्तु मानते हैं। मनुष्य एक सामाजिक पशु है। वह अकेला नहीं रह सकता है। वह एक दूसरे के साथ मिलकर रहना चाहता है। इसलिए आदान प्रदान में सुविधा की दृष्टि से जाति के सभी सदस्यों ने कुछ चिह्नों को स्वीकार कर लिया। इन चिह्नों का आधार कुछ ध्वनियाँ थीं जिनका प्रयोग जाति के भिन्न-भिन्न समूहों में होता था। कालान्तर में इन्हीं ध्वनि चिन्हों ने शब्दों और वाक्यों का रूप धारण कर लिया।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण

मानव विज्ञानवादियों के अनुसार भाषा एक सांस्कृतिक वस्तु है जिसे हम परम्परा से प्राप्त करते हैं। किसी भी सांस्कृतिक उपलब्धि के समान परम्परा से प्राप्त मातृभाषा अथवा जातीय भाषा का संरक्षण करना, हम सबका कर्त्तव्य है। परन्तु अन्य सांस्कृतिक उपलब्धियों के समान, जैसे-जैसे संस्कृति में कुछ हेर फेर होता रहता है, उसी प्रकार भाषा में भी परिवर्तन होते रहते हैं। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की भाषा में, अनेकों बातों में अन्तर रहता है, जैसे उच्चारण, शब्दों की बनावट तथा शब्द भण्डार इत्यादि में। नवीन सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ-साथ, भाषा भी अनेकों नए रूप ग्रहण करती है, जिसका प्रभाव विशेष रूप से नई पीढ़ी के लोगों पर पड़ता रहता है। फिर यह भी देखा गया है कि भौगोलिक स्थिति, आयु, व्यवसाय, सामाजिक स्तर, आदि बातें भी भाषा पर प्रभाव डालती हैं। पुरुषों और स्त्रियों की भाषा में भी अन्तर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा कोई स्थिर वस्तु नहीं अपितु संस्कृति के समान, एक गतिशील तत्व है।

भाषा एक सांकेतिक साधन है।

भाषा को एक सांकेतिक साधन कहा गया है। जब तक भाषा की भिन्न-भिन्न ध्वनियों का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक हम अपने विचारों को प्रकट करने के लिए भिन्न-भिन्न संकेतों को प्रयोग में लाते थे जैसे सिर को ऊपर, नीचे अथवा दायें, बायें हिलाना और नेत्रों को टेढ़े, तिरछे घुमाना। परन्तु केवल आंगिक संकेतों के सहारे हम अपने सभी विचारों को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इस लिए कालान्तर में भाषा का आविष्कार हुआ।

पहले हम जब अपने विचारों को प्रकट करना चाहते तो आंगिक संकेतों का प्रयोग करते थे परन्तु बाद में, भाषा के आविष्कार के पश्चात् भाषा के

माध्यम के द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होने लगी। भाषा भी एक प्रकार की संकेत ही है परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि यह शारीरिक अथवा आंगिक संकेत न होकर, ध्वन्यात्मक संकेत है। शारीरिक अथवा आंगिक संकेतों की कोई न कोई सीमा होती है परन्तु ध्वन्यात्मक संकेतों की कोई सीमा नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त आंगिक संकेतों के द्वारा, कुछ गिने-चुने भावों का ही स्पष्टीकरण हो सकता है जो मनुष्य को एक सीमित क्षेत्र में रहने के लिए बाध्य करते हैं। अपने परम्परागत विचारों की अमूल्य निधि को सुरक्षित रखने की बात तो दूर रही, हम अपने ही समय के लोगों के विचारों को इन शारीरिक संकेतों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते। परन्तु ध्वन्यात्मक संकेतों में वह क्षमता है कि अनन्त काल तक, मानव के कोटि-कोटि मनोभावों को सुरक्षित रखते हुए, एक युग से दूसरे युग तक पहुँचाते रहें। आज मानव ने ज्ञान-विज्ञान में जो इतनी प्रगति की है, प्रति दिन जो भिन्न-भिन्न अनुसन्धान तथा आविष्कार हो रहे हैं, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का जो इतना प्रसार हो रहा है, वह भाषा के ध्वन्यात्मक संकेतों के बिना कभी सम्भव न होता। अन्त में हम कह सकते हैं कि भाषा ज्ञान के असीम अंश को ससीम बनाती है तथा निराकार विचारों को साकार रूप देती है।

भाषा का महत्व

मानव समाज को विधाता की ओर से जो सब से बड़ा वरदान मिला है, वह भाषा का ही है। भाषा के बिना मनुष्य समाज की दशा कितनी शोचनीय होती, इस की जानकारी पशुओं, पक्षियों तथा कीड़ों-पतंगों आदि के दयनीय जीवन क्रम को देखने से भली-भाँति हो सकती है।

भाषा का महत्व एक अन्य दृष्टि से भी आँका जा सकता है। वह समाज, जाति अथवा राष्ट्र उन्नत समझा जाता है, जिसका साहित्य उच्च कोटि का हो। भारतीय समाज कितना उच्च था, कितना प्रगतिशील था, इसका अनुमान. उस के उपलब्ध साहित्य से लगाया जा सकता है। जिस जाति के पास वैदिक साहित्य, उपनिषद् ग्रन्थ, दर्शन शास्त्र, रामायण, महाभारत, भास, कालिदास, भवभूति, तुलसीदास, सूरदास तथा जयशंकर प्रसाद जैसे महानुभावों की कृतियाँ हों; उस जाति की विचारों सम्बन्धी श्रेष्ठता को भला कौन स्वीकार न करेगा। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है अर्थात् सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब हमें साहित्य में उपलब्ध होगा। समाज के जैसे विचार होंगे, भावनाएँ होंगी, वैसा ही उसका साहित्य भी होगा। परन्तु यह सब भावनाएँ और विचार कौन से माध्यम के द्वारा अभिव्यक्त किए जा सकते हैं? भाषा के द्वारा ही हम इन का आकलन कर सकते हैं। बिना भाषा के माध्यम के, हम इतने सुन्दर तथा उच्च

कोटि के साहित्य का सृजन करने में समर्थ न हो सकते। उन्नत साहित्य से हमारा तात्पर्य है, भाषा का व्यवहार सुन्दर रूप में तथा विविध शैलियों में किया जाए।

उपरोक्त सभी बातों के आधार पर हम भली-भाँति, इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय जीवन में भाषा का महत्व कितना अधिक है।

भाषा का अध्ययन

किसी भी भाषा को सीखना तथा किसी भाषा का अध्ययन करना, यह दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। बालक अनुकरण के द्वारा बोलना सीखते हैं। वे अपने आस-पास के लोगों को बोलते हुए सुनते हैं और स्वयं भी वैसा बोलने का यत्न करते हैं ? जब भी वे बोलने में कोई गलती करते हैं, उनका सुधार कर दिया जाता है। बालक भाषा को प्रयत्न और भूल के सिद्धान्तानुसार सीखते हैं। धीरे-धीरे उनकी आदत हो जाती है कि वे मातृभाषा के शब्दों तथा वाक्यों का ठीक ठीक उच्चारण तथा प्रयोग करें।

अन्य भाषा, यदि बाल्यावस्था में न सीख ली जाए तो बाद में बड़ी कठिनाई होती है। उसके व्याकरण पर भले ही अधिकार कर लिया जाए, परन्तु उसके उच्चारण में विदेशीपन रहेगा ही।

यदि कोई भाषा, साहित्यिक भाषा भी है, तो उसकी एक बोली को राजनैतिक कारणों से तथा प्रशासनात्मक और शैक्षणिक सुविधा की दृष्टि से राज्य भाषा मान लिया जाता है जैसा कि हिन्दी में खड़ी बोली। भाषा के इस रूप का व्यवहार शिक्षित व्यक्ति अपनी बातचीत में करते हैं और भाषा का वही रूप, व्याकरण तथा पाठ्य पुस्तकों आदि की सहायता से विद्यालयों में पढ़ाया जाता है।

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, यह कार्य भाषा विज्ञानियों का है। यद्यपि यह क्षेत्र अभी नया ही है परन्तु धीरे-धीरे इसमें काफी प्रगति हो रही है।

भाषा के रूप

भाषा के दो रूप होते हैं :—

(i) उच्चरित भाषा

(ii) लिखित भाषा

भाषा के उच्चरित रूप का व्यवहार, हम अपनी बोलचाल में प्रतिदिन करते हैं। इसे मौखिक भाषा भी कह सकते हैं।

भाषा के लिखित रूप का व्यवहार हम उस समय करते हैं, जब हम अपना

सन्देश किसी ऐसे व्यक्ति को पहुँचाना चाहें, जो हम से बहुत दूर हो। परम्परागत तथा वर्तमान विचारों को आगे आने वाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखा जाए, इसके लिए भी भाषा के लिखित रूप का प्रयोग किया जाता है।

भाषा के स्वरूप को सामने रखते हुए, भाषा का विभाजन अधोलिखित ढंग पर भी हो सकता है :—

(i) स्थायी भाषा

(ii) अस्थायी भाषा

अपने लिखित रूप में भाषा सदा स्थायी रह सकती है क्योंकि इस का प्रयोग आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए किया जा सकता है। हमारा परम्परागत साहित्य लिखित रूप में ही हमें प्राप्त हुआ है। वर्तमान साहित्य भी हम लिखित रूप में छोड़ जायेंगे।

अपने उच्चरित रूप में भाषा अस्थायी या क्षणिक होती है। हम जो कुछ भी बोलते हैं, वह बोलने के साथ-साथ हवा में उड़ जाता है। उसे यदि हम पकड़ना चाहें तो नहीं पकड़ सकते। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान में प्रति दिन नए-नए आविष्कार हो रहे हैं। विज्ञान ने भाषा के उच्चरित अथवा मौखिक रूप को कुछ स्थायित्व दिया है। आकाश वाणी (Radio) तथा टेलीवियन (Television) के द्वारा हम दूर बैठे हुए भी किसी बात को सुन सकते हैं। ग्रामोफोन (Gramophone) तथा टेप रिकार्डर (Tape Recorder) के द्वारा हम उच्चरित या मौखिक भाषा को बहुत समय तक सुरक्षित रख सकते हैं।

भाषा शिक्षण के उद्देश्य

भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा भाषा-शास्त्रियों ने, भाषा शिक्षण के नीचे लिखे उद्देश्य निर्धारित किए हैं :

प्राथमिक कक्षाएं (Primary Classes)

१—बालकों तथा बालिकाओं को इस योग्य बनाना कि वे पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के आधार पर सामान्य (normal) गति से बोली गई उच्चरित भाषा को भली-भाँति समझ सकें।

२—बालकों तथा बालिकाओं को इस योग्य बनाना कि वे पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के आधार पर, भाषा को ठीक-ठीक बोल सकें। वे जिस वातावरण में रहते हैं, उसको सामने रखते हुए, जहाँ तक बन पाए उन का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए।

३—उन्हें इस योग्य बनाना कि पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के आधार पर वे उचित प्रवाह के साथ सस्वर वाचन कर सकें।

४—बालकों तथा बालिकाओं में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि वे उचित गति से, उपरोक्त पाठ्य-सामग्री का मौन वाचन करते हुए उसे ठीक-ठीक समझ सकें तथा उनसे, इस सम्बन्ध में जो जो प्रश्न पूछे जाएँ, उन प्रश्नों का, जैसा चाहिए, वैसा उत्तर दे सकें।

५—उन्हें इस योग्य बनाना कि वे, पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के भीतर छोटे-छोटे वाक्य तथा अनुच्छेद (Paragraphs) बनाने में समर्थ हो सकें यह आवश्यक नहीं कि इन वाक्यों तथा अनुच्छेदों को बनाते समय, सम्बन्धित विषय भी वे स्वयं ही सोचें।

माध्यमिक कक्षाएँ (Middle Classes)

१—छात्रों तथा छात्राओं को इस योग्य बनाना कि वे पाठ्यक्रम में निश्चित की गई शब्दावली के भीतर, सामान्य गति से बोली गई उच्चरित भाषा को स्पष्ट रूप से समझ सकें।

२—छात्रों तथा छात्राओं में इतनी क्षमता उत्पन्न करना कि वे पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के आधार पर, भाषा को ठीक-ठीक बोल सकें। वे जिस वातावरण में रहते हैं, उसको सामने रखते हुए, जहाँ तक बन पाए, उन का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए।

३—विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दावली के भीतर अच्छी गति (good speed) से सस्वर तथा मौन वाचन कर सकें तथा जो कुछ उन्होंने पढ़ा है, उसे स्पष्ट रूप से समझ भी सकें।

४—उन्हें इस योग्य बनाना कि वे पाठ्यक्रम से बाहर, किसी अपठित अवतरण को शब्द कोष की सहायता से पढ़ सकें तथा उसे समझ भी सकें। परन्तु इस बात की सावधानी रखी जाए कि पाठ्यक्रम से बाहर का अवतरण ऐसा न हो कि जिसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता पड़े।

५—छात्रों तथा छात्राओं को इस योग्य बनाना कि वे शुद्ध हिन्दी में कोई साधारण पत्र लिख सकें अथवा किसी सरल विषय पर अपने विचार व्यक्त कर सकें।

उच्च कक्षाएँ (Higher Classes)

१—विद्यालयों को इस योग्य बनाना कि वे सामान्य गति से बोली गई हिन्दी भाषा को ठीक ठीक समझ सकें।

२—उन्हें इस योग्य बनाना कि उचित विराम चिन्हों का प्रयोग करते हुए

ये शुद्ध हिन्दी में बातचीत कर सकें। उनकी बोल-चाल की भाषा में किसी भी प्रकार का उच्चारण सम्बन्धी दोष नहीं होना चाहिए।

३—छात्रों तथा छात्राओं में इतनी क्षमता उत्पन्न करना कि वे उच्च स्तर (advanced level) पर सस्वर वाचन तथा मौन वाचन कर सकें।

४—उन्हें इस योग्य बनाना कि वे वर्णनात्मक (narrative or descriptive तथा सूचनात्मक (informative) सामग्री का संक्षेपीकरण (summary) कर सकें।

५—विद्यार्थियों में इतनी योग्यता उत्पन्न करना कि वे पत्र लिख सकें, देखी हुई तथा सुनी हुई घटनाओं का ठीक विवरण दे सकें तथा किसी सामान्य विषय पर, शुद्ध तथा सरल हिन्दी में, अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त कर सकेंगे।

अन्य सामान्य बातें

बालकों तथा बालिकाओं को भाषा की शिक्षा प्रदान करते समय, नीचे लिखी बातों पर भी ध्यान देना चाहिए :—

१—प्रारम्भिक कक्षाओं में इस बात की सावधानी रखी जाए कि पाठ्य-सामग्री का चुनाव, बालकों के वातावरण के आधार पर ही किया जाए। ऐसी कोई बात पाठ्यक्रम में न रखी जाए, जो उनके अनुभव क्षेत्र से बाहिर की हो।

२—माध्यमिक कक्षाओं के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाए, उसका क्षेत्र व्यापक होना चाहिए। उसे केवल एक ही देश तक सीमित नहीं रखना चाहिए उसका सम्बन्ध संसार के अन्य देशों से भी होना चाहिए।

३—उच्च कक्षाओं में छात्रों तथा छात्राओं को इस बात का अवसर देना चाहिए कि वे आधुनिक हिन्दी साहित्य का अध्ययन कर सकें।

४—भाषा शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्यों की विस्तृत सूची अध्यापकों को भेजी जानी चाहिए। भाषा सम्बन्धी परीक्षाएँ, इन उद्देश्यों पर आधारित होनी चाहिए।

५—शिक्षा संस्थाओं तथा परीक्षण संस्थाओं को, पाठ्यक्रय निर्धारित करते समय, इन उद्देश्यों को अपने सामने रखना चाहिए।

उद्देश्यों की पूर्ति

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में केवल वही पुस्तकें अनुमोदित की जाएँ, जो इन उद्देश्यों के आधार पर लिखी गई हों। भिन्न-भिन्न कक्षाओं की पुस्तकों में, जिस शब्दावली का प्रयोग किया जाए, वह भी इसी नियम पर आधारित होनी चाहिए।

उद्देश्य पूर्ति की जाँच

भाषा शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति कहाँ तक हुई है, इसकी जाँच के लिए, निम्नलिखित परीक्षाओं को अपनाया जा सकता है—

१—मौखिक परीक्षा (Oral Test)

मौखिक परीक्षा में विद्यार्थियों से निम्नलिखित बातें करवाई जा सकती हैं—

(i) सस्वर वाचन करवाना

(ii) प्रश्नोत्तर करना

(iii) किसी चित्र का वर्णन करने के लिए कहना

(iv) विद्यार्थी को परीक्षक से प्रश्न पूछने के लिए कहना।

२—श्रुतलेख (Dictation)

परीक्षक किसी अवतरण का दो-तीन बार सस्वर वाचन करेगा और विद्यार्थी उसे लिखेंगे। इससे विद्यार्थियों की हिज्जे सम्बन्धी (spelling)) अशुद्धियों का ज्ञान हो सकता है।

लिखित परीक्षा (Written Paper)

लिखित परीक्षा में निम्न बातें सम्मिलित की जाएँगी—

(i) किसी अवतरण को देख-देख कर सुन्दर अक्षरों में लिखना।

(ii) चित्र का लिखित रूप में वर्णन करना।

(iii) प्रश्नों का लिखित रूप में उत्तर देना।

(iv) रिक्तांशों की पूर्ति करना।

(v) व्याख्या करना।

(vi) संक्षेपीकरण करना।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What are the aims and objects of teaching Hindi in schools and colleges ?

(२) भिन्न भिन्न दृष्टियों से भाषा पर विचार करते हुए लिखो कि भाषा से हमारा क्या तात्पर्य है ?

(३) भाषा के महत्व की चर्चा करते हुए स्पष्ट करो कि "भाषा एक सांकेतिक साधन है।"

(४) भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों का उल्लेख करते हुए, भाषा शिक्षण सम्बन्धी उद्देश्यों पर विस्तार से प्रकाश डालो। इस बात की जाँच कैसे की जाएगी कि पाठशालाओं में भाषा सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति की जा रही है ?

अध्याय २

मातृभाषा और शिक्षा

मातृभाषा का बालक के जीवन में महत्व

भाषा का भावों से गहरा सम्बन्ध है। बालक माँ के दूध के साथ-साथ अपनी मातृभाषा भी सीखता है। जिस भाषा का व्यवहार बालक के माता-पिता तथा अन्य बन्धु गण करेंगे, वही भाषा वह भी सीखेगा। यह सम्बन्ध केवल अनुकरणात्मक ही न होकर भावात्मक (emotional) भी होता है। बालक अपने माता-पिता से स्नेह करता है और उसके माता-पिता भी उसे बड़ा प्यार करते हैं। इसी कारण से बालक अपने माता-पिता की भाषा सीखता है। मातृभाषा के साथ यह सम्बन्ध धीरे-धीरे इतना गहरा हो जाता है कि वह जो कुछ सोचता है, अपनी मातृभाषा में ही सोचता है। कालान्तर में अन्य भाषाओं का प्रकाण्ड पंडित हो जाने पर भी, उसे जो सुगमता अपनी मातृभाषा के प्रयोग में होती है, अन्य भाषाओं के व्यवहार में नहीं। प्रौढ़ अवस्था में भी मातृभाषा का जो सम्बन्ध हमारे भावात्मक जीवन से होता है, उस का कुछ परिचय नीचे लिखी इस कथा से भली-भाँति हो सकता है—

कहते हैं कि किसी राजा के दरबार में एक बड़ा भारी विद्वान आया। वह बहुत सी भारतीय भाषाओं का प्रकाण्ड पण्डित था और इन सभी भाषाओं में धाराप्रवाहिक रूप से भाषण कर सकता था। राजा ने उस विद्वान की मातृभाषा के सम्बन्ध में पूछा। उस विद्वान ने कहा कि इस राजदरबार में बड़े बड़े विद्वान हैं, वे बताएँ कि उसकी मातृभाषा कौन सी है? राजा ने अपने दरबार के एक-एक विद्वान को बुलाकर, इस समस्या को हल करने के लिए कहा और इस के लिए पुरस्कार भी निर्धारित किया। परन्तु इतना होने पर भी कोई विद्वान

उस नवागन्तुक की मातृभाषा को न बता सका। अन्त में राजा के प्रधान मन्त्री ने यह काम अपने ऊपर लिया। उसने उस नवागन्तुक को अपने घर बुलाया। उसकी बड़ी खातिर की। उसे अच्छे-अच्छे भोजन तथा व्यंजन खिलाए गए। रात को वह भरपेट खाना खाकर बड़े गुदगुदे बिस्तर पर सो गया। आधी रात के समय जब वह गहरी नींद सोया हुआ था, प्रधान मन्त्री ने उबलता हुआ गर्म पानी लिया और उस के पैरों पर डाल दिया। वह एकदम बोल उठा, "कौण मैंनू तंग कर रह्या" अर्थात् कौन मुझे तंग कर रहा है। अगले दिन प्रधान मन्त्री ने राजदरबार में आकर बता दिया कि इस विद्वान की मातृभाषा पंजाबी है। राजा के पूछने पर, प्रधान मन्त्री ने सारी घटना कह सुनाई। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मातृभाषा की पहुँच हमारे अन्तर्मन (Unconscious mind) की गहराइयों तक होती है।

इन्हीं सभी कारणों से शिक्षा शास्त्रियों का ऐसा मत है कि बालक को मातृभाषा के माध्यम के द्वारा ही शिक्षा दी जाए। मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए, इसके कुछ और कारण भी हो सकते हैं। उनमें कुछ नीचे दिए जारहे हैं—

सांस्कृतिक कारण

हरेक बालक एक विशेष सांस्कृतिक वातावरण में उत्पन्न होता है। मातृ-भाषा उस वातावरण का एक महत्वपूर्ण भाग तथा अभिव्यक्ति का साधन है। मातृभाषा के द्वारा ही बालक इस सांस्कृतिक वातावरण को ग्रहण करता है। बालक के प्रारम्भिक विचारों को बनाने में मातृभाषा का बड़ा हाथ है। अपने सांस्कृतिक वातावरण से भिन्न, किसी भी ऐसे, नए विचार को को ग्रहण करने में वह असमर्थ होगा जिसकी अभिव्यक्ति उसकी मातृभाषा में नहीं हो सकती। यदि विदेशी भाषा का सम्बन्ध ऐसी संस्कृति से है, जो उसकी संस्कृति से मिलती जुलती है जैसे अंग्रेज बालक के लिए फ्रैंच संस्कृति, तब तो उस नई भाषा को सीखते समय, बालक को केवल भाषा सम्बन्धी कठिनाई होगी। परन्तु यदि विदेशी भाषा का सम्बन्ध, एक ऐसी संस्कृति से हो जो उसकी संस्कृति से सर्वथा भिन्न है, जैसे भारतीय बालक के लिए अंग्रेजी संस्कृति, तब उस नई भाषा को सीखने में बालक की कठिनाइयाँ बढ़ जाएँगी। बालक का सम्बन्ध न केवल नई भाषा से ही आएगा अपितु नए विचारों से भी। यही बात बड़े लोगों के लिए भी लागू होती है।

किसी भी विदेशी भाषा को सीखते समय, विदेशी शब्दावली पर अधिकार प्राप्त करना तथा उनमें अपने विचारों को अभिव्यक्त करना, बालक के लिए बड़ा कठिन होता है। जब विदेशी भाषा का सम्बन्ध एक भिन्न संस्कृति से होता

है, तब तो बालक की कठिनाइयाँ और बढ़ जाती हैं। उसे न केवल सर्वथा नवीन विचारों को मातृभाषा में प्रकट करना होता है, अपितु अपने विचारों और भावों को, एक विदेशी भाषा में अभिव्यक्त करना होता है। उन विचारों और भावों को, जिनका सम्बन्ध, एक भाषा के साथ हो गया है, दूसरी भाषा में रूपान्तर करना अत्यन्त कठिन होता है। यदि किसी व्यक्ति को हर वक्त यही करना पड़ेगा तो वह अपने आपको ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर सकेगा। और यदि यही कार्य एक बालक को उस अवस्था में करना पड़े, जब कि वह मातृभाषा में भी अपने आपको पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकता, तो वह कभी भी अपने आपको, ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर सकेगा।

शैक्षणिक कारण

शैक्षणिक आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि विद्यालयों में अधिक से अधिक समय तक मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम रहनी चाहिए। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से आज घर और पाठशाला में जो अन्तर दिखाई देता है, वह नहीं रहेगा।

बालक जब घर से पाठशाला जाने लगता है तो उसे एक बिल्कुल नवीन वातावरण मिलता है, जो घर से भिन्न होता है। अब तक तो वह घर में, अपने थोड़े से भाई बहनों के साथ रहता था, जहाँ उसे हर समय अपनी माँ का स्नेह प्राप्त था। परन्तु वह अध्यापक के अधीन एक बड़े समूह में आ जाता है। अब वह अपनी इच्छानुसार भाग नहीं सकता, खेल नहीं सकता, बोल नहीं सकता। उससे यह आशा की जाती है कि वह चुपचाप शान्त होकर बैठा रहे। उसे जैसा कहा जाए वैसा वह करे। जो प्रश्न उससे पूछे जाएँ उन्हीं का वह उत्तर दे। उसके सामने नए-नए विचार तथा नई-नई बातें आती हैं और उसे इसका प्रमाण देना होगा कि उसने इन नए विचारों को, नई बातों को जल्दी से जल्दी ग्रहण कर लिया है। प्रत्येक बात बालक को घर से भिन्न मिलती है। और यदि कभी-कभी हम यह देखते हैं कि बहुत से बालक अपने आपको इस नवीन वातावरण के अनुकूल बनाने में असमर्थ पाते हैं, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। और यदि भाषा भी जिसमें यह सब नई बातें रखी जाती हैं, उसकी मातृभाषा से भिन्न है, तो बालक की कठिनाइयाँ कितनी बढ़ जायँगी इसका हम भली-भाँति अनुमान लगा सकते हैं।

यदि बालक को पाठशाला में आते हुए बहुत समय हो भी जाए, फिर भी उसे भिन्न-भिन्न विषयों में ढेर सारे पाठ पढ़ने होंगे। वह भूगोल अथवा इतिहास का पाठ सरलता से समझ सकेगा, यदि वह उसकी मातृभाषा में पढ़ाया

जाता है। दूसरी भाषा के माध्यम से, इन विषयों को पढ़ाने में, बालक पर भार बढ़ जाएगा और उसकी प्रगति अत्यन्त धीमी होगी।

जिस भाषा का व्यवहार बालक अपने घर में करता है, उसमें शिक्षा देने से घर और पाठशाला का सम्बन्ध निकट का बनाया जा सकता है। जो कुछ बालक पाठशाला में पढ़ेगा, उसका प्रयोग घर में कर सकता है। इसके अतिरिक्त माता-पिता भी पाठशाला की समस्याओं को अधिक अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे और बालक की शिक्षा में, पाठशाला को कुछ योगदान दे सकेंगे।

शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत

यहाँ पर हम कुछ विद्वानों के विचार दे रहे हैं, जिनके मतानुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए :—

गांधी जी

"मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है, जितना कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध। बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उसके मानसिक विकास के लिए, उसके ऊपर मातृभाषा के अतिरिक्त, कोई दूसरी भाषा लादना मैं मातृभूमि के विरुद्ध पाप समझता हूँ।"

प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक तथा विचारक ब्रेलसफोर्ड

"केवल एक ही भाषा में; हमारे भावों की स्पष्ट व्यंजना हो सकती है; केवल एक ही भाषा के शब्दों के सूक्ष्म संकेतों को हम सहज और निश्चित रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यह भाषा वह होती है, जिसे हम अपनी माता के दूध के साथ सीखते हैं; जिसमें हम अपनी प्रारम्भिक प्रार्थनाओं और हर्ष तथा शोक के उद्गारों को व्यक्त करते हैं। दूसरी किसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना विद्यार्थी के श्रम को अनावश्यक रूप से बढ़ाना ही नहीं अपितु उसके मस्तिष्क की स्वतन्त्र गति को पंगु बना देना है।"

हारटोग कमेटी

"हम से बहुत से मनुष्यों ने कहा है कि मातृभाषा में शिक्षा पाने वाला विद्यार्थी शुरू-शुरू में अपनी अंग्रेजी की कमजोरी के कारण भले ही पिछड़ जाता हो, लेकिन क्योंकि मातृभाषा के द्वारा, सामान्य विषयों में, उसकी गति अधिक तीव्र हो जाती है, इसलिए अन्त में वह ऐंग्लो वर्नाक्यूलर (Anglo vernacular) स्कूल के लड़कों से आगे निकल जाता है।

डा० एनीबेसेन्ट

"मातृभाषा द्वारा शिक्षा के अभाव ने भारत को निश्चय ही, विश्व के

सभ्य देशों में अत्यन्त अज्ञानी बना दिया है। यहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या काई भर है और अशिक्षितों की अपार जल राशि।"

मातृभाषा सम्बन्धी कुछ आपत्तियाँ

अब हम कुछ ऐसी बातों पर विचार करेंगे जिनके कारण कुछ लोगों का विचार है कि मातृभाषा शिक्षा का माध्यम नहीं होनी चाहिए।

(१) कई भाषाओं के सम्बन्ध में यह आपत्ति उठाई जाती है कि उनमें व्याकरण आदि का अभाव है। परन्तु यह आपत्ति निराधार है क्योंकि विद्वानों के कथनानुसार प्रत्येक भाषा के कुछ नियम होते हैं, कुछ सिद्धान्त होते हैं। यह अलग बात है कि यह नियम या सिद्धान्त लिखित रूप में न हों।

(२) दूसरी बात यह कही जाती है कि बालक जब पाठशाला में आता है तो अपनी मातृभाषा को जानता है तो फिर क्या आवश्यकता है कि वहाँ भी उसे मातृभाषा का ज्ञान कराया जाए। इसका उत्तर हम दो प्रकार से दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक बात तो हम यह कह सकते हैं कि जब बालक पाठशाला में आता है तो मातृभाषा पर उसका पूरा अधिकार नहीं होता। उसे मातृभाषा का इतना ही ज्ञान है जिससे वह अपना काम चला सके। परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसे इस बात की आवश्यकता पड़ेगी कि वह अपने ज्ञान का विकास करे और यह तभी हो सकता है जब कि उसका मातृभाषा पर अधिकार हो। इस प्रश्न का उत्तर हम दूसरे रूप में इस प्रकार दे सकते हैं कि पाठशाला में बालक केवल अपनी मातृभाषा का ही ज्ञान प्राप्त नहीं करता अपितु मातृभाषा के माध्यम द्वारा, वह अनेकों नई बातें सीखता है।

(३) कुछ लोगों का विचार है कि यदि किसी अन्य भाषा को शिक्षा का माध्यम न बनाया जाएगा तो बालक वह भाषा सीखने में पूर्ण रूप से सफल न हो सकेगा परन्तु इस सम्बन्ध में, वर्तमान काल में, शिक्षा शास्त्रियों को जो अनुभव हुए हैं, उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिन बालकों को, अपनी मातृभाषा पर अच्छा अधिकार होगा, वही बालक किसी दूसरी भाषा को भी अच्छी प्रकार से सीख सकेंगे।

(४) अँग्रेजी भाषा के समर्थक कई बार, भारतीय भाषाओं के प्रयोग पर यह आपत्ति उठाते हैं कि इन भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली तथा पाठ्यपुस्तकों की कमी है। यही बात १६०४--५ के स्वदेशी आन्दोलन के समय भी उठाई गई थी। इसका उत्तर हम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में इस प्रकार से दे सकते हैं कि "जब तक मातृभाषा को, उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जायगा तब तक पाठ्यपुस्तकें कैसे लिखी जाएँगी, नई शब्दावली कैसे बनेगी। भाषा का विकास उसके प्रयोग से ही होता है।"

(५) भारत जैसे देश में जहाँ बहुत सी भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ एक समस्या और भी है, वह यह कि शिक्षा का माध्यम किस भाषा को बनाया जाए। इस विषय में यूनेस्को की एक रिपोर्ट में यह विचार व्यक्त किया गया है कि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा तो उसकी मातृभाषा में होनी चाहिए, परन्तु उच्च शिक्षा का माध्यम वह भाषा हो जिसे किसी भी राष्ट्र का बहुमत बोलता हो तथा जिसका साहित्य भी काफी उन्नत हो।

मातृभाषा सम्बन्धी कठिनाइयाँ

जैसा कि उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो ही चुका होगा, सबसे उत्तम तो यही है कि बालक की शिक्षा उसकी मातृभाषा के माध्यम के द्वारा ही दी जाए। परन्तु कई बार अनेकों कारणों से यह सम्भव नहीं हो पाता। यह कारण राजनैतिक, भाषा सम्बन्धी, सामाजिक तथा आर्थिक हो सकते हैं।

राजनैतिक कारण

पराधीन राज्यों में शासक वर्ग, अपनी भाषा को अनिवार्य कर देता है। मातृभाषा की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए, उतना नहीं दिया जाता। अँग्रेजों के राज्य में अँग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य थी और वही भाषा शिक्षा का माध्यम थी। लोगों की मातृभाषा को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया।

भाषा सम्बन्धी कारण :

(i) एक भाषा के अन्दर कई बोलियाँ होती हैं। और कई बार यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनमें से किस को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, हिन्दी के सम्बन्ध में भी काफी वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ था कि साहित्य में खड़ी बोली का व्यवहार किया जाए अथवा ब्रजभाषा का। परन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों के प्रयत्नों से, खड़ी बोली को ही, साहित्य तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

(ii) भाषा सम्बन्धी एक कारण यह भी हो सकता है कि उसकी लिपि ऐसी हो जिसका टाईप राईटर या मुद्रण में प्रयोग न हो सके।

शिक्षा सम्बन्धी कारण

शिक्षा सम्बन्धी कारणों में मुख्य हैं अध्यापकों का अभाव तथा पाठ्य-पुस्तकों की कमी। अपने देश मे हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के सम्बन्ध में यही कठिनाई है। एक तो भारतीय भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकों की कमी है। दूसरे पहले के सभी अध्यापक मातृभाषा के माध्यम के द्वारा नहीं पढ़ा सकते। इसलिए अनेकों लोग अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाए रखना चाहते हैं।

सामाजिक कारण

कई लोग इसलिए भी विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं कि इसके द्वारा पश्चिमी सभ्यता से हमारा सम्पर्क बना रह सकता है। परन्तु इस कार्य में मातृभाषा कैसे बाधा पहुँचा सकती है, यह समझ में नहीं आता। विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न यूरोपीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था कर देने से, जो कोई भी उन्हें पढ़ना चाहे पढ़ सकता है।

आर्थिक कारण

कई लोग आर्थिक कारणों से भी दूसरी भाषा की ओर झुकते हैं। अँग्रेजों के राज्य में, अधिकांश लोग अँग्रेजी का समर्थन, इसी आधार पर करते थे कि इससे उन्हें नौकरी प्राप्त करने तथा व्यवसाय करने में असुविधा होती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टियों से बालक की शिक्षा उसकी मातृभाषा में होनी चाहिए, यद्यपि कभी-कभी अनेकों कारणों से, इसमें कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Discuss the educational value of Mother Tongue, with special referece to Hindi.

(2) Define the place of mother tongue in the curriculum of Primary and Secondary Schools.

(३) "मातृभाषा केवल एक विषय नहीं है, परन्तु वह सब विषयों की नींव है।" इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करो। यह बताओ कि इस सिद्धान्त का पढ़ने की पद्धति पर कौन सा असर पड़ता है ?

(४) "मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाए", इस सम्बन्ध में आप के क्या विचार हैं ?

(५) मातृभाषा का मानव-जीवन में क्या महत्व है, इसको स्पष्ट करते हुए लिखो कि मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं।

(६) मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के सम्बन्ध में जो-जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं, उनका उल्लेख करते हुए लिखो कि आप का इनके सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण है ?

अध्याय ३

मौखिक भाषा

(Oral Work)

वार्तालाप का सामाजिक महत्व

हम में से प्रत्येक व्यक्ति समाज में रहता है। समाज से हमारा अभिप्राय है सामूहिक जीवन से। हम अपना सामूहिक अथवा सामाजिक जीवन भली-भाँति बिता सकें, इसके लिए आवश्यक है कि हम समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से अपना यथेष्ट सम्पर्क बनाए रखें। हम समाज में बिल्कुल चुपचाप होकर नहीं बैठ सकते। समाज में रहने वाले भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से हम निम्नलिखित प्रकार से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं—

(i) वार्तालाप द्वारा।

(ii) लिखित भाषा द्वारा।

लिखित ध्वनियों का जन्म तो बोलचाल की भाषा के जन्म के पश्चात् ही होता है। मौखिक भाषा द्वारा व्यक्त किए गए ज्ञान कोष को आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने की दृष्टि से तथा जो व्यक्ति हमारे सामने न हों, उन तक संदेश आदि भेजने के लिए ही, लिखित भाषा का जन्म हुआ। इस दृष्टि से हमारे सामाजिक जीवन में वार्तालाप का बड़ा महत्व है।

मौखिक भाषा के उद्देश्य

वार्तालाप या मौखिक भाषा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं—

१—विद्यार्थियों में इतना क्षमता उत्पन्न कर देना कि उन से जो कुछ पूछा जाए, उस का उत्तर शुद्ध तथा उचित होने के साथ-साथ पूर्ण वाक्यों में दे सकें।

२—बालकों को इस योग्य बनाना कि उन्होंने जो देखा हो, जो सुना हो, जो पढ़ा हो अथवा जो अनुभव किया हो, उसका विवेचन युक्ति-पूर्ण, शुद्ध भाषा में दूसरों के सामने भी कर सकें।

३—छात्रों में यह सामर्थ्य उत्पन्न करना कि अपरिचित व्यक्ति के सम्मुख भी उनका व्यवहार भद्रतापूर्ण हो तथा वे उनके साथ, मधुर तथा संयत भाषा में वार्तालाप कर सकें।

४—यदि बालक के मन में, कोई विचार अथवा शङ्का उठे तो वह दूसरों के सामने उसे भली-भाँति प्रकट कर सके और बिना किसी प्रकार के संकोच के अपने सन्देह का निवारण कर सके।

५—जिन बातों में बालकों की रुचि हो, उन उन विषयों पर वे स्वाभाविक रूप से बिना किसी प्रयास से वार्तालाप कर सकें।

वार्तालाप शिक्षण की मनोवैज्ञानिक विधियाँ

बालकों को वार्तालाप सिखाने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जा सकता है। उनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं—

(i) **उपयुक्त वातावरण**—वार्तालाप का वातावरण इस प्रकार का होना चाहिए कि बालक को घरेलूपन का बोध हो अर्थात वह अपने आपको किसी बन्धन से युक्त न समझे। इस दृष्टि से देखा जाए तो परिवार ही वार्तालाप शिक्षण की प्रथम पाठशाला है। परिवार में रहने के कारण ही, बालक माता पिता भाई-बहनो तथा पास-पड़ोस में प्रतिदिन अनेकों व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है और उनके द्वारा व्यवहार की गई भाषा को सुनता रहता है। यद्यपि वह अभी इस अवस्था में नहीं है कि कुछ बोल सके। परन्तु फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से, इन सभी व्यक्तियों से, कुछ न कुछ बोलना सीख ही रहा है। कुछ समय के पश्चात हम देखते हैं कि बालक के मुख से निकली अस्पष्ट ध्वनियाँ, अब धीरे धीरे कुछ स्पष्ट होने लगी हैं। वह आलू को 'आऊ", रोटी को "ओती" तथा थोड़ा को "थोला" कहने लगता है। कुछ समय और बीतने पर उसका उच्चारण भी शुद्ध होने लगता है जैसे—

(i) आलू लाओ।

(ii) रोटी खाई।

(iii) दीदी पानी दो।

(ii) **अनुकरण**—बालक के अन्दर अनुकरण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वह अपने माता-पिता का, बड़े भाई-बहनों का तथा गुरुजनों का अनेक दृष्टियों से अनुकरण करना चाहता है। बालक के पिता अपनी दुकान

पर जाने से पूर्व, नए कपड़े पहनते हैं, छड़ी हाथ में लेते हैं, पगड़ी बाँधते हैं। बालक इन सब क्रियाओं को बड़े ध्यान से देखता है। उसके माता-पिता के बीच प्रतिदिन यह वार्तालाप होता है—

"मेरा कोट लाओ।"

"कोट पहनिए।"

"मेरी छड़ी कहाँ है ?"

"लो, अपनी छड़ी लो।"

"पान खिलाओ।"

"पान खाइए।"

"मेरी पगड़ी कहाँ रखी है ?"

"खूँटी पर टँगी होगी।"

बालक इस वार्तालाप को प्रतिदिन सुनता है और समझने का प्रयास करता है। वह देखता है कि "कोट लाओ", "छड़ी कहाँ है", "पान खिलाओ", "पगड़ी कहाँ रखी है ?" कहने पर उसकी माँ क्या कहती है। वह इन सभी क्रियाओं को प्रतिदिन देखता है और जान लेता है कि—

(i) यह कोट है।

(ii) यह छड़ी है।

(iii) यह पान है।

(iv) यह पगड़ी है।

(v) कोट शरीर पर पहना जाता है।

(vi) छड़ी हाथ में लीं जाती है।

(vii) पान मुँह में खाया जाता है।

(viii) पगड़ी सिर पर बाँधी जाती है।

फिर बाद में, धीरे-धीरे, वह इन बातों का अनुकरण करता है। छड़ी हाथ में लेकर, वह मटक-मटक कर चलता है और पिता का अभिनय करता है।

मुझे अपने गाँव करियाला, जिला जहलम की एक घटना अभी तक याद है। यह उस समय की बात है, जब पाकिस्तान नहीं बना था। मैं अपने गाँव गया हुआ था। नगरों इत्यादि में तो, सिनेमा आदि मनोरंजन के कई साधन हैं परन्तु गाँव में तो कथा, वार्ता, रामलीला आदि के द्वारा ही मनोरंजन किया जाता है। उन दिनों विजय दशमी की छुट्टियाँ थी। अपने भतीजे वेदालोक को लेकर प्रतिदिन रामलीला देखने जाया करता था। गाँव में दशहरे का यह उत्सव एक सप्ताह तक चलता था। प्रतिदिन रामायण की किसी न किसी घटना का अभिनय हुआ करता था। जिस दिन की बात है, उस दिन राम और

लक्ष्मण, धनुष और बाण लेकर, विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ की रक्षा करते हैं, और राक्षसों का वध करते हैं। वेदालोक को इस प्रकार की घटनाओं में इतना रस आता था कि वह कई प्रश्न पूछता रहता। अगले दिन क्या देखता हूँ कि वेदालोक ने अपने बहुत से साथियों को एकत्रित किया। वह स्वयं तो राम बना और उसका एक साथी लक्ष्मण तथा दूसरा साथी विश्वामित्र बना। इस के पश्चात् उसके कुछ साथी, राक्षसों के रूप में यज्ञ विध्वंस करने आए। फिर राम और लक्ष्मण का अभिनय करने वाले बालकों ने हाथों के अभिनय से बाण चलाए, तथा उन्हीं शब्दों का उच्चारण अपनी टूटी-फूटी भाषा में किया, जिन्हें वेदालोक ने रामलीला में सुना था। इससे यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि बालक अनुकरण के द्वारा भी वार्तालाप की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

वार्तालाप का अभ्यास—यदि किसी सीखी हुई बात का अभ्यास न किया जाए तो वह सीखी हुई बात भी जल्दी ही भूल जाया करती है। जिस प्रकार टाइप राइटर पर टाइप करके टाइपिंग सीखा जा सकता है, उसी प्रकार बोल-चाल के अभ्यास के द्वारा ही बालक वार्तालाप में निपुण हो सकते हैं। जब मैं बाल्यावस्था में था, तब मेरे पिता जी की नौकरी अकोला (विदर्भ) में थी। अकोला मराठी भाषी प्रदेश में होने के कारण वहाँ की भाषा मराठी है। माताजी बतलाती हैं कि उस समय मैं अपने आस पड़ोस के बालकों से मराठी भाषा में भलीभाँति वार्तालाप कर लेता था। बाद में जब पिताजी का तबादला जोधपुर (राजस्थान) में हुआ, तो अभ्यास न रहने के कारण, मैं मराठी भाषा में वार्तालाप करना भूल गया।

इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बालकों को वार्तालाप का अच्छा अभ्यास कराया जाए।

वार्तालाप की विशेषताएँ

अच्छे वार्तालाप में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

मधुरता

मधुरता से हमारा तात्पर्य यह है कि हम जो कुछ भी बोलें, मीठी वाणी में बोलें। हमारी बोलचाल से दूसरों को सुख मिले, उनके मन में किसी प्रकार रंजिश न हो। संस्कृत में कहा गया है कि—

"सत्य तो बोलो, परन्तु प्रिय बोलो"
"अप्रिय सत्य न बोलो"

हिन्दी भाषा के कई कवियों ने भी मीठी वाणी की बड़ी प्रशंसा की है—

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजे चहुँ ओर।
बसीकरन इक मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर।।
(तुलसीदास)

दोनों रहिमन एक से, जौं लौं बोलत नाँहि।
जान परत हैं काक पिक रुत वसन्त के माँहि।।
(रहीम)

इसी प्रकार इस दोहे को कौन नहीं जानता—

"ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे आपहु सीतल होय।।

मीठी वाणी के द्वारा हम अपने बिगड़ते काम को सँवार सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी तथा डा० हैडगेवार जैसे महापुरुषों ने अपनी मीठी बोली द्वारा कितने ही लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

प्रभावोत्पादकता

वार्तालाप का दूसरा बड़ा गुण उसका प्रभावोत्पादक होना है। कहते हैं कि लाला लाजपत राय के भाषण का एक-एक शब्द श्रोताओं के हृदयों पर हथौड़े की चोट, जैसा असर करता था। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि राजनीतिक सभाओं इत्यादि में प्रभावशाली वक्ताओं के भाषण अन्त में कराए जाते हैं ताकि लोग अन्त तक बैठे रहें।

पुरु को जब अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) के सामने बन्दी के रूप में लाया गया, तो उससे पूछा गया—

"तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए ?"

पुरु ने तुरन्त उत्तर दिया—

"जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।"

उसकी वाणी में इतना प्रभाव था कि अलक्षेन्द्र ने उसे मुक्त कर दिया।

गतिशीलता

हमारी बोलचाल तथा विचार दूसरों के लिए बोधगम्य हों, इसके लिए आवश्यक है कि हमारी भाषा में उचित गति अथवा प्रवाह हो। उचित प्रवाह या गति से तात्पर्य यह हैं कि बोलते समय हम एक ही साँस में सारी बात न कह दें। इसी प्रकार सारी बात को एक ही स्वर में कह देना भी उचित नहीं है। ऐसा करने पर, हमारी बातचीत की ओर कोई ध्यान न देगा। बोलते समय, हम विराम चिन्हों का पूरा-पूरा प्रयोग करते चलें। हमें मालूम होना

चाहिए कि कौन से स्थान पर हम विराम लेवें, कौन से स्थान पर धीमे स्वर में बोलें अथवा कौन से स्थान पर उच्च स्वर को अपनावें । ऐसा करने पर ही हमारी बोलचाल की भाषा में एक प्रवाह आ सकेगा ।

स्वाभाविकता

हमारी बोलचाल में स्वाभाविकता टपकनी चाहिए । सुनने वाले को ऐसा प्रतीत नहीं होना चाहिए कि हमारी बातचीत में बनावटीपन है । जिस की बोल चाल में बनावट होती है, उसकी लोग निन्दा करते हैं, उपहास करते हैं तथा उस पर व्यंग के वाण कसे जाते हैं । ऐसा व्यक्ति घृणा का पात्र होता है । मान लीजिए हम अपने किसी मित्र को बहुत समय के बाद मिलते हैं और बातचीत करते हुए कहते हैं :—"मित्र ! तुम से अलग रहना मेरे बस की बात नहीं । तुम्हारी याद मुझे बार बार आती है । हर रोज तुम्हारे ही सपने देखा करता हूँ ।" अब ऐसी अस्वाभाविक बात को बनावट के अतिरिक्त और क्या समझा जा सकता है ।

हाव-भाव युक्त होना

यदि हम चाहते हैं कि हमारी बातचीत सफल रहे, उस का उचित प्रभाव श्रोताओं पर पड़े तो हमारी बोलचाल हाव-भाव युक्त होनी चाहिए । किसी की मृत्यु पर यदि हम संवेदना प्रकट करने जाते हैं, तो हमारी बातचीत में करुणा और दु:ख की झलक मिलनी चाहिए । विवाह आदि उत्सवों पर शरीक होते समय चेहरे पर प्रसन्नता और मुस्कराहट होनी चाहिए । परन्तु एक बात की सावधानी रखनी होगी । हमारा हाव-भाव कहीं सीमा का उल्लंघन न कर जाए । एक छात्राध्यापक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह "रामचरितमानस" का नीचे लिखा अंश समझा रहा था:—

"तब सिव तीसरा नैन उघारा ।
चितवत काम भयौ जरि छारा ।।"

"नैन उघारा" इन शब्दों का वाचन करने के साथ साथ, वह छात्राध्यापक कक्षा की ओर आँखें फाड़ फाड़ कर देखने लगा । इसका परिणाम यह निकला कि बालक भी ऐसा ही करने लगे और सारी कक्षा में कोलाहल मच गया ।

इसलिए हाव-भाव का प्रदर्शन करते समय सीमा का ध्यान अवश्य रखा जाए ।

स्पष्टता

स्पष्टता वार्तालाप का एक प्रमुख गुण है । हम जो बात भी कहना चाहें, स्पष्ट शब्दों में कहें । गोलमोल उत्तर न दें । उदाहरणस्वरूप मेरा मित्र मेरे

पास आता है और कहता है कि परीक्षा के लिए उसे पार्कर कलम दे दिया जाए। अब पार्कर कलम बड़ा मूल्यवान होता है। मैं उसे देना नहीं चाहता। परन्तु ऊपर से यह प्रकट भी नहीं करना चाहता, और गोलमोल सा उत्तर दे देता हूँ :—"अरे भाई, तुम्हारे से कोई कलम अच्छा है ? कलम तो क्या तुम्हारे लिए जान भी हाजिर है। पर क्या करूँ, कलम निगोड़े ने भी इन्हीं दिनों खराब होना था। मैंने कलम को मरम्मत के लिए भेजा हुआ है। आशा तो है कि कलम दो तीन दिन तक आजाएगा पर निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। तुम तो जानते ही हो कि इन कलम बनाने वाले लोगों के दिमाग भी कितने चढ़े हुए हैं।" अब मेरा मित्र असमंजस में पड़ जाता है। क्या वह कलम का प्रबन्ध कहीं और से करे या कि मुझ पर विश्वास करे। यदि ठीक समय पर मुझ से कलम न मिला तो, वह मुझे मन में कोसेगा और हमारी मित्रता में गाँठ पड़ जाएगी।

इसलिए वार्तालाप में स्पष्टता का होना आवश्यक है।

शिष्टता

उपरोक्त गुणों के साथ-साथ हमारी बोलचाल में सामाजिक शिष्टता भी होनी चाहिए। छोटों के साथ कैसे बातचीत की जाए, बड़ों के साथ कैसे बोला जाए, अशिक्षित लोगों से किस ढंग से बोलें, विद्वानों के साथ कैसी बोली बोलें, ऐसी सभी बातों का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए। सामाजिक शिष्टता ही सभ्यता की निशानी मानी गई है।

शुद्धता

भाषा की शुद्धता भी बोलचाल का एक आवश्यक गुण है। हमारा उच्चारण शुद्ध हो। भाषा मुहावरेदार तथा व्याकरण सम्मत हो। हमारी बोलचाल भाषा की प्रकृति के अनुसार ही होनी चाहिए।

"मैं रोटी खाया"

यह वाक्य हिन्दी भाषा की दृष्टि से अशुद्ध है। इसके स्थान पर

"मैंने रोटी खाई।"

यह वाक्य होना चाहिए।

वार्तालाप और भाषण

विद्वानों ने भाषण को भी वार्तालाप का एक रूप कहा है। वार्तालाप में दोनों पक्ष किसी बात पर प्रश्नोत्तर के रूप में ही विचार करते हैं। परन्तु भाषण में वक्ता किसी लम्बी बात को, एक व्यवस्थित ढंग के अनुसार, अपनी ओजस्वी वाणी में श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित करता है। उस भाषण का

प्रभाव सुनने वालों पर क्या पड़ा, इसकी जानकारी, भाषण समाप्त करने के पश्चात ही हो सकती है। प्राचीन काल से हमारे यहाँ भाषण का काफी महत्व रहा है। आगे ग्राम पंचायतों में पंच लोग, ग्रामवासियों के सामने भाषण दिया करते थे। आजकल नेतागण अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए मञ्च पर आकर भाषण देते हैं। विधान-मण्डलों में, न्यायालयों में तथा वाद विवाद आदि में भाषण की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को भाषण करने की कला का भी ज्ञान कराया जाए।

भाषण में वह शक्ति है कि हँसतों को रुला दे और रोतों को हँसा दे। शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक "जूलियस सीजर" के अन्दर हम देखते हैं कि दुर्बल शरीर वाले एक व्यक्ति एन्टनी ने अपनी भाषण-कला के बल पर उस जनता को अपने पक्ष में कर लिया जो कुछ समय पहले ब्रूटस का साथ दे रही थी। वह जनता जो पहले सीजर की मृत्यु पर प्रसन्न हो रही थी, अब उसकी मृत्यु का बदला लेने के लिए उतावली हो उठी।

लेखक को १९३९ की एक घटना स्मरण आ रही है। उस समय आर्य समाज के नेता, भाग्यनगर (हैदराबाद) सत्याग्रह में विजय प्राप्त करके लौटे थे। आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता श्री खुशहाल चन्द जी के भाषण इतने ओजस्वी होते थे कि जब वह निजाम के अत्याचारों का वर्णन करते तो लोग रोने लग जाते और जब वह वहां के कर्मचारियों की मूर्खता का बखान करते तो लोग हँसने लग जाते।

ऊपर वार्तालाप के जिन गुणों की चर्चा की गई है, वे भाषण पर भी लागू होते हैं। अतएव विद्यार्थियों के लिए यह उचित है कि वे अपने अन्दर इन गुणों को धारण करें ताकि वे वार्तालाप तथा भाषण दोनों में पटु हो सकें।

पाठशाला में वार्तालाप की शिक्षा का अभ्यास

पाठशाओं में वार्तालाप का अभ्यास कराने के लिए, सब से आवश्यक बात यह है कि बालक अपने आप को कक्षा बन्धन से मुक्त समझे। कक्षा में उसे अपना ध्यान पाठ्यविषय तथा पाठ्यपुस्तक पर केन्द्रित करना पड़ता है। यह अवस्था स्वाभाविक वार्तालाप के अभ्यास में बाधक है। समय-समय पर अध्यापक को ऐसे अवकाश के अवसर निकालने चाहिए, जब कि वह बालक के साथ खुलकर बातचीत कर सके। बालक बिल्कुल घरेलू वातावरण का अनुभव करे। ऐसे अवसरों पर बालक से जो भी बातचीत की जाए, वह उस विषय पर आधारित हो, जिस में उसकी रुचि हो जैसे परिवार और परिवार के लोगों के सम्बन्ध में बातचीत, ऐसी वस्तुएं तथा दृश्यादि जिन्हें बालकों ने देखा हो और सुन्दर

सुन्दर बाल कथाएँ। अध्यापक इस बात का ध्यान रखे कि इस बातचीत में, वार्तालाप की पूर्व-कथित सभी विशेषताएँ आ जानी चाहिए।

दूसरी बात जिसकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए वह यह कि बोलते बालक को रोक कर, उसकी अशुद्धियों को ठीक करना, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। बोल चुकने के पश्चात् ही बालक की अशुद्धियाँ दूर की जाएँ। सब से अधिक आवश्यकता तो इस बात की है कि बालक उचित प्रवाह तथा गति के साथ बोल सके।। बालकों की अशुद्धियों को दूर करने के लिए अध्यापक को अपना आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। यदि अध्यापक की भाषा शुद्ध होगी तो बालक भी वैसी ही भाषा का प्रयोग करना सीख जाएँगे।

अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों को अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक साधन प्रदान करे और उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित करे। यह अधिक उपयुक्त होगा, यदि पाठशाला के समय विभाग में ही, सप्ताह में एक-दो घन्टे, इस बात के लिए नियत कर दिए जाएँ जब कि बालक खुल कर बातचीत कर सकें।

अभ्यास के साधन

मौलिक रचना या वार्तालाप का अभ्यास कराने के लिए, हम नीचे लिखे साधनों का प्रपयोग कर सकते हैं :—

चित्रों का प्रयोग :—मौखिक रचना के अभ्यास में, चित्रों का विशेष महत्व है। बालक चित्रों में रुचि लेते हैं, इसलिए अध्यापक को इस का पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए। किसी घटनात्मक अथवा प्राकृतिक चित्र को बालकों के सामने प्रस्तुत किया जाए। उस चित्र के भिन्न-भिन्न अङ्गों पर बालकों से प्रश्न पूछे जाए। कुछ समय के पश्चात चित्र कथा का भी प्रयोग किया जा सकता है। बहुत से चित्रों पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर, आपस में मिलकर, एक कहानी का रूप धारण कर सकते हैं।

कहानी रचना :—प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह छोटा हो या बड़ा कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। अपनी बाल्यावस्था में सभी ने अपनी नानी या दादी से कहानियाँ अवश्य सुनी होंगी। रात को सोते समय अथवा अवकाश के समय, वे कहानी सुनने का जिद करते हैं। न केवल बालक ही कहानी सुनना चाहता है, अपितु उसे कहानी सुनाने या कहने में भी बड़ा आनन्द आता है, चाहे वह कहानी चार-पाँच पंक्तियों की ही क्यों न हो। इस बात को ध्यान में रखकर, यदि बालकों को कहानियाँ सुनने और कहने का उचित अवसर प्रदान किया जाए, तो उनकी बोलचाल की भाषा में पर्याप्त उन्नति की जा

सकती है। प्रारम्भ में तो बालकों को छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाकर, उन्हें पुनरावृत्ति के लिए कहा जाए। बाद में बड़ी कहानियाँ ली जा सकती हैं। बालकों से, उनके द्वारा देखी हुई, भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन भी करवाना चाहिए। कभी अध्यापक कहानी का अधिकांश भाग स्वयं सुना दे, पर अन्तिम भाग छात्रों को सुनाने के लिए कहे। कभी कहानी की रूप रेखा बता कर बालकों द्वारा कहानी बनवाए।

अभिनय अथवा नाटकीकरण :—रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मतानुसार, शरीर का धर्म है, अपने आप को अभिव्यक्त करना। और यह अभिव्यक्ति होगी टाँगों द्वारा, हाथों द्वारा तथा वाणी के द्वारा। उन्होंने एक अँग्रेज दार्शनिक का उदाहरण दिया है जो मानसिक उद्वेग की दशा में टहलने लगता था। एक बालक जब रोता है, तब अपने हाथों को, पाँवों को और सिर को पटकता है। उसका सारा शरीर ही अभिव्यक्ति का साधन बन जाता है। पाठशालाओं में इस अभिव्यक्ति को रोका जाता है। प्रारम्भ से ही कठोर आज्ञा दी जाती है, हाथ मत हिलाओ, पाँव मत हिलाओ, बोलो मत। शरीर का एक एक अंग अभिव्यक्ति का साधन है, परन्तु आज की सभ्यता के युग में इस पर भी प्रतिबन्ध है।

कभी-कभी हमारी इच्छा होती है कि हम अनेक भावों को शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों द्वारा अभिव्यक्त करें। आज की सभ्यता के युग जब हम ऐसा नहीं कर सकते, तो धन खर्च करके नाटक और नृत्य देखने जाते हैं जहाँ पर कलाकार अथवा अभिनेता शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों के माध्यम के द्वारा अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का मत है कि हमारी अभिव्यक्ति की यह शक्ति नष्ट नहीं होनी चाहिए। इस लिए वे बड़े प्रबल शब्दों में, इस बात का अनुरोध करते हैं कि शिक्षा में नाट्य और अभिनय कला को प्रमुख स्थान दिया जाए।

बालक जिस भी वस्तु का अभिनय करेंगे अथवा नाटक के रूप में देखेंगे, उसे वे देर तक याद रख सकेंगे। इस लिए पढ़ी हुई कहानी या कही हुई कहानी सुन चुकने के बाद, बालकों से उसका अभिनय कराया जाए। यह कार्य दिखने में कुछ कठिन प्रतीत होता है, परन्तु यदि तीसरी या चौथी कक्षा से ही इस का अभ्यास कराया जाए तो माध्यमिक कक्षा में पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी इस कला में निपुण हो जाएँगे।

वाद विवाद प्रतियोगिता :—प्राचीन काल से ही अपने देश में शास्त्रार्थ की प्रणाली प्रचलित थी। आधुनिक युग में इसने वाद-विवाद का रूप धारण कर लिया है। उच्च कक्षाओं के लिए, यह साधन विशेष रूप से उपयुक्त है।

वाद-विवाद में एक विषय होता है, जिसके पक्ष तथा विपक्ष में, विद्यार्थियों के दो दल, प्रबल युक्तियों द्वारा अपने विचार प्रकट कपते हुए, अपने पक्ष का समर्थन करते हैं। इस साधन के द्वारा विद्यार्थी अपनी मौखिक भाषा को सशक्त बना सकते हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में एक सावधानी रखनी होगी कि कहीं ये वाद-विवाद मनमुटाव या झगड़े का रूप धारण न कर लें।

शुद्ध उच्चारण की शिक्षा

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता रहा है। भाषा विज्ञान तथा व्याकरण के ग्रन्थों में शुद्ध उच्चारण पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने एक स्थान पर कहा है—

"प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्तोष्ठौ यस्य शोभनौ।
प्रगल्भश्च विनीतश्च स वर्णान् वक्तुमर्हति ॥

अर्थात जिसकी प्रकृति अच्छी है, जिसके दाँत और ओष्ठ अच्छे हैं, जो वार्तालाप में प्रगल्भ तथा विनीत है, वही वर्णों का ठीक-ठीक उच्चारण कर सकता है।

उच्चारण भिन्नता

यद्यपि भारत की प्रायः सभी भाषाएँ, संस्कृत से ही निकली हैं, परन्तु फिर भी भौगोलिक कारणों से, तथा अन्य राष्ट्रों के लोगों के सम्पर्क के कारण प्रत्येक भाषा के उच्चारण में कुछ विभिन्नता आगई है। इसके साथ ही उच्चारण शिक्षण की समुचित व्यवस्था न रहने से, अनेकों मूल ध्वनियों के उच्चारण भी हम भूल से गए हैं। ङ, ञ, ॠ, ऌ, ॡ, ष, क्ष और ज्ञ, ऐसी ही ध्वनियाँ हैं। एक ही भाषा का उच्चारण, भिन्न-भिन्न प्रान्तों वाले, भिन्न-भिन्न ढंग से करेंगे। इसका कारण, प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा की कुछ निजी विशेषताएँ हैं।

उच्चारण दोष के कारण

छात्रों में जो उच्चारण सम्बन्धी दोष पाए जाते हैं, उसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

१—अहिन्दी भाषी लोगों के अशुद्ध उच्चारण का कारण, क्षेत्रीय प्रभाव तथा उनकी प्रान्तीय भाषा की अपनी विशेषता हो सकता है।

२—माता-पिता, कुटुम्बी, परिजन या पड़ोसियों के अशुद्ध उच्चारणों को सुन कर, विद्यार्थी प्रायः अशुद्ध बोला करते हैं।

३—प्रारम्भिक शिक्षा के समय, विद्यार्थियों के उच्चारण की ओर आव-

श्यकता से कम ध्यान दिया जाता है । अनेकों विद्यार्थी तो स्वरों और व्यञ्जनों का भी शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते ।

४—संकोच, भय, अति शीघ्रता तथा असावधानी आदि के कारण से भी उच्चारण में अनेकों त्रुटियाँ आजाती हैं ।

५—यदि अध्यापक का उच्चारण अशुद्ध होगा, तो बालक भला कैसे शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं ।

६—कभी-कभी विद्यार्थियों के उच्चारण यन्त्र में अथवा कण्ठ, ओठ, तालू, दाँत आदि में ऐसा विकार उपस्थित हो जाता है, जिससे उसके उचित उच्चारण में व्याघात होता है ।

अशुद्ध उच्चारण का निराकरण

विद्यार्थियों के अशुद्ध उच्चारण का निराकरण करने के लिए नीचे लिखे साधन अपनाए जा सकते हैं :—

१—विद्यार्थियों को हिन्दी भाषा सुनने के यथेष्ट अवसर दिए जाएँ, जिससे कि वे अपनी त्रुटियों को समझ सकें । शिक्षक की वाणी, ग्रामोफोन रिकार्ड, रेडियो आदि के द्वारा भी विद्यार्थी बहुत कुछ सीख सकते हैं । कभी-कभी हिन्दी के स्थानीय विद्वानों को बुलाकर, उन के भाषणादि कराये जाएँ ।

२—यद्यपि देश के अनेकों विद्यालयों में अंग्रेजी ध्वनि-तत्व सिखाया जाता है, परन्तु नागरी ध्वनि तत्व की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक हिन्दी का अध्यापक, नागरी ध्वनि-तत्व का पूरा ज्ञान प्राप्त करे ।

३—विद्यार्थियों को इस बात का अभ्यास कराया जाए कि वे पूरा वाक्य, उचित बल, विराम तथा स्वर के साथ पढ़ सकें । कविताओं की आवृत्ति तथा गायन आदि के द्वारा उन्हें स्वराघात का अभ्यास कराया जा सकता है ।

४—उच्चारण-अंग में कोई विकार हो जाने पर, समुचित चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिए ।

५—जिस शब्द का उच्चारण बालक ठीक-ठीक नहीं करता, उस के शुद्ध स्वरूप का बार-बार अभ्यास कराया जाए ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Discuss the importance of oral work in teaching Hindi as the Mother Tongue and state briefly the different methods you would employ in developing the oral self-expression of students.

(2) "Oral expression is one of the best means for the development of personality." Discuss the statement explaining the different types of oral work that can be attempted in the Primary classes.

(३) विद्यार्थियों के अशुद्ध उच्चारण के क्या कारण हो सकते हैं ? उन का निराकरण कैसे किया जासकता है ?

(४) विद्यार्थियों को मौखिक रचना का अभ्यास कराने के लिए किन किन साधनों को अपनाया जा सकता है ।

(५) मौखिक भाषा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखो कि अच्छे वार्तालाप में कौन कौन से गुण होने चाहिए ।

अध्याय ४

वाचन शिक्षण

वाचन का जीवन में महत्व:—वाचन शिक्षण का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। जीवन में पग-पग पर ऐसे अवसर आते हैं जब कि हमें वाचन की आवश्यकता पड़ती है। आजकल के जीवन में समाचार पत्रों का एक प्रमुख स्थान हो गया है। शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ समाचार पत्रों का क्षेत्र और भी बढ़ेगा। जब तक प्रारम्भ से ही वाचन का समुचित अभ्यास बालकों को नहीं कराया जायगा, तब तक वे आगे जाकर समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का प्रयोग करके उससे लाभ कैसे उठा सकेंगे। आज का बालक ही कल का सभ्य नागरिक बनेगा और एक जागरूक राष्ट्र के नागरिक के जो जो उत्तर-दायित्व हैं, उन्हें उसे पूरा करना होगा। उसे सभा सोसाइटी आदि में जाना होगा, अभिभाषण देना होगा, अभिनन्दन पत्र पढ़ना होगा, तथा घोषणाएं आदि पढ़नी होंगी। इन सभी दृष्टियों से, वह तभी सफल हो सकेगा, जब कि उसे वाचन का अच्छा अभ्यास होगा।

वाचन के प्रकार

वाचन के दो प्रकार हैं:—(१) सस्वर वाचन और (२) मौन वाचन, कुछ शिक्षा शास्त्रियों द्वारा इन के लिए क्रमशः "वाचन" और "पठन" शब्दों का भी व्यवहार होता है। इन दोनों प्रकार के वाचनों के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

सस्वर वाचन:—सस्वरवाचन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:—

१—अक्षरों तथा शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना और शब्दों तथा वाक्यों को उचित, बल, विराम तथा स्वरारोह के साथ पढ़ना।

२—बालकों में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना कि बालक जो पढ़ें, उनका भाव समझ सकें और दूसरों को समझा सकें।

३—बालक इस ढंग से पढ़ सकें, जिससे सुनने वाले, बिना प्रयास के स्पष्ट रूप से सुन सकें।

सस्वर वाचन के भेद :—सस्वर वाचन के प्रमुख भेद हैं :—(i) व्यक्तिगत वाचन (ii) सामूहिक वाचन। प्रारम्भिक कक्षाओं में, जहाँ विशेष रूप से उच्चारण का अभ्यास कराना अभीष्ट हो, तथा विद्यार्थियों का सस्वरवाचन ठीक कराना हो अथवा झेंपू, दब्बू और शर्मीले बालकों को प्रोत्साहन देना हो, वहाँ पर ही सामूहिक वाचन की आवश्यकता पड़ती है।

मौन वाचन और उसका महत्व :—मौन वाचन का अर्थ है, कि बालक मौन भाव से पाठ्य पुस्तक का अध्ययन करे और पठनीय विषय का भाव ग्रहण कर सके। मौन वाचन का हमारे जीवन में बड़ा महत्व है। आगे चल कर प्रौढ़ जीवन में वाचन का अधिकांश कार्य, मौन वाचन के द्वारा ही करना पड़ता है। मनोरंजन के लिए तथा ज्ञानोपार्जन के लिए, पत्र, पत्रिकाएँ पढ़ना, समाचार पत्र पढ़ना, पुस्तकालय में बैठ कर पढ़ना, यह सब कार्य मौन वाचन पर ही निर्भर रहते हैं।

वाचन और उसकी विशेषताएँ

वाचन की विशेषताओं पर प्रकाश डालने से पूर्व हमें सबसे पहले यह देखना होगा कि वाचन से हमारा तात्पर्य क्या है ? "यह राम है", "यह सीता है", "काशी भारत की प्राचीन नगरी है", क्या वाक्यों का ठीक-ठीक उच्चारण कर देना मात्र ही वाचन है ? हम प्रतिदिन बालकों से वाचन करवाते हैं, परंतु कभी भी यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि वाचन आखिर है क्या ? मान लीजिए हम यह जानना चाहते हैं कि नीरज और ममता नाम के दो बालक वाचन कर सकते हैं या नहीं। इसके लिए हम क्या करेंगे ? आम तौर पर यही किया जाता है कि बालकों के हाथ में कोई पुस्तक दे देना और उन्हें पढ़ने के लिए कहना। परन्तु क्या इतने से ही हम जान जाएँगे कि बालक ठीक प्रकार से वाचन कर सकते हैं ? इसी बात को हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए, बालकों को नीचे लिखा अवतरण पढ़ने के लिए दिया गया :—

> "पहाड़ी पर बर्फ गिर रही थी। वहाँ पर एक लम्बा सा आदमी खड़ा था। वह काले रंग का कोट पहने हुए था। उसकी कमीज में कालर नहीं था। उसने अपने सिर पर लाल रंग की

पगड़ी बँधी हुई थी। वह अपनी चमकीली आँखों से मेरी ओर देख रहा था।"

जब दोनों बालक इस अवतरण को पढ़ लेंगे, तो हमारे मन में नीचे लिखे प्रश्न उठेंगे :—

१—क्या दोनों बालक, इन शब्दों और इन की ध्वनियों को पहचानते हैं ?

२—इस अवतरण के शब्दों को पढ़ते समय, क्या वे इन के अर्थों को भी जानते थे ?

३—क्या बालकों ने मनोरंजक ढंग से पढ़ा है ?

४—क्या उन्होंने, पढ़ते समय, उचित विराम आदि लिया है ?

५—क्या उन्होंने, शब्दों का उच्चारण स्पष्ट रूप से किया है ?

६—क्या वे पढ़ते समय पाठ में रुचि ले रहे थे ?

हम और भी कई प्रकार के प्रश्न कर सकते हैं जैसे :—

१—क्या वह गर्म दिन था ?

२—क्या उस आदमी की पीठ मेरी ओर थी ?

३—क्या उस का सिर नंगा था ?

इत्यादि इत्यादि।

परन्तु पहले छः प्रश्नों के उत्तर पर ही यह निर्भर करेगा कि नीरज और ममता नाम के दोनों बालक कहाँ तक ठीक-ठीक वाचन कर सकते हैं। गैग (Gagg) के मतानुसार "शब्दों के ठीक-ठीक उच्चारण कर सकने की क्षमता", यह तो वाचन की बहुत सी विशेषताओं में से केवल एक ही विशेषता है।

"The ability to say the right words from a book is only ONE of the things to look for when deciding whether a child can read".

—Gagg and Gagg "Teaching Children to Read", P. 10.

बालक ठीक प्रकार से वाचन कर सकते हैं या नहीं, यह जानने के लिए, केवल शब्दों के ठीक ठीक उच्चारण को ही महत्व न देकर, वाचन की अन्य विशेषताओं को भी ध्यान में रखना होगा।

वाचन की विशेषताएँ

१—**शब्दों की ध्वनियाँ** (The Sounds of the words)—भिन्न-भिन्न शब्दों की ध्वनियों का ज्ञान होना बड़ा आवश्यक है। यह वाचन का बड़ा महत्वपूर्ण अङ्ग है। अभी तक केवल इसी के आधार पर ही यह निर्णय किया जाता था कि बालक वाचन की क्रिया में कहाँ तक निपुण हैं। परन्तु

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केवल इसी के आधार पर ही, हम वाचन सम्बन्धी पूरी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते ।

२—**शब्दों का अर्थ**(The Meaning of the words)—वाचन के सम्बन्ध में जो दूसरा प्रश्न किया गया था, वह शब्दों के अर्थ से सम्बन्धित था । जहाँ बालकों के लिए यह आवश्यक है कि वे शब्दों का ठीक ठीक उच्चारण जानें, वहाँ यह भी आवश्यक है कि शब्दों को पढ़ते समय, उन्हें अर्थ की प्रतीति भी होती जाए । जब तक बालक ठीक ठीक रूप से अर्थों को ग्रहण नहीं करेंगे तब तक, वे पाठ में रुचि नहीं लेंगे ।

३—**वाचन का ढंग** (Way of Expression)-वाचन के सम्बन्ध में तीसरा प्रश्न यह किया गया था कि "क्या बालकों ने मनोरंजक (interesting) ढङ्ग से पढ़ा है ? मनोरंजकता से हमारा तात्पर्य है कि बालक के वाचन में विविधता (Variety) होनी चाहिए । वीरता से युक्त उक्तियाँ, करुण रस से ओत-प्रोत स्थल तथा साधारण वर्णनात्मक पाठ, इन सब के वाचन में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहेगा ।

४—**विराम चिन्ह** (Punctuation) —किसी भी भाषा के वाचन में विराम चिन्हों का बड़ा महत्व है । वे इस बात को प्रकट करते हैं कि वाचन के समय बालकों को कहाँ-कहाँ पर विराम लेना होगा । विराम चिन्हों के द्वारा पाठ के समझने में बड़ी सहायता मिलती है । इसलिए बालकों को इस बात का प्रोत्साहन देना होगा कि वे वाचन करते समय ऐसे स्थलों पर उचित विराम लेते चलें ।

५—**स्पष्टता** (Clarity)—ऊपर यह बताया जा चुका है कि वाचन में विविधता होनी चाहिए । परन्तु यदि वाचन में स्पष्टता नहीं होगी, तो इस विविधता से कोई लाभ नही होगा । इसलिए इस बात का प्रयास करना होगा कि बालक जो कुछ भी पढ़ें, स्पष्ट रीति से पढ़ें । उनके उच्चारण में अस्पष्टता का लेश मात्र भी नहीं होना चाहिए ।

६—**रुचि** (Interest)-वाचन के सम्बन्ध में हमारा अन्तिम प्रश्न बालकों की रुचि से सम्बन्धित था । यदि बालकों की वाचन रुचि नहीं होगी, यदि उन्हें पढ़ने में आनन्द नहीं आएगा तो वे पढ़ने से दूर भागेंगे । इसलिए इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा कि बालकों को वही कुछ पढ़ने के लिए दिया जाए जो कि उन्हें अच्छा लगे ।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होगया होगा कि वाचन से हमारा क्या तात्पर्य है और ऐसी कौन कौन सी बातें हैं जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि बालक पढ़ना जानते हैं, अथवा नहीं ।

वाचन शिक्षण की विधियाँ

भिन्न भिन्न शिक्षा शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने वाचन के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये हैं। इन अनुसन्धानों के आधार पर शिक्षा जगत में वाचन ए सम्बन्धी कई विधियाँ प्रचलित हैं। उनमें से कुछ मुख्य नीचे दी ी हैं :—

(क) स्वरोच्चार विधि
(ख) देखो और कहो विधि
(ग) अक्षर बोध विधि
(घ) अनुकरण विधि
(च) ध्वनि साम्य विधि
(छ) सामूहिक पाठन विधि
(ज) भाषा-शिक्षण यन्त्र विधि
(झ) साहचर्य्य विधि
(ट) वाक्य-शिक्षण विधि
(ठ) कहानी-विधि

च्चार विधि (The Phonic and Phonetic Method)

स्वरोच्चार विधि का सम्बन्ध अक्षरों तथा शब्दों की ध्वनि से है। पश्चिम ए यह विधि चाहे नई हो परन्तु भारत जैसे देश के लिए इस विधि में नवीनता नहीं। भारत में यह विधि बहुत पहले से ही प्रचलित थी। इस में शब्दों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष रूप से बल दिया जाता है। इस से भारतीय भाषाएँ, अंग्रेजी भाषा से कहीं अधिक आगे हैं। अंग्रेजी में एक अक्षर की कई-कई ध्वनियाँ होती हैं परन्तु भारतीय भाषाओं में अक्षर की एक ही ध्वनि होती है।

हिन्दी भाषा में प्राय: तेरह स्वरों का ही प्रयोग किया जाता है परन्तु एँ बारह स्वरों की ही होती हैं, क्योंकि "ऋ" की मात्रा "ृ" का प्रयोग कृपा, पृथ्वी, मृत, सृष्टि; पृष्ठ, गृह, हृदय जैसे कुछ संस्कृत शब्दों में ही जाता है। मात्रा सिखाने की पुरानी पद्धति में क, का, कि, की, कु, कू, , को, कौ, कं, क: आदि बारह खड़ी का प्रयोग किया जाता था। विद्या- को बारह खड़ी रटवा दी जाती थी। परन्तु अब इस पद्धति में सुधार ा है और स्वरों का ज्ञान नीचे लिखे ढंग से कराया जाता है :—

क्+अ=	क,	क्+आ=	का;
क+इ=	कि,	क्+ई=	की;

क्+उ=	कु,	क्+ऊ=	कू;
क्+ए=	के,	क्+ऐ=	कै;
क्+ओ=	को,	क्+औ=	कौ;
क्+अं=	कं,	क्+अः=	कः

इस पद्धति के द्वारा विद्यार्थियों को यह पता चल जाता है कि किसी व्यञ्जन में विभिन्न स्वरों के सम्पर्क से उन्हीं जैसी ध्वनि पैदा हो जाती है।

इस पद्धति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कठिनाइयाँ भी हैं :—

(१) छोटे छोटे बालक क्, ख्, ग्, घ्, जैसे हलन्त व्यञ्जनों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं कर पाते। वे इन व्यञ्जनों को भी क ख ग घ आदि के समान पढ़ते हैं।

(२) श्री मेनजिल (E. W. Menzal) का मत है कि स्वरोच्चार विधि द्वारा किसी अपरिचित शब्द को पहचानने में तो बड़ी सहायता मिलती है परन्तु द्रुतगति से, बाधा रहित वाचन में इस विधि से कोई सहायता नहीं मिलती। उन्हीं के शब्दों में :—

"These 'sound' methods are ideal for giving the power to attack occasional unfamiliar words but not for fluent reading……"

—E. W. Menzel "The Teaching of Reading", p. 41.

अतएव स्वरोच्चार विधि के साथ-साथ हमें अन्य विधियों का भी प्रयोग करना होगा।

देखो और कहो विधि (Look and Say Method)

इस विधि के द्वारा न तो पहले अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है और न ही उनकी ध्वनियों का। इनके स्थान पर प्रारम्भ से ही बालकों को शब्दों का परिचय कराया जाता है। इस विधि में चित्रों का प्रयोग आवश्यक है। चित्रों के ऊपर या नीचे, उनका बोध कराने के लिए शब्द लिखे रहते हैं। चित्रों का आकार इतना बड़ा होता है कि उन्हें चित्र के निकट आने की कोई आवश्यकता नहीं। बालक अपने-अपने स्थानों पर रहते हुए उस चित्र को देख सकते हैं। यदि अध्यापक चाहे तो श्यामपट पर स्वयं भी चित्र बना सकता है। इन चित्रों के द्वारा उन्हीं शब्दों का परिचय बालकों को कराया जाता है जो कि उनकी अनुभव-परिधि के भीतर हों।

यह पद्धति बड़ी आकर्षक और रोचक है। अनेकों बार उस चित्र और शब्द को देखने के बाद उस शब्द का चित्र, बालक के मानस-पटल पर गहरा अंकित हो जाता है। जब-जब वह उस वस्तु या चित्र का स्मरण करता है तब

तब उसे वह शब्द-चित्र भी याद आजाता है। इस शब्द-चित्र में कई वर्ण होते हैं जैसे "शलगम" में श, ल, ग तथा म। इन सभी वर्णों से वह भली-भाँति परिचित हो जाता है। शनैः शनैः ऐसे ही अन्य चित्रों और शब्दों के आधार पर उसका वर्ण-ज्ञान, इतना पूर्ण बना दिया जाता है कि वह उन वर्णों से बने किसी अन्य शब्द को भी पढ़ सकने में पूर्णतया समर्थ होता है। थोड़े से अभ्यास के पश्चात् वह इन शब्दों के वर्णों को लिख भी सकता है।

इस विधि की कुछ सीमाएँ भी हैं। इस पद्धति के द्वारा केवल वही शब्द लिए जा सकते हैं, जो बालक की अनुभव-परिधि के भीतर हों। शब्दों की संख्या अपरिमित है। इसलिए अपरिचित शब्दों को पढ़ाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस पद्धति में यदि थोड़ी सी भी असावधानी हुई तो बड़ा अनर्थ हो सकता है और बालक कुछ का कुछ पढ़ सकते हैं।

अक्षर बोध विधि (The Alphabet Method)

यह विधि संसार की सबसे पुरानी विधि है। अभी तक इस विधि का प्रयोग भारतीय भाषाओं के लिए किया जाता है। इस विधि के द्वारा क्रमानुसार वर्णमाला के भिन्न-भिन्न अक्षरों का ज्ञान बालकों को कराया जाता है। अक्षरों का ज्ञान हो जाने पर बालकों को शब्द बनाने सिखाये जाते हैं जैसे ब, र, ग, द = बरगद; अ, च, क, न = अचकन। जहाँ तक नागरी लिपि का सम्बन्ध है, यह पद्धति अधिक दोषपूर्ण नहीं क्योंकि नागरी लिपि की वर्णमाला के अक्षरों का क्रम, उच्चारण-स्थान के अनुसार ही निश्चित है।

श्री मैन्जिल (E. W. Menzel) के मतानुसार इस विधि के द्वारा वर्णमाला को सीखने में बहुत अधिक समय लग जाता है। छोटे-छोटे बालक महीनों वर्ण-माला के अक्षर रटते रहते हैं। वर्णमाला को सीखने में कठिनाई का भी एक कारण है। क्, ख्, ग्, घ् इत्यादि निरर्थक ध्वनियाँ हैं, जिनका बालक के लिए कोई उपयोग नहीं होता।

इस विधि का दूसरा दोष यह है कि जब बालक एक-एक अक्षर से पूरा शब्द बनाएगा (जैसे ब, ट, न = बटन) तो उसे इस प्रकार पढ़ने का अभ्यास हो जाएगा और वह आगे चल कर उचित गति से वाचन कर सकने में समर्थ नहीं होगा।

अनुकरण विधि (Imitation Method)

यह विधि भी एक प्रकार से "देखो और कहो" विधि का एक दूसरा रूप है। इस पद्धति में अध्यापक एक-एक शब्द कहता जाता है और बालक उस शब्द की ध्वनि का अनुकरण करते चलते हैं। हिन्दी भाषा के लिए इस विधि

का कोई विशेष महत्व नहीं क्योंकि यहाँ पर एक अक्षर की एक ही ध्वनि होती है। यह पद्धति उन्हीं भाषाओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है जहाँ पर एक अक्षर की एक से अधिक ध्वनियाँ होती हैं अथवा जहाँ पर लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है।

जैसे अंग्रेजी भाषा के कुछ शब्दों को ले लीजिए :—

(i) Balm (बाम), यहाँ पर ल् (L) नहीं बोला जाता।

(ii) Psychology (साईकालोजी), यहाँ पर प् (P) और h नहीं बोला जाता।

(iii) Cite (साइट), Cat (कैट), एक स्थान 'C' की ध्वनि "स" के समान है और दूसरे स्थान पर "क" के समान।

(iv) Cup (कप), But (बट), Put (पुट), Bull (बुल); कहीं पर 'U' (यू) की ध्वनि 'अ' के समान है और कहीं पर 'उ' के समान।

ध्वनि साम्य विधि

इस विधि में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि प्रारम्भिक अवस्था में, बालकों के सामने वही शब्द रखे जाएँ जिनकी ध्वनियों में समानता हो जैसे :—

धर्म, मर्म, गर्म, कर्म, चर्म

लट्टू, टट्टू, निखट्टू

परन्तु इस विधि में कुछ कठिनाइयाँ हैं :—

१—बालक घर में "कर्म" के स्थान पर 'काम' तथा "चर्म" के स्थान पर 'चाम' शब्द का प्रयोग करता है। इस प्रकार "धर्म" का 'धरम' और "गर्म" का 'गरम' कहा जाता है।

२—इस विधि के द्वारा उन शब्दों के विषय में भी कठिनाई होती है जो बालक की अनुभव-परिधि के बाहिर हों। बालक "लट्टू" का अर्थ तो जान लेता है परन्तु "टट्टू" और "निखट्टू" को नहीं समझ सकता।

सामूहिक पठ विधि

इस विधि के द्वारा अध्यापक बालकों के एक समूह को अथवा पूरी कक्षा को छोटे छोटे पद्य या गीत सुनाता है जैसे :—

'डग डग डग डग करता आया
बन्दर वाला बन्दर लाया
हाथ में इक मोटा सा डण्डा
डण्डे में इक लाल सा झण्डा

कन्धे पर मैला सा झोला
पीछे बन्दर भोला भाला ॥

Ryburn "Suggestions for Teaching of Mother Tongue."
—page 27,

और बालक अध्यापक का अनुकरण करते चलते हैं। भावपूर्ण गद्यांशों तथा नाटकों के कुछ अंशों के वाचन में भी इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

इस विधि के द्वारा बालक का उच्चारण सुधारा जा सकता है तथा वे हाव-भाव द्वारा वाचन करना भी सीख सकते हैं।

भाषा शिक्षण-यन्त्र विधि (Linguaphone Method)

यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में यह एक नवीन विधि है। परन्तु फिर भी हम इसे अनुकरण विधि का एक दूसरा रूप कह सकते हैं। अनुकरण-विधि में अध्यापक द्वारा शब्दों का उच्चारण होता है और बालक उसका अनुकरण करते हैं परन्तु इस विधि में ग्रामोफोन के रिकार्डों का प्रयोग किया जाता है। बालक ग्रामोफोन रिकार्डों को सुनते हैं और वैसा ही अनुकरण करने का प्रयास करते हैं।

इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं :—

(क) बालकों को व्यवस्थित रूप से शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

(ख) बालकों के उच्चारण में एकरूपता आजाती है।

परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयाँ भी है, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती जैसे :—

(क) भारतीय भाषाओं में अभी इस प्रकार के ग्रामोफोन रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं।

(ख) इस विधि के द्वारा बहुत अधिक व्यय होता है। भारत जैसे निर्धन देश के लिए इतना खर्च उठाना सम्भव नहीं।

साहचर्य्य विधि

इस विधि का आविष्कार श्रीमती मांटेसरी ने किया था। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में इसी विधि का अधिक प्रयोग किया जाता है। इस विधि के अनुसार कई प्रकार के चित्र तथा खेलने की वस्तुएँ, एक कमरे में एकत्रित कर ली जाती हैं। वस्तुएँ वही होती हैं जो बालकों की अनुभव-परिधि के भीतर हों। इन वस्तुओं तथा चित्रों आदि के नाम कार्डों पर लिखे होते हैं। उन कार्डों को आपस में मिला दिया जाता है। बालक दीवार पर लटके हुए चित्रों

और कमरे में पड़ी हुई वस्तुओं को देखता है और इनके नामों को कार्डों में ढूंढ़ने का प्रयास करता है। लगातार अभ्यास करते-करते बालक अनेकों शब्दों और वर्णों से परिचय प्राप्त कर लेता है। वह पढ़ने में रुचि तथा उत्साह लेने लगता है। इस विधि के कई रूपान्तर भी हो सकते हैं।

इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा केवल कुछ संज्ञाओं का ही ज्ञान कराया जा सकता है। अतएव इस विधि का उपयोग केवल छोटी कक्षाओं तक ही सीमित रह सकता है।

वाक्य-शिक्षण विधि (Sentence Method)

मनोवैज्ञानिकों और शिक्षा-शास्त्रियों का कथन है कि छोटे बालकों को पढ़ाने का क्रम नीचे लिखे नियमानुसार होना चाहिए :—

(i) वाक्य
(ii) शब्द
(iii) वर्ण

बालक अपने मन के भाव अक्षरों द्वारा कभी व्यक्त नहीं करते और न अक्षरों को जोड़-जोड़ कर शब्द पूरे किया करते हैं। वे अपनी मातृभाषा में पूरे-पूरे वाक्यों द्वारा अपने मनोभाव व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस कार्य में सफलता भी जल्दी ही मिलने लगती है। लगभग तीन वर्ष की अवस्था से ही बालक अपने भावों को प्रकट करने के लिए पूरे-पूरे वाक्य बोलने लगते हैं। यह अलग बात है कि उनके वाक्य दो-तीन शब्दों तक ही सीमित होते है जैसे :—अम्मा दूध दे। माँ पानी ला। दीदी रोटी दे। दीदी दाल दे।

अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालकों को पढ़ना सिखाने के लिए, वाक्योच्चार विधि का प्रयोग करना चाहिए।

वाक्य-शिक्षण विधि इस सिद्धान्त पर अवलम्बित है कि बालक जब पुस्तक पढ़ने लगते हैं तो उनकी दृष्टि पहले पूरे वाक्यों पर पड़ती है, बाद में धीरे-धीरे शब्दों पर जाती है। इसलिए शब्दों की अपेक्षा पूरे वाक्य को ही बार-बार देखकर पहचान लेना अधिक सरल होगा।

इस विधि में पहले बालक के सामने एक वाक्य रखा जाता है, जैसे :—

अनार मीठा है,

बालक के सामने अनार का चित्र होगा और उसके नीचे यह वाक्य लिखा होगा। अध्यापक बालकों से इस वाक्य का अभ्यास कराएगा। अच्छी प्रकार से अभ्यास हो जाने पर इसी वाक्य के कई अन्य उपवाक्य बालकों के सामने रखे जाएंगे, जैसे :—

(i) मीठा है अनार ।
(ii) अनार है मीठा ।
(iii) है अनार मीठा ।
(iv) मीठा अनार है ।
(v) है मीठा अनार ।

बालक बार-बार इन वाक्यों को देखेंगे, इनका उच्चारण करेंगे, इनको सुनेंगे । इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर वे इन शब्दों को पहचानने में समर्थ हो जाएँगे ।

कहानी विधि (The Story Method)

कहानी-विधि, वाक्य-शिक्षण पद्धति का एक परिवर्तित रूप है । वाक्य शिक्षण पद्धति में हम एक वाक्य को लेते हैं परन्तु कहानी में कई वाक्य लिए जाते हैं । किसी कहानी से सम्बन्धित कई चित्र बालकों को दिखाए जाते हैं । उन चित्रों के नीचे एक-एक वाक्य लिखा होता है । कई चित्र मिल कर एक कहानी का सृजन करते हैं । चित्रों के नीचे लिखे वाक्यों के अक्षर बड़े-बड़े होते हैं, जिन्हें बालकों के नेत्र सुगमतापूर्वक ग्रहण कर सकते हैं । इन कहानियों के सुनने के पश्चात् बालक उनमें प्रयुक्त वाक्यों से परिचय प्राप्त करते हैं । वाक्यों से परिचय प्राप्त हो जाने पर, बालक शब्दों को भी समझने लगते हैं । कई बार कहानी से सम्बन्धित वाक्य श्यामपट पर भी लिख दिये जाते हैं ।

बालकों को कहानी-विधि द्वारा ही क्यों शिक्षा दी जाए, यह प्रश्न पूछा जा सकता है । कहानी-विधि का प्रयोग करने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

१—बालक घर में कहानी सुनते हैं और उसमें बड़ी रुचि लेते हैं । पाठशाला में भी यदि कहानी-पद्धति द्वारा वाचन की शिक्षा दी जाए, तो वे पढ़ने में बड़ी जल्दी प्रगति करेंगे ।

२—आजकल मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा-शास्त्री शिक्षा को अधिक से अधिक मनोरंजक बनाने का प्रयास कर रहे हैं । कहानी के अतिरिक्त, कोई और इतना मनोरंजक साधन नहीं जिसका उपयोग वाचन-शिक्षण में हो सके ।

३—कहानी किसी तथ्य का सम्पूर्ण वर्णन है । सम्पूर्ण वर्णन के पश्चात् ही हम कहानी के अवयव वाक्यों की ओर आते है । अतएव हम कहानी के द्वारा "सम्पूर्ण से अवयव की ओर", इस शिक्षा सूत्र की पूर्ति करते हैं ।

४—बिना रुक-रुक कर, एक प्रवाह से पढ़ना, यह सब कुछ कहानी-पद्धति द्वारा ही सम्भव हो सकता है ।

५—कहानी-पद्धति द्वारा मौन-वाचन का अभ्यास बड़ी सरलता से कराया जा सकता है।

कहानी-विधि की सफलता के लिए नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं :—

(i) केवल रोचक कहानियाँ ही बालकों को सुनाई जाएं।

(ii) पहले बालक कहानी को ठीक प्रकार से समझ लेवें, फिर उनके द्वारा वाक्यांशों तथा शब्दों का उच्चारण करवाना चाहिए।

(iii) कहानी ठीक रीति से हाव-भाव अनुसार पढ़ी जाए।

(iv) कहानी में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाए, जिनसे बालक परिचित हैं।

(v) कोई भी कहानी ९, १० पंक्तियों से बड़ी न हो।

(vi) कहानी का कोई वाक्य एक पंक्ति से अधिक लम्बा न हो ताकि वह एक बार ही देखा जा सके।

वाचन सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विधियों की चर्चा कर लेने के पश्चात् अब प्रश्न उठता है कि इन में से आदर्श पद्धति कौन सी है। वास्तव में हमारा प्रयास तो यह होना चाहिए कि सभी विधियों का यथा योग्य व्यवहार किया जाए। कोई बालक किसी वस्तु को देखकर अधिक प्रभावित होते हैं तथा कोई सुन कर।

इस सम्बन्ध में श्री मैन्जिल (E. W. Menzil) ने नीचे लिखे विचार प्रकट किए हैं—

"I am convinced that although adults can make rapid progress by "sound" methods, small children cannot. I would advocate for small children a method, using phonics but predominently the sentence and story method."

—"The Teachig of Reading", p. 52.

अर्थात् प्रौढ़ शिक्षा के लिए तो हमें स्वरोच्चार तथा वर्णोच्चार पद्धतियों का ही प्रयोग करना चाहिए परन्तु छोटे-छोटे बालकों को पढ़ना सिखाने के लिए ध्वन्यात्मक-विधि, वाक्य-शिक्षण विधि तथा कहानी-विधि इन सभी का सम्मिश्रण करना होगा।

वाचन शिक्षण से पूर्व
(Pre-Reading Work)

छोटे-छोटे बालकों को पढ़ना सिखाने के लिए हम किसी भी विधि का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु सबसे पहली बात है, उनको पढ़ने के लिए तैयार करना। बालक एक क्रियाशील प्राणी है। वह हर समय कुछ न कुछ करना

चाहता है। इसलिए सबसे आवश्यक बात है बालक की इस क्रियाशीलता को जागृत रखना। उसकी क्रियाशीलता को जागृत रखने के लिए नीचे लिखी बातें करनी होंगी :—

१—**चित्रों के सम्बन्ध में बातचीत** (Talking about Pictures)—बालकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र दिखाए जाएँ, उन चित्रों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाएँ और इन प्रश्नों के आधार पर उन से चित्रों के सम्बन्ध में बातचीत की जाए। इससे बालक चित्रों में दी हुई प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखेंगे और उनकी निरीक्षण शक्ति बढ़ेगी।

२—**चित्र बनवाना** (Making Pictures)—अध्यापक को चाहिए कि वह सूखे तथा पानी के रंगों द्वारा बालकों से चित्र बनवाए और बालक एक दूसरे के चित्र के सम्बन्ध में बातचीत करें।

३—**वस्तुएँ बनवाना** (Making Things)—बालकों की क्रियाशीलता का विकास करने के लिए उनसे, मिट्टी की, गत्ते की, कागज की तथा इसी प्रकार कई अन्य उपकरणों द्वारा वस्तुएँ बनवाई जाएँ।

४—**नाटकीकरण** (Dramatization)—ऐसी कहानियाँ तथा दृश्य जिनमें गतिशीलता हो, बालक नाटक के रूप में खेल सकते हैं। इसके द्वारा वे हावभाव पूर्ण बातचीत करना सीखेंगे।

५—**कहानी सुनना** (Telling stories)—समय समय पर बालकों को कहानी सुनाते रहना चाहिए। इसके द्वारा उनकी कल्पना शक्ति का विकास होगा तथा उनका शब्द भण्डार भी बढ़ेगा।

मुद्रण से परिचय (Finding Print)

बालकों में क्रियाशीलता का विकास करने के पश्चात दूसरी आवश्यक बात है, मुद्रित कार्य से बालकों को परिचित कराना। इसके लिए इन बातों को अपनाना होगा :—

१—बालकों को मुद्रित पुस्तकें दिखलाई जाएँ।

२—उनके कमरे में एक स्थान पर कुछ चित्रों वाली, सुन्दर मुद्रित पुस्तकें होनी चाहिए, जिनको वे जब चाहें देख सकें।

३—समाचार पत्रों से चित्र आदि कटवाकर, उनसे अवतरण पुस्तिकाएँ (Scrap Books) तैयार करवाई जाएँ।

४—प्रति दिन किसी केन्द्रीय स्थान पर रखे हुए श्यामपट पर समाचार लिखे जाएँ और उन्हें पाठशाला के प्रारम्भ में, प्रार्थना के पश्चात सुनाया जाए।

५—द्वार, खिड़की, रोशनदान, श्यामपट आदि पर इनके नामों को प्रदर्शित करने वाले लेबल लगाए जाएँ।

६—पाठशाला सम्बन्धी सूचनाएँ सुनाने के साथ साथ, टाईप करवा के नोटिस बोर्ड पर भी लगवाई जाएँ ।

७—बालकों के कमरे में ऐसे चित्र हों जिन के नीचे वाक्य लिखे हों और इन वाक्यों से मिलकर एक कहानी बने ।

इस सब कार्यों के द्वारा हम बालकों को वाचन के लिए तैयार कर सकते हैं।

सामूहिक वाचन

(Group Reading)

जब भिन्न-भिन्न विधियों द्वारा बालकों ने पढ़ना सीख लिया, तब एक बात और रह जाती है, वह है पढ़ने का अभ्यास करना । इस सम्बन्ध में जो सब से महत्वपूर्ण बात है वह यह कि छोटी कक्षाओं में सस्वर वाचन (Loud Reading) का अभ्यास होना चाहिए । इससे अध्यापक को बालकों की वाचन सम्बन्धी त्रुटियों का ज्ञान हो जाता है । सस्वर वाचन का अभ्यास कराने के लिए सबसे उक्त साधन है, सामूहिक वाचन (Group Reading) । सामूहिक वाचन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना होगा:—

१—भिन्न भिन्न बालकों के वाचन में अन्तर होता है, इसलिए सारी कक्षा का एक साथ वाचन करवाने की बजाए कक्षा को तीन तीन, चार चार, बालकों के समूहों (groups) में विभाजित कर दिया जाए ।

२—किसी भी समूह में छः से अधिक बालक न हों ।

३—इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि प्रत्येक समूह के बालकों की वाचन सम्बन्धी योग्यता लगभग एक समान हो ।

४—सामूहिक वाचन का अभ्यास करने वाले समूह, एक दूसरे से काफी अन्तर पर हों । जिससे एक समूह की आवाज़, दूसरे समूह तक न पहुँचे ।

५—बालकों को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वे जहाँ बैठ कर वाचन का अभ्यास करना चाहें, कर सकें । कुछ बालक कमरे में ही बैठ कर अभ्यास करना चाहेंगे, कुछ उद्यान में जाना पसन्द करेंगे, कुछ छात्र धरती पर बैठ कर पढ़ेंगे तथा कुछ को बेंचों या कुर्सियों पर बैठ कर पढ़ना अच्छा लगेगा ।

६—इस बात की विशेष सावधानी रखी जाए कि समुदाय का जो नेता हो, वह वाचन में निपुण हो ।

सामूहिक वाचन के लिए पुस्तकें :—अब यह प्रश्न उठता है कि सामूहिक वाचन के लिए किन पुस्तकों से अभ्यास कराया जाए । कुछ लोग तो बालकों

की पाठ्य पुस्तकों से ही सामूहिक वाचन का अभ्यास कराना चाहेंगे। परन्तु यह ठीक नहीं। बालक अपनी पाठ्य पुस्तकें तो प्रतिदिन पढ़ते ही हैं, इस लिए उन्हें, इनमें नवीनता नहीं दिखाई देगी। वे पाठ्य पुस्तकों के सम्बन्ध में अधिक रुचि भी नहीं दिखाएँगे। सामूहिक वाचन के लिए, जो भी अन्य पुस्तकें चुनी जाएँ, उन में नीचे लिखे गुण होने चाहिए :—

(i) **विविधता** (Variety)—पाठ्यवस्तु सम्बन्धी (of subject matter), पाठ की लम्बाई सम्बन्धी (of length) और कठिनाई सम्बन्धी (of difficulty)

(ii) **रोचकता**

कहने का तात्पर्य यह कि सामूहिक वाचन सम्बन्धी पुस्तकें अपने में पूर्ण होनी चाहिए। वे भिन्न भिन्न विषयों पर हों और भिन्न भिन्न समूहों की योग्यता अनुसार सरल अथवा कठिन हों।

सामूहिक वाचन कैसे किया जाए ?–सामूहिक वाचन के लिए सब से पहले निश्चित समय पर, भिन्न भिन्न समूह अपने स्थानों पर चले जाएँगे। जिस पाठ का वाचन करना होगा, उसे पहले समूह का नेता पढ़ेगा और बाकी के बालक उसे ध्यानपूर्वक सुनेंगे। इसके पश्चात् बारी-बारी से और बालक वाचन करेंगे और समूह के शेष सदस्य उसे सुनेंगे। इसी प्रकार यह क्रम चलेगा। अध्यापक का कार्य होगा कि वह समयानुसार भिन्न भिन्न समूहों में जाए और देखे कि वाचन किस प्रकार चल रहा है, क्या वाचन सम्बन्धी पुस्तक समूह की योग्यता के अनुसार है ? जहाँ निर्देश की आवश्यकता होगी, वहाँ पर वह उचित निर्देश भी देगा। इस प्रकार कक्षा का सारा वातावरण ही वाचनमय हो जाएगा। जैसे जैसे बालक वाचन में प्रगति करेंगे, वैसे-वैसे वाचन सम्बन्धी समूह भी बदलते रहेंगे और एक समूह के बालक दूसरे समूह में जाते रहेंगे।

वाचन शिक्षा का क्रम

पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों के मतानुसार, वाचन की निम्नलिखित पाँच अवस्थाएँ हो सकती हैं :—

१—वाचन का प्रारम्भ करने से पूर्व, पढ़ने के प्रति उत्सुकता

२—पढ़ना सीखना तथा उसका प्रयोग

३—वाचन के आवश्यक गुण और पढ़ने की आदत का विकास (कक्षा ४-५ तक की अवस्था)

४—अनुभव वृद्धि के साथ साथ साथ पढ़ने की शैली में उन्नति (कक्षा ६-८ तक की अवस्था)

५—पढ़ने में रुचि का विकास तथा विषयों के सुन्दर चयन की योग्यता (कक्षा ९-११ तक की अवस्था)

अब इन अवस्थाओं के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से विचार किया जाएगा।

प्रथम अवस्था :—पढ़ना सीखने से पूर्व, बालक की उत्सुकता को उचित रूप से जाग्रत करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे मौखिक रचना तथा वार्तालाप करने का अच्छा अभ्यास हो। उसकी पठन सामग्री में ऐसी बातों का समावेश किया जाए, जिससे वह अपने चारों ओर के वातावरण का, कुछ अनुभव प्राप्त कर सके। अन्यथा वह जो कुछ पढ़ेगा, उसे ठीक प्रकार से समझ नहीं सकेगा।

इस के अतिरिक्त बालक के स्वास्थ्य का भी विशेष ध्यान रखा जाए और यह भी देखा जाए कि उस की श्रवण तथा नेत्र इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से कर रही हैं।

द्वितीय अवस्था :—इस अवस्था की यह विशेषताएँ हैं—

(i) बालक स्वतन्त्र रूप से पढ़ने का अभ्यास करने लगता है।

(ii) पढ़ी हुई बातों के प्रति अनेक प्रकार की जिज्ञासा प्रकट करने लगता है।

तीसरी अवस्था :—इस अवस्था की विशेषताएँ यह हैं :—

(i) बालक स्वतन्त्र रूप से पढ़ने लगता है।

(ii) पढ़ी हुई बातों का दूसरी बातों से सम्बन्ध जोड़ने लगता है।

(iii) अपरिचित शब्दों का अर्थ परिचित शब्दों के साहचर्य्य से समझने लगता है।

प्रारम्भिक अवस्थाओं में वाचन के प्रति रुचि जागृत करना :—प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही, बालकों के मन में पढ़ने के प्रति एक आकर्षण का भाव हो, इस के लिए अध्यापक को सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। बालकों को चित्र अच्छे लगते हैं। अध्यापक को चाहिए कि कक्षा में कुछ चित्र टाँगे जायँ। इन चित्रों नीचे चित्रों से सम्बन्धित कुछ पंक्तियाँ लिखी हों। बालक कक्षा में आते जाते इनको पढ़ेंगे। अध्यापक को जो सूचनाएँ बार-बार देनी पड़ती हैं, उन को लिख कर कक्षा में टाँग देना चाहिए, जैसे कक्षा में आने से पूर्व पैर झाड़ लिए जाएँ" यदि बालकों को इन बातों की याद न रहे तो अध्यापक को, उस लिखित सूचना की ओर बालक का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। दैनिक समाचारों को भी श्यामपट पर लिखवाया जा सकता है। यह समाचार सभी बालक पढ़ेंगे। एक अध्यापक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने एक बड़ा अच्छा मनोवैज्ञानिक तरीका अपनाया। उसका नया नया विवाह हुआ था। वह चौथी कक्षा को

पढ़ाता था। विवाह के पश्चात् उस की इच्छा हुई, कि अपनी कक्षा के बालकों को भी अल्पाहार पर बुलाया जाए। उसने फलों और मिठाइयों के कुछ चित्र एकत्रित किए। उन्हें एक बड़े कागज पर चिपकाया और नीचे यह वाक्य लिख कर, कक्षा के नोटिस बोर्ड पर टाँग दिया :—

"कल अपने विवाह की खुशी में, मैं एक न्योता दे रहा हूँ। आशा है कि आप सब आएंगे।"

चित्रों को देखकर बालकों ने समझ लिया कि कुछ खाने पीने का मामला है, परन्तु वे यह जानने को बहुत उत्सुक थे कि उन चित्रों के नीचे कौन कौन से शब्द लिखे गए हैं। एक बालिका कक्षा में देर से आई। सारी कक्षा में इतना उत्साह था, कि एक बालक उसकी अंगुली पकड़ कर नोटिस बोर्ड पर ले गया।

इस प्रकार एक सुयोग्य अध्यापक, अनेकों प्रकार के साधन अपना सकता है, जिसके द्वारा छोटे छोटे बालकों में पढ़ने के प्रति रुचि उत्पन्न हो।

चौथी अवस्था :—इस अवस्था में हमें नीचे लिखी बातें देखने को मिलती हैं :—

(i) मनोरंजन तथा ज्ञान प्राप्ति, दोनों उद्देश्यों के लिए बालक पढ़ता है।

(ii) नए शब्दों के शुद्ध उच्चारण में, अब उसे कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

(iii) बालक का शब्द भण्डार इतना बढ़ जाता है कि वह किसी शब्द के परिवर्तित रूप का अर्थ, बिना कोष की सहायता के ही समझ लेता है।

(iv) पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों आदि के महत्व को वह भली भाँति समझ जाता है और यह भी जान जाता है कि इनका उचित प्रयोग कैसे करना चाहिए।

पाँचवी अवस्था :—यह वाचन विकास की अन्तिम अवस्था है और इस अवस्था की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :—

(i) छात्रों को भिन्न-भिन्न विद्वानों के विचारों को संकलन करने में बड़े आनन्द का अनुभव होता है।

(ii) अब विद्यार्थी सभा, समितियों इत्यादि में भी निःसङ्कोच होकर वाचन कर सकता है।

(iii) अब उस में दूसरों के वाचन सम्बन्धी गुणों को ग्रहण करने की क्षमता आ जाती है।

द्रुत वाचन

(Rapid Reading)

शिक्षा विभाग की ओर से पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की पुस्तकें भी होती हैं, जिन्हें द्रुत वाचन की पुस्तकें कह सकते हैं। इस प्रकार की पुस्तकों में नीचे लिखे पाठ होते हैं :—

(i) कहानियाँ

(ii) नाटक

(iii) जीवनियाँ

(iv) वर्णनात्मक लेख

(v) पत्र इत्यादि

पाठ्यक्रम में ऐसी पुस्तकें रखने का ध्येय यह होता है कि विद्यार्थी शीघ्रता से पुस्तकों को पढ़ कर, अपने आप ही उनके भावों को समझ सकें। पाठ्य-पुस्तकों के समान, इन पुस्तकों के कठिन शब्दों का अर्थ नहीं बताया जाता और न ही शब्दों का वाक्यों में प्रयोग ही कराया जाता है। यहाँ इन पुस्तकों का उद्देश्य होता है कि बालकों ने जो कुछ पढ़ा है, उसका भाव ग्रहण कर सकें। बालक पुस्तक का द्रुत गति से मौन वाचन करते हैं और भाव को ग्रहण करने का प्रयास करते हैं। एकाध कठिन शब्द अथवा वाक्य, उनके भावार्थ ग्रहण करने में कोई बाधा नहीं उपस्थित करता, क्योंकि बालक अपने पूर्वार्जित ज्ञान के सहारे ही भाव को ग्रहण करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं, कि द्रुत वाचन विद्यार्थियों को स्वतन्त्र रूप से साहित्य के अध्ययन का अभ्यास कराता है।

इस बात की विशेष रूप से सावधानी रखनी चाहिए कि द्रुत वाचन की जो पुस्तकें हो, वे रोचक हों तथा छात्रों की अवस्था के अनुसार हों। यह बड़े सन्तोष और हर्ष का विषय है कि अब हिन्दी साहित्य में भी, ऐसी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगी हैं।

वाचन सम्बन्धी दोष और उनका उपचार

(Reading Faults and Remedial Measures)

बालकों में वाचन सम्बन्धी कई दोष पाये जाते हैं, जिनकी चर्चा करना आवश्यक है ताकि उनके उपचार के सम्बन्ध में भी विचार किया जा सके।

बालक जो वाचन सम्बन्धी गलतियाँ करते हैं, उसके कई कारण हो सकते हैं। कई बालकों की दृष्टि में दोष हो सकता है जिसके कारण शब्दों को ठीक प्रकार से न देखकर उन्हें पहचानने में गलती करते है। कानों में दोष होने के कारण वाचन दोषपूर्ण हो सकता है क्योंकि जब बालक किसी शब्द की ध्वनि

को ठीक प्रकार से सुनेंगे ही नहीं, तब वह उस का उच्चारण शुद्ध रूप से कैसे कर सकेंगे। इस प्रकार वे बालक जो वाणी सम्बन्धी दोषों से ग्रस्त हैं जैसे हकलाना, वे भी वाचन ठीक प्रकार नहीं कर सकेंगे।

ब्रूकनेर (Brueckner) ने वाचन सम्बन्धी दोष और उनके उपचार पर कई प्रयोग किए हैं। इन प्रयोगों (experiments) के आधार पर उसने ऐसी कई परीक्षाओं (Tests) का निर्माण किया है जिनके द्वारा बालकों के वाचन सम्बन्धी दोषों का पता लगाया जा सके। दोषों का ज्ञान होने पर ही कोई न कोई उपचार किया जा सकता है।

श्री मैन्जिल (Menzel) ने इस प्रकार की उपलब्ध सामग्री को एकत्रित किया है जिसमें वाचन सम्बन्धी दोष, उनके कारण तथा उपचार आदि की चर्चा की गई है। श्री मैन्जिल ने जो तथ्य एकत्रित किए हैं, उन में से कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को नीचे दिया जारहा है :—

वाचन सम्बन्धी दोष	**कारण**	**उपचार**
१—शब्दों को ठीक प्रकार से न पहचान सकना।	(i) दृष्टि-दोष। (ii) वाचन सम्बन्धी सामग्री की कमी। (iii) पाठ्य-सामग्री का कठिन होना। (iv) दोषपूर्ण प्रशिक्षण।	क—ऐनक तथा अन्य उपचार द्वारा दृष्टि दोष निवारण करने का प्रयास करना। ख—सरल तथा आकर्षक पाठ्य सामग्री। ग—कुछ शब्दों का अभ्यास (drill) कराना।
२—नेत्रों की गति (movement) का ठीक ठीक न होना।	(i) दृष्टि-दोष। (ii) स्नायु सम्बन्धी दोष। (ii) शब्दों की ओर संकेत करके पढ़ना।	क—दृष्टि तथा स्नायु-सम्बन्धी दोषों को दूर करना। ख—शब्दों की ओर संकेत करके पढ़ने की आदत को तोड़ना।
३—अशुद्ध उच्चारण	(i) वाणी सम्बन्धी दोष। (ii) दृष्टि दोष। (iii) पढ़ना सिखाते	क—शारीरिक दोषों को दूर करना। ख—शब्दों की ध्वनियों का अभ्यास।

	समय ध्वन्यात्मक विधियों का प्रयोग न किया जाना। (iv) कठिन पाठ्य सामग्री।	ग—शब्द भण्डार की वृद्धि करना।
४—वाचन के समय अर्थ का न समझना।	(i) शब्द भण्डार की कमी। (ii) अनुभव तथा अभ्यास का अभाव।	क—बालकों को उपसर्ग, प्रत्यय, मूल शब्द, पर्यायवाची शब्द, विरोधी शब्द इत्यादि का ज्ञान कराना। ख—शब्द-कोष का प्रयोग सिखाना। ग—शब्द भण्डार बढ़ाने के लिए चित्रों आदि का प्रयोग करना।
५—एक एक शब्द करके पढ़ना।	(i) नेत्रों की गति का ठीक न होना। (ii) पाठ्य सामग्री काकठिन होना। (iii) अभ्यास का अधिक अभाव। (iv) ध्वन्यात्मक विधियों का बहुत प्रयोग। (v) बहुत अधिक सस्वर वाचन करवाना। (vi) नजर कमजोर होना।	क—नेत्रों की गति को ठीक करना। ख—सस्वर वाचन कम करवाना। ग—सरल तथा रोचक पाठ्य-सामग्री का प्रयोग। घ—वाचन के लिए अवधि निश्चित करना।
६—नए तथा अपरिचित शब्दों को ठीक प्रकार से न पढ़ सकना।	(i) वाचन सम्बन्धी विधियों का ठीक प्रकार से प्रयोग न किया जाना। (i') ध्वनि सम्बन्धी प्रशि-	क—शब्दों कीध्वनियों का अभ्यास कराना। ख—शब्द-कोष का प्रयोग सिखाना।

क्षण का अभाव । ग—परिचित शब्दों के साहचर्य से अपरिचित शब्दों को पढ़ना सिखाना ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What are the current methods of teaching Reading in Hindi? Discuss their respective merits and demerits.

(2) Discuss the functions of the following in the teaching of Modern Indian Languages :—

(a) Reading Alond (सस्वर वाचन)

(b) Silent Reading (मौन वाचन)

(3) What are the qualities of a good Rapid Reader.

(४) मातृभाषा के रूप में हिन्दी के शिक्षण में द्रुत पाठ का क्या महत्व है ? द्रुत पाठ के लिए छात्रों को किस प्रकार की सामग्री उपलब्ध की जानी चाहिए ?

(५) कुछ लोगों के विचार में मातृभाषा के शिक्षण में मौन पाठ का कोई स्थान नहीं क्योंकि भाषा सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति सस्वर वाचन द्वारा हो जाती है । आपका इसके सम्बन्ध में क्या विचार है ?

(६) छात्रों के सस्वर वाचन में क्या दोष पाये जाते हैं ? भाषा शिक्षण की भिन्न-भिन्न विधियों को ध्यान में रखते हुए उन्हें कैसे दूर करेंगे ?

अध्याय ५

लिखना सिखाना

वाचन और लेखन :

इस विषय में मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों में मतभेद है कि बालकों को पहले लिखना सिखाया जाए या पढ़ना । श्रीमती मांटेसरी (Dr. Montessori) का ऐसा कथन है कि बालकों को पहले पहल लिखना ही सिखाया जाए क्योंकि यह वाचन की अपेक्षा सरल होता है । श्रीमती मांटेसरी के मतानुसार लेखन, केवल एक शारीरिक क्रिया है जिसमें बालकों को कुछ हाथों की क्रियाएं (movements) ही करनी पड़ती हैं । यह कार्य वाचन की अपेक्षा सरल है और उन्हें इसमें आनन्द की प्राप्ति होती है । वाचन के सम्बन्ध में, श्रीमती मांटेसरी का ऐसा विचार है कि इसमें बालकों को शब्दों, चिन्हों तथा उनकी ध्वनियों से परिचय प्राप्त कर लेना होता है और यह कार्य काफी कठिन होता है । श्रीमती मांटेसरी का कहना है कि केवल शब्दों का उच्चारण कर देना मात्र ही वाचन नहीं है । केवल शब्दोच्चारण की क्रिया को उन्होंने "मुद्रण देख कर भौंकना" (Barking at Print) कहा है । वाचन से तात्पर्य है, शब्दोच्चारण के साथ-साथ अर्थ की प्रतीति तथा उस वस्तु या तथ्य के सम्बन्ध में, मन में नए नए विचारों का उदय होना । इन सब कारणों से वह बालकों को पहले लिखना, सिखाना चाहती है ।

श्रीमती मांटेसरी ने चाहे लिखने की क्रिया को पढ़ने की क्रिया से सरल कहा हो, परन्तु है वह पढ़ने की क्रिया से कठिन ही । पढ़ने में बालक को अक्षरों की आकृति का ज्ञान होना चाहिए परन्तु लिखने में अक्षरों की आकृति

के ज्ञान के साथ-साथ, उन अक्षरों को वैसे का वैसा लिख सकने की क्षमता भी होनी चाहिए और इसके लिए आवश्यक है, हाथ की अंगुलियों की मांसपेशियों का यथोचित सन्तुलन। यदि शब्दों का ध्वन्यात्मक परिचय बालकों को पहले से ही प्राप्त होगा, तो उनके लिए वाचन के सहारे लिखना सीखना अधिक सुविधाजनक होगा। दूसरे इस बात का अनुभव बहुतों ने किया होगा कि यदि किसी नई भाषा को सीखने में हमें छः सप्ताह लगते हैं तो उस भाषा में लिखना सीखने में, कहीं अधिक समय लगेगा। कई बार ऐसा होता है कि हम किसी भाषा को पढ़कर समझ तो सकते हैं परन्तु उसमें लिख नहीं सकते। लेखक का अपना अनुभव है कि वह मराठी, पंजाबी तथा गुजराती भाषा को पढ़कर समझ तो सकता है परन्तु इन भाषाओं में लिखने में उसे बड़ी कठिनाई होती है। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वाचन क्रिया के विकास के पश्चात ही लिखना सिखाना चाहिए। वही बालक अच्छा लिख सकेगा, जिसमें ठीक-ठीक पढ़ने की क्षमता होगी। हम बालकों की पढ़ी हुई वस्तु से, उसके लेखन का समन्वय करवा सकते हैं। जो बात बालक ने पढ़ी अथवा बातचीत द्वारा सुनी होगी, उस पर वह अच्छी प्रकार से लिख सकेगा।

लेखन कला का महत्व

भाषा पर अधिकार प्राप्ति के लिए, जिस प्रकार किसी भाषा का सुनना, बोलना और पढ़ना महत्व रखता है, उसी प्रकार लिखने का भी महत्व है। अतः इसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष में सुन्दर-लेखन पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। अक्षर सुन्दर हों, सुडौल हों, इस पर विशेष बल दिया जाता था। न केवल प्राचीन काल में, अपितु मध्यकाल में भी सुन्दर लेख का बड़ा महत्व था। मध्यकाल में मुस्लिम राज्यों की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता यह भी थी, कि उन ऐसे व्यक्ति होते थे, जो सुन्दर लेखन (Caligraphy) की कला में पारंगत थे। फारसी भाषा में सुन्दर और सुडौल अक्षरों को नस्तालीक कहते थे। कोई जमाना था जब कि हर जगह, इस नस्तालीक का ही बोलबाला था। शिकस्ता लिखावट तो फारसी लिपि में बहुत बाद में आई। यह केवल शिकस्ता (घसीट) लिखावट की कृपा थी कि हम उर्दू भाषा में "बाबा जी अजमेर गए" को "बाबाजी अज (आज) मर गए" पढ़ लेते थे।

अङ्गरेजों के भारतवर्ष में आने के पश्चात, जब से मुद्रण-यन्त्रों और टाईप राईटर का अधिक व्यवहार होने लगा है, तब से लेखन कला का ह्रास ही हुआ है। इसका स्पष्ट परिणाम हम आज के विद्यार्थियों के गन्दे लेख में पाते

हैं। विद्यार्थियों का बुरा लेख होने का एक कारण और भी है। अंग्रेजी और फारसी के समान ही हम नागरी लिपि में भी शिकस्ता (घसीट) लिखावट लाना चाहते हैं। यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का लेख सुन्दर बने, तो हमें इस दूषित प्रवृत्ति को दूर करना होगा।

लेखन-कला का विकास :

भाषा विशेषज्ञों का ऐसा कथन है कि लेखक कला या लिपि को कई अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ा है। इनमें से कुछ अवस्थाओं को नीचे दिया जा रहा है :—

(क) **विचार-लिपि** :—यह पहली अवस्था है। इस अवस्था में, प्रत्येक विचार के लिए, चिह्न निश्चित रहता था। यदि किसी व्यक्ति को यह कहना होता कि "मैं तुम्हारे घर जा रहा हूँ" तो वह इस विचार को एक चिन्ह द्वारा व्यक्त कर दिया करता था।

(ख) **चित्रलिपि** :—यह लिपि की दूसरी अवस्था है। लिपि की इस अवस्था में किसी घटना के सम्बन्ध में परिचय देने के स्थान पर, उस घटना से सम्बन्धित चित्र बना दिया जाता था। इस प्रकार समाचार भेजते समय, कई चित्र साथ-साथ जोड़ कर भेजे जाते थे।

ऐसा कहा जाता है कि उपरोक्त दोनों प्रकार की लिपियाँ, आज भी संसार की कई असभ्य तथा असंस्कृत जातियों में पाई जाती हैं।

(ग) **प्रतीकात्मक लिपि** ज्यों-ज्यों संसार में सभ्यता का विकास होता गया, भिन्न-भिन्न वस्तुओं को व्यक्त करने वाले चित्र, क्रमशः छोटे होते गए। अन्त में यह केवल साधारण संकेत-मात्र ही रह गए। धीरे धीरे जब वाक्यों को तोड़ कर शब्द-समूहों और शब्द-समूहों में से शब्दों को अलग किया जाने लगा तब प्रत्येक शब्द एक स्वतन्त्र संकेत से सम्बद्ध होगया। जैसे-जैसे सभ्यता और आगे बढ़ी, वैसे-वैसे शब्दों का, ध्वनियों के रूप में विश्लेषण हुआ। इन्हीं भिन्न-भिन्न ध्वनियों को कालान्तर में वर्ण कहने लगे।

लिपि की वैज्ञानिकता

कौन सी लिपि वैज्ञानिक कही जा सकती है, इसकी परख करने के लिए, हमें निम्नलिखित बातें देखनी होंगी :—

१—क्या लिपि देखने में सुन्दर है? क्या अक्षरों का रूप, उनके अङ्गों का अनुपात और उनकी रेखाओं का पतला या मोटापन क्रमानुसार है?

२—क्या जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है?

३—क्या एक चिन्ह से एक ही ध्वनि का बोध होता है, अथवा एक चिह्न कई ध्वनियों को प्रकट करता है?

४—क्या एक ध्वनि के लिए सदा एक चिन्ह ही रहता है अथवा एक ही ध्वनि को प्रकट करने के लिए कई चिन्ह हैं ?

५—जिस भाषा के लिए इस लिपि का प्रयोग किया जाता है, क्या उसकी सभी ध्वनियों के प्रतीक इसमें आजाते हैं ?

इन प्रश्नों के उत्तर के आधार पर ही हमें यह निर्णय दे सकते हैं कि अमुक लिपि वैज्ञानिक है अथवा नहीं।

नागरी लिपि की विशेषताएं

हिन्दी भाषा के लिए, संस्कृत तथा मराठी के समान, नागरी लिपि का ही व्यवहार किया जाता है। अब तो गुजराती भाषा के लिए भी नागरी लिपि का प्रयोग होने लगा है। अब हम नागरी-लिपि की कुछ विशेषताओं की चर्चा करेंगे :—

सुन्दरता :—कलात्मक दृष्टि से नागरी लिपि के अक्षर बड़े सुन्दर और सुडौल हैं। वे आँखों को बड़े प्रिय लगते हैं। नागरी अक्षरों की शिरोरेखा ने तो इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं।

जो लिखना वही पढ़ना :—नागरी लिपि की दूसरी बड़ी विशेषता यह है, कि इसमें हम जो कुछ लिखते हैं, वही कुछ पढ़ते भी हैं।

ध्वनि और प्रतीक की एकता :—नागरी लिपि के अक्षरों में एक बड़ा गुण यह भी है कि एक ध्वनि के लिए एक ही चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। साथ ही साथ एक चिन्ह से एक ही ध्वनि का बोध होता है। नागरी लिपि का यह गुण और किसी भी लिपि में नहीं पाया जाता।

ध्वनि चिन्हों की पूर्णता—नागरीलिपि के अक्षरों में केवल संस्कृत, हिन्दी मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं की ही नहीं, वरन् संसार की सभी भाषाओं की ध्वनियों को सरलता तथा स्पष्टतापूर्वक अङ्कित किया जा सकता सकता है।

इन सभी गुणों के आधार पर हम नागरी लिपि को पूर्ण रूप से वैज्ञानिक कह सकते हैं।

कुछ अन्य प्रचलित लिपियां

अब हम रोमन और फारसी लिपियों पर विचार करेंगे और देखेंगे कि क्या नागरी लिपि के गुण इन दोनों लिपियों में भी पाए जाते हैं।

रोमन लिपि :—नागरी लिपि के साथ तुलना करने पर हमें पता चलेगा कि रोमन अक्षरों का नोकीलापन, उसकी सुन्दरता को नष्ट कर देता है।

रोमन लिपि में एक ही अक्षर का उच्चारण भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में

भिन्न-भिन्न होता है । एक ही अक्षर का उच्चारण कहीं पर कुछ होता है और कहीं पर कुछ । उदाहरण रूप "सी" (C) अक्षर ले लीजिए । Cent (सैण्ट) में 'सी' का उच्चारण 'स' के समान है परन्तु Cat (कैट) में "सी" का उच्चारण "क" के समान है । कहीं पर ch, "च" के समान पढ़ा जाता है जैसे Chalk (चाक), कहीं पर "श" के समान जैसे Chauffeur (शोफर) और कहीं पर "क" के समान जैसे ache (एक=पीड़ा) । इतना ही नहीं वरन एक शब्द में भी एक अक्षर के कई उच्चारण हो सकते हैं, जैसे Circumfarence (सरकमफें स) । यहाँ पर एक ही शब्द में पहले "सी" (C) का उच्चारण "स" है, फिर "क" और अन्त में फिर "स" ।

कई ध्वनियाँ ऐसी भी हैं जिनके चिन्ह रोमन लिपि में पाए ही नहीं जाते जैसे :—"त", "द", "ण", "ध" इत्यादि । हम "ताकत", "दवात", "वीणा", "धर्म" जैसे शब्दों को पूर्ण शुद्ध रूप से रोमन लिपि में नहीं लिख सकते ।

फिर रोमन लिपि में एक ही ध्वनि के लिए कई चिन्ह पाए जाते हैं, उदाहरण स्वरूप "स" ध्वनि का प्रकट करने के लिए S (एस) और C (सी) दोनों ही चिन्हों का सहारा लिया जाता है । इसी प्रकार "क" ध्वनि के लिए कहीं पर K (के), कहीं पर C (सी) तथा कहीं पर Ch (सी, एच) का प्रयोग किया जाता है ।

रोमन लिपि के अक्षरों का उच्चारण भी ठीक ढङ्ग से नहीं किया जाता । "ग" (G) ध्वनि को "जी" (ज+ई), कहा जाता है । इसी प्रकार "ह" (H) ध्वनि को "एच" (ए+च) कहा जाता है ।

फारसी लिपि :—फारसी लिपि में शब्दों को लिखते समय, अक्षरों को ऐसे तोड़ा, मरोड़ा जाता है कि उन का वास्तविक स्वरूप प्रायः लुप्त सा ही जाता है । उदाहरण स्वरूप यदि हम "पानी" लिखना चाहें तो पूरी "पे" (प) के स्थान केवल तीन बिन्दु ही लगा दिए जाएंगे । इसी प्रकार "नौकर" लिखते समय "काफ" (क) के स्थान पर केवल ऊपर की तिरछी रेखा ही रह जाती है ।

रोमन वर्णमाला के समान, फारसी वर्णमाला में भी एक एक ध्वनि के लिए कई चिन्ह हैं । उदाहरण स्वरूप "स" ध्वनि के लिए "सीन", (जैसे सबक), "स्वाद" (जैसे रुखसत), तथा "से" (नस्र) चिन्ह पाए जाते हैं । इस प्रकार "क" के लिए, छोटा काफ (जैसे रौनक) तथा बड़ा काफ (जैसे एनक) इन दो ध्वनियों का प्रयोग होता है ।

फारसी लिपि की वर्णमाला के अक्षरों का उच्चारण भी अशुद्ध रूप से ही

किया जाता है, जैसे लिखते हैं "अ", "स" और पढ़ते हैं "अलिफ़" (अ+ल+इ+फ) और "सीन" (स+ई+न) या स्वाद (स्+व+आ+द)।

कई ध्वनियाँ ऐसी भी हैं जिनके चिन्ह हमें फारसी वर्णमाला में नहीं मिलते जैसे "ण", "ङ", "अं" इत्यादि। यदि हम "वर्ण" शब्द को फारसी लिपि में लिखना चाहें तो नहीं लिख सकेंगे।

उपरोक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि रोमन और फारसी लिपि अवैज्ञानिक हैं और नागरी लिपि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। क्या हम इस बात की आशा कर सकते हैं कि अन्य राष्ट्र व्यर्थ की हठवादिता और बड़प्पन को त्याग कर, नागरी लिपि को ही अपनाने का प्रयास करेंगे ?

क्या नागरी लिपि में परिवर्तन की आवश्यकता है ?

नागरी लिपि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है, फिर भी कुछ क्षेत्रों में, यह आवाज उठाई जारही है कि इस में सुधार किए जाएँ। कुछ लोगों का विचार है कि इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, को अि, अी, अु, अू, अे, अै लिखा जाए। परन्तु ये लोग भूल जाते हैं कि "अ" का उच्चारण स्थान कण्ठ है, इ, ई, का तालू, उ, ऊ का ओष्ठ, ए, ऐ का कण्ठ-तालू। इस दशा में कण्ठ से बोले जाने वाले "अ" का सम्बन्ध, उन सब से कैसे हो सकता है।

इस सम्बन्ध में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि ि, ी, ु, ू, े, ै, आदि मात्राओं का मूल रूप इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ आदि वर्ण हैं। यह एक बड़ी अनोखी बात होगी कि हम मूल वर्णों को तो छोड़ दें, परन्तु उनकी मात्राओं को ग्रहण कर लेवें।

तीसरे यदि हम इसी प्रकार बिना किसी कारण अपनी लिपि का संशोधन करते रहेंगे तो हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य का वाचन आगामी पीढ़ी के लिए दुर्लभ हो जाएगा। कोई भी संशोधन करते समय हमें इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखना होगा कि नागरी लिपि का व्यवहार केवल हिन्दी भाषा के लिए ही नहीं होता, वरन संस्कृत, मराठी आदि भाषाओं के लिए भी होता है। इसलिए इन भाषाओं की अवहेलना नहीं की जा सकती। ञ, ङ, ष आदि वर्णों का प्रयोग भले ही हिन्दी भाषा में न होता हो, परन्तु संस्कृत के इतने विस्तृत और अगाध साहित्य को फिर से नई वर्ण-माला में मुद्रित करना असम्भव है।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि अि, अी इत्यादि के प्रयोग से मुद्रण सम्बन्धी सुविधा हो जाएगी, परन्तु यह बात भी ठीक नहीं कही जासकती। १९४५ या १९४६ ई० की बात है। उस समय लेखक माडल टाऊन (लाहौर) में रह रहा था। एक बार वह लाहौर से माडल टाऊन आने वाली बस में

बैठा हुआ था। बस में संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी पं० भगवद्दत्त जी तथा हिन्दी भवन लाहौर के संचालक श्री नारंग जी भी थे। बातों बातों में नागरी लिपि के संशोधन की चर्चा चल पड़ी। पं० भगवद्दत्त जी ने पूछा, "कहिए नारंग जी, आपको तो मुद्रण सम्बन्धी काफी अनुभव है। यदि इ, ई, उ, ऊ, आदि वर्णों को अि, अी, अु, अू के रूप में लिखा जाएगा तो मुद्रण सम्बन्धी क्या सुविधा होगी? नारंग जी ने उत्तर दिया कि उनका अनुभव तो यही कहता है कि ऐसा करने से कम्पोज करने में अधिक समय लगेगा।

इस सम्बन्ध में जो बात हमें याद रखनी होगी वह यह कि **भाषा के लिए मुद्रण यन्त्रों तथा टाईप राईटर आदि की व्यवस्था की जाती हैं, न कि इन यन्त्रों के लिए भाषा की।** जापानी लिपि में प्रतीकात्मक चिन्हों की संख्या सैकड़ों तथा हजारों तक है। यदि ऐसी लिपि के लिए मुद्रणयन्त्रों तथा टाईप राईटरों आदि की व्यवस्था की जासकती है, तो नागरी लिपि के लिए क्यों नहीं। हमारी वर्ण-माला के अनुसार ही मुद्रण-यन्त्रों आदि को ढालना होगा। इन के लिए हम अपनी वर्णमाला को अवैज्ञानिक नहीं बना सकते।

बालकों में लेखन सम्बन्धी जिज्ञासा उत्पन्न करना

बालकों को लिखना सिखाने से पहले, उनमें लेखन सम्बन्धी जिज्ञासा उत्पन्न करनी आवश्यक है। तभी वे लेखन कार्य में रुचि लेंगे। बालक क्रिया-शील होते हैं। हमें उनकी इस क्रियाशीलता को प्रोत्साहन देना होगा। बालकों को रंगीन चित्र अच्छे लगते हैं। हम बालकों को भिन्न-भिन्न चित्रों की रूप रेखा देकर रंग भरने को कह सकते हैं। बालक इस कार्य में बड़ी रुचि लेंगे। इसी प्रकार हम बालकों को देखी हुई वस्तुएं, पेन्सिल आदि द्वारा बनाने को कह सकते हैं। बालकों की इस रचनात्मक वृत्ति का उपयोग एक कुशल अध्यापक द्वारा अक्षर लेखन में भी कराया जा सकता है।

बालकों को लिखना कैसे सिखाया जाए ?

भाषा के जो भिन्न भिन्न अंग हैं। जैसे बोलना और पढ़ना, उनकी अपेक्षा लेखन का कार्य कठिन है क्योंकि लिखते समय हाथ की मांसपेशियों के सन्तुलन की आवश्यकता पड़ती है। जिस बालक ने केवल पढ़ना ही सीखा है, उसमें अभी इस सन्तुलन का अभाव होता है।[1]

1. "It is much more difficult to learn to write than to learn to read. Great muscular coordination is required for the task, and that has not been developed in the little child just learning to read."

—Ryburn, "Suggestions for Teaching of Mother Tongue, p. 60.
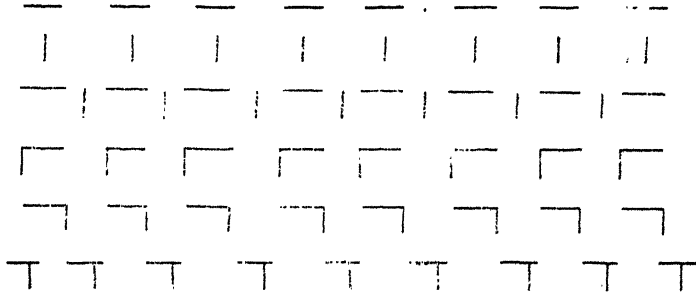
फिर तिरछी रेखाएँ खिचवाई जा सकती हैं, जैसे :–
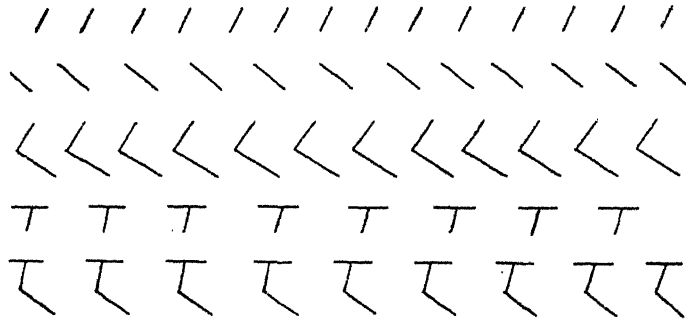
अन्त में वृत्त तथा अर्ध वृत्त और घुन्डियाँ आदि बनवाई जा सकती हैं, जैसे :—
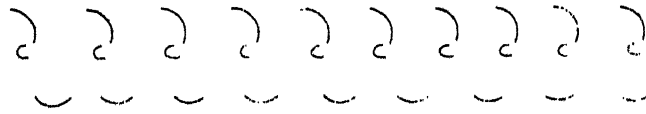
जैसे बालकों को इन चिन्हों का अभ्यास होता जाएगा, वैसे वैसे वे अक्षर बना सकने में भी समर्थ हो सकेंगे जैसे :–

व व व व व व व व व

व व व व व व व व व

क क क क क क क क क

र र र र र र र र र र

क क क क क क क क क

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन आड़ी, तिरछी रेखाओं के आधार पर बालकों को लिखना सिखाया जा सकता है। बालक तीन वर्ष की आयु से ही टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचना प्रारम्भ कर सकते हैं।

इन आड़ी तिरछी रेखाएँ खिचवाने के अतिरिक्त निम्नलिखित उपकरणों से भी लेखन क्रिया में सहायता ली जा सकती हैं :—

१—गत्ते आदि के फटे हुए अक्षर

२—रेशमी कपड़ा तथा रेगमार कागज पर कटे हुए अक्षर

३—अक्षरों के आकार-प्रकार के कटे हुए लकड़ी के टुकड़े

४—किसी धातु आदि पर खुदे हुए अक्षर

५—धरती पर खुदे हुए अक्षर

बालक इन वस्तुओं का स्पर्श करेंगे और कुछ समय के अभ्यास के पश्चात् शब्दों की आकृति से परिचित होने लगेंगे।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखी वस्तुओं से भी सहायता ली जा सकती है :—

१—पोती हुई पट्टियाँ, जिन में कलम या खड़िया से अभीष्ट अक्षर लिखे जा सकें।

२—छोटे-छोटे से श्यामपट, जिन पर बालक जब चाहें, खड़िया से लिख सकें। अच्छा हो यदि यह श्यामपट एक इंच के वर्गों में विभाजित हों।

३—वर्गों में विभाजित इसी प्रकार की स्लेटें। किण्डरगार्टन तथा मांटेसरी स्कूलों में इसी प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

लिखना सिखाने के सम्बन्ध में कुछ नियम

बालकों को लिखना सिखाते समय, निम्नलिखित बातों को स्मरण रखना आवश्यक है :—

१—लिखने का जो समय (Period) हो, वह अधिक लम्बा न हो, अन्यथा बालक थक जाएँगे और उनका लेख अच्छा नहीं बनेगा।

२—लिखना सिखाने का भी एक क्रम है। यह क्रम वर्णमाला के क्रम से कुछ भिन्न है।

३—लिखना सिखाते समय, पहले वही अक्षर चुना जाए जिसे बालक थोड़े से प्रयास से ही लिख सकें। फिर उस वर्ण में थोड़ा सा परिवर्तन करके, एक और वर्ण बनवाया जाए। इसी प्रकार चार पाँच वर्ण बनवाए जाएँ। सारी वर्णमाला को इसी प्रकार कुछ वर्गों में विभाजित करके अक्षर बनाना सिखाया जाय इस प्रकार बालक अक्षरों को तुलनात्मक दृष्टि से भी देख सकेंगे।

४—प्रारम्भ में लिखने की गति पर इतना ध्यान नहीं देना चाहिए जितना

कि इस बात पर कि बालक जो कुछ लिखें ठीक-ठीक तथा सुन्दर लिखें । यदि बालकों ने सुन्दर लिखना सीख लिया, तो बाद में गति भी ठीक हो जाएगी ।

५—एक दम ही बालकों से छोटे छोटे अक्षर लिखने के लिए न कहा जाए । पहले पहल उन्हें बड़े अक्षर लिखने दिए जाएँ । इस बात का ध्यान रखा जाए कि उनमें पर्याप्त अन्तर हो । धीरे धीरे अक्षरों का आकार और अन्तर ठीक होने लगेगा ।

६—वही बालक अच्छा लिख सकेगा, जिसमें ठीक ठीक पढ़ने की क्षमता होगी । इसलिए बालकों की पढ़ी हुई वस्तु से ही, उन के लेखन का समन्वय करना चाहिए । जो बात बालक ने पढ़ी हो अथवा जिस विषय पर बालक से बातचीत हो चुकी हो, उसे ही लिखवाना चाहिए ।

७—अच्छा हो कि बालक का नाम ही पहले लिखवाया जाए । इससे बालक को बड़ी प्रसन्नता होगी । बड़े लोग भी अपने नाम के साथ कोई लेख अथवा कविता छप जाने पर गौरव का अनुभव करते हैं ।

८—बालक लिखते समय जिन उपकरणों का प्रयोग करते हैं, उन में भी कोई न कोई क्रम होना चाहिए । पहले बालक हाथों की अंगुलियों द्वारा धरती पर लिखें, फिर श्यामपट पर चाक से लिखें, बाद में काठ की पट्टियों और स्लेट आदि का प्रयोग किया जाए और सब से अन्त में बालक कलम और दवात का प्रयोग करके कागज पर लिख सकते हैं ।

९—लिखना सिखाते समय बालकों के व्यक्तिगत भेदों पर पूरी पूरी दृष्टि रखी जाए ।

लिखना सिखाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति

जिस बात की ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए वह यह कि बालकों को लिखना सिखाने में मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाए । आम तौर पर पाठशालाओं में बालकों को पहले वर्णमाला के अक्षर सिखाये जाते हैं, फिर शब्द और उसके पश्चात वाक्य । मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार यह प्रणाली दोषपूर्ण है और इससे बालक को कठिनाई होती है । बालक जब पाठशाला में भरती होने आता है, तो वह छोटे-छोटे वाक्यों में बोलना जानता है । वर्णमाला के भिन्न भिन्न अक्षर उसके लिए निरर्थक तथा सारहीन होते हैं । उनका अपने में कोई अर्थ नहीं होता । आपस में मिल कर, जब वे शब्दों अथवा वाक्यों के रूप में आते हैं, तभी वे सार्थक बनते हैं, अर्थात् उनका अर्थ होता है । अतएव शिक्षा शास्त्रियों ने इस विषय में जो प्रयोग किए हैं, उन के आधार पर, बालकों को पहले सार्थक शब्द अथवा वाक्य ही सिखाए जाएँ ।

बालकों को अच्छा लिखने की प्रेरणा देने के लिए यह अच्छा होगा, यदि बालक अपनी लिखावट के सम्बन्ध में स्वयं ही निर्णय देवें। अध्यापक बालकों के सामने, उन्हीं द्वारा लिखे गए, कई प्रकार की लिखावट के नमूने पेश करे और उनकी सहायता से सब से सुन्दर और सब से खराब और बीच की कुछ श्रेणियों के कुछ लेख चुने। फिर प्रत्येक बालक का लेख कौन सी श्रेणी में आता है, यह देखा जावे। इस प्रकार बालकों को अपने लेख के बारे में स्वयं ही मालूम हो जाएगा और अध्यापक भी यह जान सकेगा कि उनकी प्रगति कैसी है? क्या अमुक बालक के लेख में कुछ सुधार हुआ है या कि वह वैसा ही है अथवा आगे से कुछ बिगड़ गया है। इससे बालकों को अपना लेख और सुन्दर बनाने की प्रेरणा मिलेगी और अध्यापक भी उन बालकों के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर सकेगा, जिनके लिखने में कोई सुधार नहीं हुआ है, अथवा जो आगे से भी खराब लिखने लग गए हैं।

लिखावट के सम्बन्ध में कुछ अन्य आवश्यक बातें

लिखना सिखाने से सम्बन्धित कुछ और बातों की जानकारी भी अध्यापक के लिए आवश्यक है। इन बातों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

बैठने का ठीक तरीका :— बैठने के ढंग का भी लिखने पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस विषय में यह सावधानी रखनी चाहिए कि बालक सीधा बैठे, झुके नहीं। लिखते समय रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए, झुकी हुई नहीं। चाहे बालक अपने आगे पड़ी चौकी पर कापी अथवा तखती रख कर लिखे, चाहे वीरासन की स्थिति में घुटनों पर कापी या तखती धर कर लिखे, उसकी आँखें कापी अथवा तखती से एक फुट दूर अवश्य हों।

कलम को ठीक ढंग से पकड़ना :— प्रारम्भ में बालकों से सरकण्डे की कलम से ही लिखवाना चाहिए। कलम या लेखनी ४५° पर कटी होनी चाहिए इस के अतिरिक्त कलम पकड़ने का ढंग भी ठीक होना चाहिए। इस का लेख की सुन्दरता और गति पर प्रभाव पड़ता है।

अक्षरों की सुन्दरता तथा सुडौलता :— सुन्दर तथा सुडौल अक्षरों से तात्पर्य है, अक्षर के प्रत्येक अंग का ठीक ठीक अनुपात होना। अक्षर न बहुत छोटा, न बहुत बड़ा और न ही बेढंगे रूप से लिखा जाए। लेख सुन्दर हो इसके लिए नीचे लिखी बातें भी ध्यान में रखनी होंगी :—

(i) कागज के दाएँ, बाएँ, ऊपर, नीचे, चारों ओर कुछ स्थान छोड़ कर ही लिखा जाए।

(ii) दो शब्दों के बीच में कम से कम एक अक्षर जितना अन्तर अवश्य होना चाहिए।

(iii) दो पंक्तियों के बीच में भी कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए।

श्रुत-लेख का उचित प्रयोग :—श्रुत-लेख में अध्यापक या अन्य कोई योग्य विद्यार्थी बोलता जाता है और अभ्यास करने वाले बालक सुनकर लिखते जाते हैं। इसके द्वारा विद्यार्थी को शीघ्रता पूर्वक, क्षिप्र गति से लिखने का अभ्यास कराया जाता है। श्रुत-लेख के पश्चात, अशुद्धियों का परिष्कार करवाना चाहिए। बालक इन शब्दों के शुद्ध रूप को कई कई बार लिखें इस प्रकार धीरे धीरे उनकी गलतियाँ कम होती जाएँगी।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Discuss the process that you would adopt in teaching writing ot the preliminary stage.

(२) वाचन और लेखन का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखो कि दोनों में से कौनसी क्रिया पहले प्रारम्भ कराई जाए ?

(३) वैज्ञानिक लिपि की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए, नागरी लिपि की तुलना रोमन तथा फारसी लिपि से करो। नागरी लिपि में परिवर्तन के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

(४) बालकों को लिखना सिखाने की प्रक्रिया में किन किन बातों का ध्यान रखा जाए। लिखना सिखाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति क्या है ?

अध्याय ६

व्याकरण की शिक्षा

भारतवर्ष में व्याकरण का अध्ययन

भारतवर्ष में व्याकरण की शिक्षा को, भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक अङ्ग माना जाता रहा है। इसलिए हम देखते हैं कि यहाँ पर व्याकरण का अध्ययन तथा अध्यापन अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित था। वैदिक युग से ही हमें, अनेकों उच्चकोटि के व्याकरण ग्रन्थ मिलते हैं। निरूक्त (यास्क मुनि कृत) निघण्टु, पद-पाठ, छन्द आदि का ज्ञान, वैदिक मन्त्रों (संहिताओं) के शुद्ध उच्चारण तथा अर्थ आदि के लिए आवश्यक था। कालान्तर में हमें संस्कृत साहित्य में, व्याकरण के अनेकों अन्य ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के रूप में हम पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रन्थों को ले सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक, व्याकरण की शिक्षा का बोलबाला रहा। भाषा शिक्षण के लिए व्याकरण का शिक्षण आवश्यक समझा गया, इसलिए भाषा के अध्ययन के प्रारम्भ में ही व्याकरण के नियम याद करवा दिए जाते थे।

व्याकरण की परिभाषा तथा कार्य

पतंजलि मुनि ने अपने "महाभाष्य" में व्याकरण को शब्दानुशासन कहा है अर्थात् व्याकरण के द्वारा हम भाषा को व्यवस्थित करते हैं। वाक्य में कौन कौन से अंग हैं, प्रत्येक अङ्ग किस किस स्थान पर रहना चाहिए, इन सब अंगों को किस प्रकार व्यवस्थित किया जासकता है, इन सब का ज्ञान हमें व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है। शब्दों का रूप स्थिर करने में भी हम व्याकरण की सहायता लेते हैं।

(ii) दो शब्दों के बीच में कम से कम एक अक्षर जितना अन्तर अवश्य होना चाहिए।

(iii) दो पंक्तियों के बीच में भी कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए।

श्रुत-लेख का उचित प्रयोग :—श्रुत-लेख में अध्यापक या अन्य कोई योग्य विद्यार्थी बोलता जाता है और अभ्यास करने वाले बालक सुनकर लिखते जाते हैं। इसके द्वारा विद्यार्थी को शीघ्रता पूर्वक, क्षिप्र गति से लिखने का अभ्यास कराया जाता है। श्रुत-लेख के पश्चात, अशुद्धियों का परिष्कार करवाना चाहिए। बालक इन शब्दों के शुद्ध रूप को कई कई बार लिखें इस प्रकार धीरे धीरे उनकी गलतियाँ कम होती जाएँगी।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Discuss the process that you would adopt in teaching writing ot the preliminary stage.

(२) वाचन और लेखन का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखो कि दोनों में से कौनसी क्रिया पहले प्रारम्भ कराई जाए ?

(३) वैज्ञानिक लिपि की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए, नागरी लिपि की तुलना रोमन तथा फारसी लिपि से करो। नागरी लिपि में परिवर्तन के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

(४) बालकों को लिखना सिखाने की प्रक्रिया में किन किन बातों का ध्यान रखा जाए। लिखना सिखाने की मनोवैज्ञानिक पद्धति क्या है ?

अध्याय ६

व्याकरण की शिक्षा

भारतवर्ष में व्याकरण का अध्ययन

भारतवर्ष में व्याकरण की शिक्षा को, भाषा की शिक्षा का एक आवश्यक अङ्ग माना जाता रहा है। इसलिए हम देखते हैं कि यहाँ पर व्याकरण का अध्ययन तथा अध्यापन अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रचलित था। वैदिक युग से ही हमें, अनेकों उच्चकोटि के व्याकरण ग्रन्थ मिलते हैं। निरुक्त (यास्क मुनि कृत) निघण्टु, पद-पाठ, छन्द आदि का ज्ञान, वैदिक मन्त्रों (संहिताओं) के शुद्ध उच्चारण तथा अर्थ आदि के लिए आवश्यक था। कालान्तर में हमें संस्कृत साहित्य में, व्याकरण के अनेकों अन्य ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के रूप में हम पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि के महाभाष्य, भट्टोजी दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदी आदि ग्रन्थों को ले सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक, व्याकरण की शिक्षा का बोलबाला रहा। भाषा शिक्षण के लिए व्याकरण का शिक्षण आवश्यक समझा गया, इसलिए भाषा के अध्ययन के प्रारम्भ में ही व्याकरण के नियम याद करवा दिए जाते थे।

व्याकरण की परिभाषा तथा कार्य

पतंजलि मुनि ने अपने "महाभाष्य" में व्याकरण को शब्दानुशासन कहा है अर्थात् व्याकरण के द्वारा हम भाषा को व्यवस्थित करते हैं। वाक्य में कौन कौन से अंग हैं, प्रत्येक अङ्ग किस किस स्थान पर रहना चाहिए, इन सब अंगों को किस प्रकार व्यवस्थित किया जासकता है, इन सब का ज्ञान हमें व्याकरण के द्वारा ही हो सकता है। शब्दों का रूप स्थिर करने में भी हम व्याकरण की सहायता लेते हैं।

डा० स्वीट (Dr. Sweet) ने व्याकरण की परिभाषा इन शब्दों में दी है:—

"Grammar is the practical analysis of a language, its anatomy."

—New English Grammar, p. 4.

अर्थात् व्याकरण के द्वारा भाषा रचना का ज्ञान प्राप्त होता है। व्याकरण भाषा सम्बन्धी तथ्यों को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि वे कुछ नियमों के अन्तर्गत आ जाएँ।

प्राध्यापक सानशिन (Professor Sonnenschein) के मतानुसार हमें व्याकरण के द्वारा इस बात का पता चलता है कि "वाक्यों के शब्द समूहों में क्या क्या अन्तर है। उन्हीं के शब्दों में, "Grammar deals merely with differences in the grouping of words in a sentence.

—The Soul of Grammar, p. 115.

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग बहुत पहले भी होता था और आज भी होता है। परन्तु उनसे सम्बन्धित भावों में अन्तर आगया है। इस अन्तर का ज्ञान हमें व्याकरण के द्वारा ही होता है।

इंगलैंण्ड के बोर्ड आफ एडूकेशन (Board of Education) ने व्याकरण के सम्बन्ध में नीचे लिखे विचार प्रकट किए हैं :—

"Grammar is a description of structure nothing more."

—The Teaching of English in England, p. 284.

अर्थात् व्याकरण के द्वारा हमें केवल रचना सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है। वाक्यों में शब्दों की रचना किस प्रकार हुई है, इसकी जानकारी हम व्याकरण के माध्यम द्वारा ही कर सकते हैं।

हैजलिट (Hazlitt) ने व्याकरण को "भाषा की विशेष प्रकार की रचना का वर्णन" (description of the peculiar structure of a language) कहा है।

पाठशाला सम्बन्धी उद्देश्यों को सामने रखते हुए जैगर (Jaggar) ने व्याकरण की परिभाषा को इस प्रकार स्पष्ट किया है:—

"Grammar—especially for school purposes—is a description of the main laws of the structure of current language couched in terms which are sufficiently precise."

Modern English, p. 169.

अर्थात् सार रूप में प्रचलित भाषा सम्बन्धी नियमों का कथन करना यही व्याकरण है।

उपरोक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि व्याकरण का उद्देश्य भाषा सिखाना नहीं परन्तु भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ज्ञान करानां है :—

१—भाषा रचना का ज्ञान कराना

२—वाक्यों में आए शब्द-समूहों के अन्तर को स्पष्ट करना।

३—भाषा सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोगों का अध्ययन।

४—भाषा से सम्बन्धित नियमों का कथन।

कहना न होगा कि व्याकरण की परिभाषा सम्बन्धी यह सब बातें पतंजलि कृत "महाभाष्य" के शब्दानुशासन सूत्र में आगई हैं।

जहाँ व्याकरण के द्वारा हमें भाषा सम्बन्धी व्यवस्था का ज्ञान होता है, वहाँ इसका एक और बड़ा लाभ भी है। जब हमें किसी भाषा के प्रयोगों के सम्बन्ध में भ्रम अथवा शंका उत्पन्न हो जाती है तो इसका समाधान व्याकरण के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। और इसी आधार पर ही हम अपनी भाषा-शैली का निर्माण करते हैं।

व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में आधुनिक मत

आधुनिक काल में भाषा शिक्षा का यदि कोई ऐसा विषय है, जिस पर शिक्षा शास्त्रियों का मतभेद है तो वह व्याकरण है। अब पहले के समान इसे भाषा का आवश्यक अंग नहीं माना जाता। व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में जो भिन्न-भिन्न मत पाए जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

प्रथम पक्ष, जिसका कुछ दिग्दर्शन ऊपर की पंक्तियों में हो चुका है, का कहना है कि भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण के बिना अपूर्ण है। भाषा का उचित रहस्य समझने के लिए, व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

दूसरे पक्ष वालों के अनुसार, व्याकरण की शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं। व्यक्ति बोलकर या पढ़कर भाषा सीखता है, न कि नियमों को रट कर। इसलिए, इस मत वालों के अनुसार व्याकरण का अध्ययन करना, समय का नाश करना है और व्याकरण की जितनी पुस्तकें हैं, वे सब समुद्र में फेंक दी जाएँ।

व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में एक तीसरा मत और भी है। इस मत को मानने वाले व्याकरण की शिक्षा को आवश्यक तो समझते हैं परन्तु उतना ही, जितना कि हमें अपना काम-काज चलाने के लिए आवश्यक है अर्थात् दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि ये लोग व्याकरण के व्यावहा-

रिक प्रयोग पर बल देते हैं। इनके अनुसार विद्यार्थियों के लिए व्याकरण का उतना ज्ञान ही यथेष्ट है जितना उन्हें अपनी पाठ्य पुस्तकें समझने के लिए आवश्यक है।

ऐसी स्थिति में अध्यापक के लिए एक समस्या खड़ी हो जाती है कि वह कौन-सा मार्ग अपनाए ?

इस सम्बन्ध में कुछ बातें ऐसी हैं, जिनकी ओर दृष्टिपात करना अध्यापक के लिए आवश्यक है। पहली बात जो याद रखने योग्य है, वह यह कि व्याकरण साधन है, साध्य नहीं। साध्य तो भाषा का ज्ञान है और उस भाषा-ज्ञान की प्राप्ति में अन्य साधनों के समान व्याकरण भी एक साधन है। दूसरी याद रखने योग्य बात यह है कि ऊपर व्यक्त किये गये सभी मतों में कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है और इसी के सहारे हम व्याकरण शिक्षण के सम्बन्ध में किसी न किसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

जो लोग व्याकरण की शिक्षा को आवश्यक नहीं समझते और उस पर प्रतिबन्ध लगाना चाहते हैं, उनके कथन में भी कोई अत्युक्ति नहीं जहाँ तक प्राथमिक (Primary) कक्षाओं का सम्बन्ध है। छोटी अवस्था के बालकों के लिए भाषा सम्बन्धी जो उद्देश्य हमारे सामने होता है, वह यह कि बालक अपनी मातृभाषा का स्पष्ट और ठीक-ठीक प्रयोग कर सकें। वाक्यों के टुकड़े-टुकड़े करना और फिर उनको जोड़ना यह कार्य चाहे कितना ही मनोरंजक क्यों न हो, इससे बालकों के भाषा सीखने में रुकावट पैदा होती है। प्रारम्भिक कक्षाओं के बालकों का मस्तिष्क इसके लिए तैयार नहीं होता कि भाषा टुकड़े-टुकड़े करके सीखी जाए। इस अवस्था के बालक, भाषा सम्बन्धी जो भी ज्ञान प्राप्त करेंगे, वह अनुकरण तथा निर्देश (Suggestion) द्वारा। अपने आस पास के लोग, जिनकी भाषा को वे सुनेंगे तथा अपनी पाठ्य पुस्तकों में जिस भाषा को पढ़ेंगे, उसी का व्यवहार वह अपने दैनिक जीवन में करेंगे। इसलिए व्याकरण की शिक्षा की अपेक्षा अधिक पढ़ना और खूब सुनना, ये बातें ही उनके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। हम वैसे भी देखते हैं कि बालक जब पाठशाला में आता है तो वह बिना व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किये ही शुद्ध व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करता है, जैसे "यह मेरी बहन है।" "यह मेरा भाई है।" वह 'मेरा बहन' और 'मेरी भाई' कभी नहीं कहेगा। गाँव के अन्दर प्राय: प्रौढ़ व्यक्ति भी अपनी मातृभाषा का व्याकरण न जानते हुए शुद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं, तो यह किस प्रकार सम्भव होता है ? यह सब बातें भाषा के सुनने से, भाषा के पढ़ने से तथा भाषा के व्यावहारिक प्रयोग से ही सम्भव हुई हैं।

अब एक प्रश्न जो सामने आता है, वह यह कि जो बालक अशिक्षित घरानों से पाठशाला में आते हैं क्या वे अशुद्ध भाषा का प्रयोग नहीं करेंगे ? इसका निदान कैसे किया जाए ? क्या उन्हें व्याकरण की शिक्षा नहीं देनी चाहिए ? इस समस्या का हल भी केवल व्याकरण की शिक्षा से नहीं होगा क्योंकि बालक व्याकरण के नियम आदि रट लेंगे, परन्तु उनका व्यावहारिक प्रयोग नहीं कर सकेंगे। इस समस्या का निदान तो प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) के प्रबन्ध में तथा पाठशाला में मौखिक तथा वाचन सम्बन्धी कार्य से है। ऐसा करने से बालक स्वयं ही शुद्ध व्याकरण सम्मत भाषा का व्यवहार करने लगेंगे।

लेकिन यदि व्याकरण की शिक्षा की आवश्यकता प्रारम्भिक कक्षाओं में नहीं पड़ती तो इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि व्याकरण की शिक्षा दी ही न जाए। भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है। व्याकरण की परिभाषा करते समय, यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि प्राचीन भारतीय आचार्यों के समान, अनेकों पाश्चात्य विद्वानों ने भी, व्याकरण शिक्षण की उपादेयता को स्वीकार किया है। भाषा के शुद्ध तथा अशुद्ध प्रयोग की परख व्याकरण के द्वारा ही हो सकती है। परन्तु व्याकरण की शिक्षा का प्रारम्भ तभी करना चाहिए, जब कि विद्यार्थी का भाषा पर भी कुछ अधिकार हो जाए। थाम्पसन तथा वायट (Thompson and Wyatt) ने भी अपनी पुस्तक "The Teaching of English in India" में इसी मत की पुष्टि की है। वे कहते हैं कि:—

"We generally turn to the study of Grammar, after we have acquired a certain amount of language."

इसी मत को ध्यान में रखते हुए रायबर्न (Ryburn) ने यह मत प्रकट किया है कि व्याकरण की शिक्षा, छठी कक्षा से प्रारम्भ की जाए तांकि बालक जिन नियमों के अनुसार बोलते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं, उनकी जानकारी उन्हें हो जाए। व्याकरण के नियमों का ज्ञान होने पर, बालकों की अभिव्यक्ति में स्पष्टता आ जाएगी और शैली के निर्माण सहायता मिलेगी।

परन्तु माध्यमिक (middle) कक्षाओं में व्याकरण का जो ज्ञान कराया जाएगा, वह व्यावहारिक होगा अर्थात् उसका सम्बन्ध, उनकी पाठ्य पुस्तकों के पाठों से, तथा कक्षाओं में रचना आदि का जो कार्य किया जाता है, उससे स्थापित किया जाएगा। आगे जाकर उच्च कक्षाओं में जब कि बालकों की भाषा सम्बन्धी नींव सुदृढ़ हो चुकेगी, उन्हें व्याकरण का ज्ञान कराया जा सकता है।

व्याकरण शिक्षा पद्धति

व्याकरण की शिक्षा देने के लिए, बहुत सी विधियाँ प्रचलित हैं। इन विधियों में से कुछ मुख्य विधियों के नाम यह हैं :—

(i) सूत्र विधि
(ii) भाषा संसर्ग विधि
(iii) सहयोग विधि
(iv) पाठ्यपुस्तक विधि
(v) प्रयोग विधि

सूत्र विधि

यह विधि संस्कृत से आई है और इसका प्रचलन हमारे देश में बहुत पहले से ही है। इस विधि के अनुसार व्याकरण के भिन्न-भिन्न नियमों को सूत्र के रूप में परिणत कर लिया जाता है। विद्यार्थियों को यह सूत्र कण्ठस्थ करा दिये जाते हैं और बाद में अनेकों उदाहरणों द्वारा इन सूत्रों का स्पष्ट कर दिया जाता है। इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि विद्यार्थी बिना समझे-बूझे ही सूत्रों को रट लेते हैं। आज की इस बीसवीं शताब्दी में जब कि मनोविज्ञान, इतनी प्रगति कर चुका है, यह विधि व्याकरण की शिक्षा में अधिक उपयुक्त नहीं।

भाषा संसर्ग विधि

इस विधि को मानने वालों का कथन है कि अलग से व्याकरण की शिक्षा देना उपयुक्त नहीं हो सकता। वे व्याकरण की शिक्षा को दोषपूर्ण मानते हैं। उनका ऐसा विचार है कि यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का भाषा पर पूरा-पूरा अधिकार हो, तो उन्हें ऐसे लेखकों की रचनाएँ पढ़ने को दी जाएँ जिनका भाषा पर अच्छा अधिकार हो। धीरे-धीरे हम देखेंगे कि विद्यार्थी भाषा पर अधिकार प्राप्त करते जाते हैं। विद्वानों का यह मत है कि जहाँ तक मातृभाषा का सम्बन्ध है, यह विधि विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हो सकती है।

सहयोग विधि

यह विधि भाषा संसर्ग विधि का ही रूपान्तर मात्र है। इस विधि को मानने वाले भी, स्वतन्त्र रीति से व्याकरण की शिक्षा प्रदान करना उचित नहीं समझते। परन्तु फिर भी उनका यह विचार है कि विद्यार्थियों को रचना की शिक्षा देते समय, व्याकरण के कुछ नियम भी अवश्य बता दिए जाएँ ताकि

विद्यार्थी अपनी मौखिक तथा लिखित रचना में जिस भाषा का व्यवहार करें, वह व्याकरण सम्मत हो ।

पाठ्यपुस्तक विधि

इस विधि को हम सूत्र प्रणाली का दूसरा रूप कह सकते हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ पहली पद्धति संस्कृत से हिन्दी में आई है, वहाँ पर यह पद्धति अंग्रेजी भाषा से हिन्दी में आई है । इसके अतिरिक्त जहाँ पहली पद्धति में सूत्रों का सहारा लिया जाता है, वहाँ पर इस पद्धति में व्याकरण की पाठ्य-पुस्तकों से सहायता ली जाती है । अंग्रेजी भाषा के समान, हिन्दी भाषा में भी भिन्न-भिन्न कक्षाओं में व्याकरण की पाठ्यपुस्तकें निर्धारित कर दी जाती हैं । इन पाठ्यपुस्तकों में परिभाषाएँ नियम तथा उदाहरण आदि दिये रहते हैं । विद्यार्थी इन सब को कण्ठस्थ कर लेते हैं । फिर अध्यापक इस बात का प्रयास करता है कि विद्यार्थी इन नियमों का प्रयोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में करें । इस विधि में वही दोष है जो सूत्र विधि में है । विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति पर व्यर्थ ही बहुत अधिक भार पड़ता है । केवल नियमों आदि को रट लेने से विद्यार्थियों को कोई वास्तविक लाभ नहीं पहुँचता । यह बिधि भी आज के मनोवैज्ञानिक युग के उपयुक्त नहीं ।

प्रयोग विधि

इस विधि को आगमन विधि (Inductive Method) भी कहा जाता है । यह विधि सूत्र-प्रणाली से सर्वथा विपरीत है । यहाँ पर व्याकरण की परिभाषाएँ तथा नियम आदि बालकों द्वारा रटवाए नहीं जाते । यह नियम आदि विद्यार्थियों से ही निकलवाये जाते हैं । विद्यार्थियों के सामने पहले पर्याप्त संख्या में उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं । फिर इन उदाहरणों के आधार पर विद्यार्थियों की सहायता से व्यापक नियम का निर्माण किया जाता है ।

यह विधि सबसे अच्छी मानी गई है क्योंकि इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है । वह सभी बातों को बड़े ध्यान से सुनता है, उनको समझने का प्रयास करता है तथा उन्हें मन में धारण करता चलता है । इसलिए जिन विद्यार्थियों को व्याकरण की शिक्षा देनी हो, इस विधि का ही प्रयोग करना चाहिए ।

इस विधि के द्वारा विद्यार्थियों से ही नियम इत्यादि किस प्रकार निकलवाए जा सकते हैं, इसको स्पष्ट करने के लिए, कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

मान लीजिए हम विद्यार्थियों को व्याकरण में "विशेषण" का पाठ पढ़ाना

चाहते हैं। विद्यार्थी संज्ञा के सम्बन्ध में पहले पढ़ ही चुके हैं। अब विद्यार्थियों के सामने विशेषण से युक्त निम्नलिखित उदाहरण रखे जायेंगे—

१—वहाँ पर लाल फूल खिले हैं।
२—काली टोपी मत पहनो।
३—सफेद घोड़ा दौड़ रहा था।
४—मैंने मीठा आम खाया।
५—उसने कड़वे करेले खाए।
६—तुम ने खट्टा निम्बू खाया।
७—मेरी दो बहनें हैं।
८—तुम्हारे तीन भाई हैं।
९—उसके चार मकान हैं।
१०—मैंने थोड़ा दूध पिया।
११—तुमने बहुत दही खाया।
१२—कुछ पुस्तकें उसे दे दो।

अब इन उदाहरणों के सम्बन्ध में विद्यार्थियों से निम्नलिखित प्रश्नोत्तर किए जाएँगे—

प्र०—"पहले वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?"
उ०—"फूल"
प्र०—फूल के सम्बन्ध में क्या कहा गया है ?
उ०—फूल लाल रंग का है।
प्र०—दूसरे वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?
उ०—"टोपी"।
प्र०—टोपी के बारे में क्या कहा गया है ?
उ०—टोपी काले रंग की है।
प्र०—तीसरे वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?
उ०—"घोड़ा"।
प्र०—घोड़े के सम्बन्ध में क्या कहा गया है ?
उ०—घोड़ा सफेद रंग का है।
प्र०—चौथे वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?
उ०—"आम"।
प्र०—आम की क्या विशेषता बताई गई है ?
उ०—आम मीठा है।
प्र०—पाँचवें वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?

उ०—"करेले"।

प्र०—करेलों की क्या विशेषता बताई गई है ?

उ०—करेले कड़वे हैं।

प्र०—छठे वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?

उ०—"निम्बू"।

प्र०—निम्बू की क्या विशेषता बताई गई है ?

उ०—निम्बू खट्टा है।

प्र०—सातवें वाक्य में संज्ञा कौन सी है ?

उ०—"बहनें"।

प्र०—बहनों के सम्बन्ध में क्या कहा गया है ?

उ०—दो बहनें हैं।

प्र०—आठवें वाक्य में संज्ञा कौन सी है ?

उ०—"भाई"।

प्र०—भाइयों की क्या विशेषता प्रकट की गई है ?

उ०—तीन भाई हैं।

प्र०—नवें वाक्य में संज्ञा कौन सी है ?

उ०—"मकान"

प्र०—मकान की विशेषता किस शब्द द्वारा प्रकट होती है ?

उ०—"चार" द्वारा।

प्र०—दसवें वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?

उ०—"दूध"।

प्र०—दूध की विशेषता किस शब्द द्वारा प्रकट की गई है ?

उ०—"थोड़ा" द्वारा।

प्र०—ग्यारहवें वाक्य में संज्ञा कौन सी है ?

उ०—"दही"।

प्र०—संज्ञा की विशेषता प्रकट करने वाला कौन सा शब्द है ?

उ०—"बहुत"।

प्र०—बारहवें वाक्य में कौन सा शब्द संज्ञा है ?

उ०—"पुस्तकें"।

प्र०—संज्ञा की विशेषता प्रकट करने वाला कौन सा शब्द है ?

उ०—"कुछ"।

बालकों के जो उत्तर प्राप्त होंगे, उन्हें अध्यापक साथ-साथ, श्यामपट पर लिखता जाएगा। यहाँ पर यह भी देखा गया होगा कि प्रश्न पूछने का

तरीका बदलता रहा है यद्यपि बात वही पूछी गई है। इन उदाहरणों के संबंध में प्रश्नोत्तर हो जाने के पश्चात्, अन्त में अध्यापक यह प्रश्न करेगा :—

प्र०—जिस शब्द के द्वारा संज्ञा की विशेषता प्रकट होती है, उसे क्या कहते हैं ?

यद्यपि विद्यार्थी विशेषण के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु फिर भी शायद वह परिभाषा ठीक रूप से न कर सकें। यहाँ पर अध्यापक उन को नियम निकलवाने में सहायता देगा।

नियमीकरण :—जिस शब्द के द्वारा संज्ञा की विशेषता प्रकट होती है, उसे **विशेषण** कहते हैं। विद्यार्थी इस परिभाषा को अपनी-अपनी कापियों पर लिख लेंगे। इसके पश्चात् अध्यापक विद्यार्थियों के सामने कुछ और उदाहरण प्रस्तुत करेगा और विद्यार्थियों को "विशेषण" छांटने के लिए कहेगा। इस प्रकार, इस पद्धति के द्वारा व्याकरण शिक्षण का प्रारम्भ तो आगमन विधि (Inductive Method) के द्वारा होगा और अन्त निगमन विधि (Deductive Method) के द्वारा।

व्याकरण की शिक्षा को सरस कैसे बनाया जाय ?

यद्यपि व्याकरण भाषा का एक प्रमुख अंग है, फिर भी इस विषय को रूखा समझा जाता है और विद्यार्थी इसे पढ़ना नहीं चाहते। यदि नीचे लिखी कुछ बातों का ध्यान रखा जाए तो व्याकरण के पाठ नीरस और शुष्क प्रतीत नहीं होंगे।

(१) इस सम्बन्ध में, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्याकरण का प्रारंभ तब तक न किया जाए, जब तक कि छात्रों को भाषा का कुछ ज्ञान न हो जाए। मनुष्य ने भाषा का बोलना पहले सीखा था और व्याकरण बाद में बना था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि व्याकरण का प्रारम्भ छोटी कक्षाओं में न करके, माध्यमिक कक्षाओं से करना चाहिए।

(२) पाठ्य-पुस्तक में गद्य के जो पाठ हों, व्याकरण के नियमों का उनसे समन्वय किया जाए।

(३) बालकों ने व्याकरण के जिन नियमों को पढ़ा है उनका उचित अभ्यास कराया जाए।

यह अभ्यास निम्नलिखित साधनों के द्वारा कराया जा सकता है :—

(i) सिखाये गये शब्दों या वाक्यों के रूपान्तर को श्याम पट पर लिखना

(ii) व्याकरण के नियमों का प्रयोग कराना

(iii) लिखित रचना का उचित संशोधन

(४) आम तौर पर अध्यापक व्याकरण को निगमन पद्धति से पढ़ाते हैं अर्थात् पाठ के प्रारम्भ में विद्यार्थियों को व्याकरण के नियम बता दिये जाते हैं। फिर बाद में विद्यार्थियों के सामने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें कि उन नियमों का पालन किया गया है। यह पद्धति दोषपूर्ण है। विद्यार्थी नियमों को भली-भाँति समझ नहीं पाते और उन्हें उदाहरणों सहित रट लेते हैं। परन्तु आगमन पद्धति में यह दोष नहीं। इस पद्धति के अनुसार विद्यार्थियों के सामने कतिपय उदाहरण रख कर उन्हीं के द्वारा नियमों को निकलवाया जाता है। ऐसा करने से विद्यार्थी सरलता से नियमों को समझ लेते हैं। और उन्हें यह विषय नीरस भी नहीं लगता।

(५) यदि विद्यार्थियों की मातृभाषा कोई और है, तो तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाये। हिन्दी भाषा के व्याकरण की तुलना, उनकी मातृभाषा के व्याकरण से की जाय।

(६) व्याकरण के पाठ्यक्रम में एक क्रम होना चाहिए जिससे कि विद्यार्थी स्वाभाविक रूप से, धीरे-धीरे, एक सोपान से दूसरे सोपान की ओर बढ़ सकें।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What is the place of Grammar in the teaching of the mother tongue ? Discuss and indicate what aspects of grammar you would emphasize at the Junior High School stage.

(2) Draw up a scheme for the teaching of grammar with a lesson note on the teaching of "adjectives" to Class VI.

(3) How would you correlate the teaching of Grammar with Hindi text ? Illustrate your answer with examples.

(४) व्याकरण की परिभाषा को लिखते हुए स्पष्ट करो कि वर्तमान युग में व्याकरण की शिक्षा के सम्बन्ध में, विद्वानों का क्या मत है ?

(५) व्याकरण शिक्षण की भिन्न-भिन्न विधियों का उल्लेख करते हुए लिखो कि आपको कौन सी विधि सब से अच्छी लगती है और क्यों ?

(६) व्याकरण का विषय विद्यार्थियों को शुष्क और नीरस क्यों लगता है ? इसे सरस बनाने के लिए आप क्या करेंगे ?

अध्याय ७

रचना शिक्षण

रचना का महत्व

हमारे सामाजिक जीवन में रचनाकार अथवा लेखक का बड़ा महत्व है। समाज में दो व्यक्ति ही अधिक आदर पाते हैं, एक वक्ता और दूसरा लेखक। परन्तु वक्ता का आदर तो केवल उसके जीवन काल में ही होता है। उसकी मृत्यु के पश्चात्, जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे लोग उसे भूलते जाते हैं। परन्तु रचनाकर अथवा लेखक अपनी रचनाओं के द्वारा सदा जीवित रहता है। मृत्यु उस में कोई व्यवधान नहीं डाल सकती।

शिक्षा के क्षेत्र में भी हम देखते हैं, कि परीक्षा में प्रश्नपत्रों के उत्तर लेख के रूप में ही देने होते हैं और लेख के आधार पर ही, विद्यार्थी अंक प्राप्त करता है। इस दृष्टि से रचना या लेखन को, वर्तमान शिक्षा की पराकाष्ठा कहा जा सकता है।

रचना का अर्थ

साधारण रूप से रचना शब्द का प्रयोग इन दो रूपों में होता हैं :—

(i) सजाना, सँवारना

(ii) किसी बात पर विचार पूर्वक मनन करके उसे क्रमबद्ध करना

इस दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि रचना शब्द बड़ा व्यापक है और इसका सम्बन्ध साहित्य एवं कला के किसी भी क्षेत्र से हो सकता है। यहाँ पर हम इस शब्द का प्रयोग केवल भाषा के क्षेत्र (मौखिक रचना तथा लिखित रचना) में ही करेंगे। मौखिक रचना पर विचार, पहले किया जा चुका है, इसलिए इस अध्याय में केवल लिखित रचना पर ही विचार किया जायगा।

यदि परिभाषा ही करनी हो तो रचना की परिभाषा इन शब्दों में की जा सकती है :—

"रचना वह सार्थक तथा कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसके द्वारा हम, निश्चित उद्देश्य सामने रख कर, अपने विचारों को लिपिबद्ध करते हैं।"

रचना शिक्षण के सिद्धान्त एवं उद्देश्य

रायबर्न (W. H. Ryburn) के मतानुसार रचना शिक्षण के उद्देश्य एवं सिद्धान्त निम्नलिखित हो सकते हैं—

१—विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपने विचारों को स्पष्टता पूर्वक, क्रम बद्ध रूप में तथा शुद्ध भाषा में लिख सकें।

२—अध्यापक विद्यार्थियों की इस बात में सहायता करें कि वे धीरे-धीरे अपने शब्द भण्डार को बढ़ा सकें और उस शब्द भण्डार का सफलता से प्रयोग भी कर सकें।

३—अध्यापक को सावधानी पूर्वक प्रतिभाशील विद्यार्थियों का निरीक्षण करना चाहिए और जिस किसी विद्यार्थी में, वह भाषा सम्बन्धी प्रतिभा देखें, उसे उत्साहित करे।

४—विद्यार्थियों को उन्हीं विषयों पर लिखने के लिए कहा जाए, जिन में वे रुचि रखते हों।

५—जो कुछ भी बालकों से लिखाया जाए, उस का सम्बन्ध उनके पढ़े हुए विषयों से अथवा ऐसी बातों से होना चाहिए जिनका वे अनुभव कर चुके हों। ऐसा न होने पर, लिखित विषय की पहले मौखिक रूप से चर्चा कर दी जाए।

६—अध्यापक इस बात का विशेष ध्यान रखे कि जिस विषय पर बालकों से कुछ लिखवाया जाए, वह ऐसा हो जिससे कि उनकी विचार शक्ति और निरीक्षण शक्ति का विकास हो सके।

७—रचना ठीक ढंग से लिखी जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि कक्षा का वातावरण शान्त तथा मित्रतापूर्ण हो। बालक के मन में, भय, क्रोध अथवा किसी और प्रकार का आवेग नहीं होना चाहिए।

८—रचना के द्वारा हम बालकों में वह क्षमता उत्पन्न करते हैं, जिसके द्वारा वे दूसरे व्यक्तियों की लिपिबद्ध अभिव्यक्तियों को समझ सकें।

९—रचना शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि बालक विभिन्न प्रकार की शैलियों से परिचय प्राप्त कर, अपनी स्वतन्त्र शैली का निर्माण कर सके।

१०—रचना शिक्षण के द्वारा हम बालकों को इस योग्य बनाते हैं कि वे बड़ी से बड़ी बात को भी संक्षिप्त रूप में लिख सकें।

११—रचना शिक्षरण के द्वारा बालकों में स्थायी साहित्य का सृजन कर सकने की क्षमता भी उत्पन्न की जा सकती है ।

लिखित रचना की विशेषताएँ

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मौखिक रचना की अपेक्षा लिखित रचना का महत्व अधिक होता है । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यार्थियों को लिखित रचना की विशेषताओं का ज्ञान हो । भाषा शास्त्रियों के मतानुसार लिखित रचना करते समय छात्रों को नीचे लिखी बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए :—

१—जिस प्रकार भाषा भावों का अनुसरण करती है, उसी प्रकार अर्थ और भाव भी, भाषा का अनुसरण करते हैं । इसलिए विद्यार्थियों को चाहिए कि वे प्रत्येक शब्द का, उसकी आवश्यकता के अनुसार ही तथा उचित स्थान पर प्रयोग करें नहीं तो भावों में व्यतिरेक उत्पन्न हो सकता है । साधारण रूप से यह समझा जाता है कि हम जो कुछ भी बोलते अथवा लिखते हैं, वह हमारे भावों के अनुकूल होता हैं । परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि हम भ्रम, अज्ञानता या शीघ्रता के कारण कहते या लिखते तो वही हैं, जो हमारे भाव हैं, परन्तु श्रोता या पाठक के लिए उसका भाव दूसरा हो सकता है ।

"मनुष्य के समान चूहे भी अपने रक्षा के लिए बिल बनाते हैं ।"

इस वाक्यद्वारा यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपनी रक्षा के लिए बिल बनाता है । इसी बात को हम ऐसे भी प्रकट कर सकते हैं कि "जैसे मनुष्य अपनी रक्षा के लिए घर बनाते हैं, वैसे ही चूहे अपनी रक्षा के लिए बिल बनाते हैं ।"

२—बिना प्रयोजन ही कभी-कभी असावधानी से, किसी शब्द को दोहरा दिया जाता है । यह शाब्दिक द्विरुक्ति भी रचना का एक प्रधान दोष है ।

(i) "सिवाय सरदार पटेल को छोड़ कर, कोई भी राज्यों में एकता स्थापित नहीं कर सकता था ।"

(ii) "मेरे पिता अभी तक वापस नहीं लौटे ।"

उपरोक्त दोनों वाक्य में "सिवाय" और "वापस" ऐसे शब्द है, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं ।

३—रचना में ऐसे वाक्यों का प्रयोग न किया जाए जो भावों को अस्पष्ट बना दें ।

४—रचना में छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया जाए । यदि विद्यार्थी लम्बे-लम्बे वाक्य लिखने लगें तो उनमें शिथिलता सम्बन्धी दोष आ सकता है । शिथिल वाक्य भी भावों को अस्पष्ट बना देते हैं ।

५—इस बात का प्रयास किया जाए कि विभक्तियों का अव्यवस्थित प्रयोग न किया जाए। आठवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने एक बार लिखा था :—"श्री जगदम्बा प्रसाद आचार्य ने आर्य समाज के, जिसने पिछले ६३ वर्षों से देश का पथ-प्रदर्शन किया है, अध्यक्ष का चुनाव लड़ने का निश्चय किया है।"

सम्भवतः यह दोष अंग्रेजी भाषा से आ गया है। कारण कुछ भी हो, इस प्रकार की भाषा को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए।

६—रचना के समय, इस बात का विशेष प्रयास किया जाए, कि विद्यार्थी अपने लेख में अनावश्यक या निरर्थक शब्दों का प्रयोग न करें। कई छात्र ऐसा लिखते हैं कि, "मेरे पिता ने बड़ी वाली कलम स्वयं ले ली, और छोटी वाली मुझे दे दी।" यह "वाली" शब्द की कोई आवश्यकता नहीं।

७—इस बात की सावधानी रखने की आवश्यकता है कि विद्यार्थी अपनी लिखित रचना में विराम चिह्नों का उचित प्रयोग करें। हिन्दी की पुरानी पुस्तकों में नीचे लिखे तीन चिह्न ही मिलते हैं :—

। ।। —

परन्तु अंग्रेजी के प्रभाव के कारण उपरोक्त चिह्नों के अतिरिक्त निम्नलिखित चिह्नों का व्यवहार भी हिन्दी भाषा में होने लगा है :—

. , ; — ! ? " " ( ) [ ]

लिखते समय विराम चिह्नों का ठीक-ठीक प्रयोग होना चाहिए नहीं तो अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

रचना शिक्षण विधियाँ

विद्यार्थियों को रचना सिखाने के लिए कई विधियाँ प्रचलित हैं। इनको हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

(i) प्राथमिक कक्षाओं के लिए रचना शिक्षण विधियाँ

(ii) माध्यमिक कक्षाओं के लिए रचना शिक्षण विधियाँ

(iii) उच्च कक्षाओं के लिए रचना शिक्षण विधियाँ

अब क्रमशः तीन प्रकार की विधियों का वर्णन किया जाएगा।

प्राथमिक रचना शिक्षण विधियाँ

प्राथमिक कक्षाओं को रचना सिखाने के निमित्त निम्नलिखित विधियों का प्रयोग अधिक किया जाता है :—

१—देखो और रचो विधि

इस विधि का आविष्कार आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी ने किया था।

उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भाषा की शिक्षा' में इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"इस विधि का आधार एक लकड़ी की पिटारी है जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी के नाम पर मोहन पिटारी कहलाती है। इस पेटी में ढकने के पीछे एक सलेट लगी हुई है। उसी पर एक पुस्तक भी फँसी हुई है। नीचे तीन डब्बे हैं जिनमें गत्ते के टुकड़ों पर छपे देव नागरी के अंक, अक्षर, तथा मात्राएँ भरे रहते हैं। इसकी शिक्षा की चार अवस्थाएँ हैं :—

(i) पहली अवस्था में विद्यार्थी अक्षर निकाल कर, खाँचीदार पटरियों में लगाता है। पूरा पृष्ठ रच चुकने के पश्चात्, फिर अक्षरों को अपने स्थान पर रख देता है। इस प्रयोग से बालक की अँगुलियाँ सधती हैं, उसे अक्षरों की पहचान होती है बार-बार देखते रहने से अक्षरों का शुद्ध रूप उसके सामने आता रहता है।

(ii) दूसरी अवस्था में विद्यार्थी अपने रचे हुए पृष्ठ की प्रतिलिपि सलेट पर करता है। इससे उसे लिखने का अभ्यास होता चलता है और अक्षरों की बनावट तथा उनके विभिन्न अंगों का अनुपात भी आजाता है।

(iii) तीसरी अवस्था में अध्यापक श्यामपट पर ऐसे शब्दों के संयोग से वाक्य बनाकर लिखता है, जिन्हें बालक सीख चुका है। उन वाक्यों को बालक खाँचीदार पटरियों में, अक्षरों से रचता चलता है। इस अभ्यास से लिखे हुए अक्षरों से छात्र का परिचय भी हो जाता है और वह तीव्रता के साथ उसकी रचना भी करता है।

(iv) चौथी अवस्था में अध्यापक की बोली सुनकर छात्र गत्ते के अक्षरों से शब्द रचता है तथा सलेट पर लिखता है।

इस विधि को हम खेल-प्रणाली भी कह सकते हैं क्योंकि बालक जो कुछ सीखता है, खेल-खेल में ही सीखता है। इस विधि में निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भी आजाते हैं :—

(i) ज्ञानेन्द्रियों का शिक्षण (Sense Training)

(ii) क्रिया द्वारा सीखना (Learning by Doing)

(iii) अनुकरण द्वारा सीखना (Learning by Imitation)

(iv) स्व-शिक्षा (Auto-Education)

मांटेसरी पद्धति तथा फ्रोबेल (Froebel) की बालोद्यान पद्धति भी इन्हीं सिद्धान्तों पर अवलम्बित हैं।

२—प्रश्नोत्तर विधि

जब उपरोक्त विधि के द्वारा बालक शब्दों की रचना करना सीख ले तब यह आवश्यक हो जाता है कि उसके अनुभव में आने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ लिए जाएं। इस विधि द्वारा जिस विषय पर प्रश्न पूछे जाते हैं, उसका शृङ्खलाबद्ध वर्णन उत्तर के रूप में आजाता है।

शुरू-शुरू में यदि अध्यापक चाहे तो आवश्यकतानुसार बालकों द्वारा प्राप्त उत्तरों को संशोधित करके श्यामपट पर भी लिख सकता है। इससे उत्तरों का ठीक स्वरूप बालकों के सामने आजाता है। प्रश्नों की समाप्ति पर अध्यापक को श्यामपट पर लिखे वाक्य मिटा देने चाहिए ताकि बालकों को नकल करके रट लेने की आदत न पड़े।

इन प्रश्नों को पूछते समय प्रश्नों की वे सब विशेषताएं आजानी चाहिए जिन्हें लेखक ने अपनी पुस्तक "शिक्षा सिद्धान्त" में लिखा है।

यह प्रश्नोत्तर विधि बड़ी पुरानी है। प्राचीन गुरुकुलों में इसी का प्रयोग होता था। पश्चिम में इसका प्रारम्भ महात्मा सुकरात ने किया था। परन्तु इस विधि में अब कुछ अन्तर आगया है पहले शिष्य प्रश्न पूछा करते थे और गुरू उत्तर दिया करते थे। अब अध्यापक प्रश्न पूछता है और विद्यार्थी उत्तर देते हैं।

३—उद्बोधन प्रणाली

इस प्रणाली का प्रयोग तब किया जाता है, जब बालकों का वर्णनात्मक रचनाओं में कुछ अभ्यास हो जाए। इस विधि के द्वारा बालकों की कल्पना-शक्ति को जागृत करने का प्रयास किया जाता है। इसीलिए इसको उद्बोधन प्रणाली भी कहते हैं। इस विधि का प्रयोग नीचे लिखे विषयों की रचना में किया जा सकता है :—

(i) दृश्यों का वर्णन
(ii) जीवन चरित्र
(iii) ऐतिहासिक वर्णन
(iv) भौगोलिक वर्णन
(v) आत्म कथा

माध्यमिक रचना शिक्षण विधियाँ

प्रारम्भिक अवस्था के पश्चात् अब बालक माध्यमिक अवस्था में आता है। थोड़ी बहुत रचना करना तो वह सीख ही चुका है। इस अवस्था में उस के

रचना सम्बन्धी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए हम नीचे लिखी विधियों का प्रयोग कर सकते हैं :—

१—सूत्र विधि

यह विधि बड़ी पुरानी है। पुरातन काल की कई पोथियों में हम देखते हैं कि वेद की संहिताओं, उपनिषदों तथा श्रीमद्भागवत गीता की शिक्षाओं को छोटे छोटे सूत्रों के रूप में बड़े मार्मिक ढंग से संग्रहीत किया गया है। इन सूत्रों की व्याख्या करने के लिए बड़ी-बड़ी रचनाएँ रची गई हैं। इस विधि का प्रयोग हम विद्यार्थियों की रचना-शिक्षा में भी कर सकते हैं। अध्यापक वर्ण्य विषय से सम्बन्धित सूत्र को श्यामपट पर लिख देता है। विद्यार्थी इस सूत्र के आधार पर पूरे का पूरा लेख तैयार करते हैं।

सूत्र विधि का प्रयोग करते समय अध्यापक को एक बात की सावधानी रखनी चाहिए। सूत्र उस विषय से सम्बन्धित न हो, जो विद्यार्थियों की पहुँच से बिल्कुल बाहर हों।

२—प्रबोधन विधि

इस विधि का प्रयोग, उन विषयों के लिए होता है जिनकी जानकारी विद्यार्थियों को न हो। इन विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर नहीं कर करते। इसलिए अध्यापक उन विषयों से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य बातें, छात्रों को समझा देता है। विद्यार्थी अपनी कल्पना के आधार पर रचना करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक, पत्र-पत्रिकाओं आदि के रूप में साधनों का निर्देश भी कर देता है।

३—रूपरेखा विधि

इस विधि के अनुसार अध्यापक छात्रों की सहायता से या स्वयं ही रचना की रूपरेखा श्यामपट पर लिख देता है। विद्यार्थी उस रूपरेखा के आधार पर रचना किया करते हैं। इस विधि का प्रयोग ऐतिहासिक कहानियों, कथात्मक लेखों में, जीवन चरित्रों में तथा वर्णनात्मक लेखों में बड़ी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

उच्च रचना शिक्षण विधियाँ

माध्यमिक कक्षाओं के पश्चात्, विद्यार्थी जैसे ही उच्च कक्षाओं में आते हैं, इस बात का प्रयास किया जाता है कि लिखित रचना के सम्बन्ध में उनको आत्म निर्भर बनाया जा सके। इसके लिए विद्यार्थी स्वयं भिन्न-भिन्न लेखकों

की कृतियों तथा सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करता है। ऐसी कुछ विधियाँ नीचे दी जा रही हैं :—

१—मन्त्रणा-विधि

इस विधि का नामकरण "मन्त्रणा विधि" इसलिए किया गया है, कि यहाँ पर अध्यापक का कार्य केवल पथ-निर्देशन करना ही है। शेष सब कार्य विद्यार्थी स्वयं करता है। अध्यापक विषय को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत करने के पश्चात्, यह मन्त्रणा देता है कि इस रचना के लिए कौन-कौन सी पुस्तकें अथवा पत्र-पत्रिकाएँ उपयुक्त हो सकती हैं। विद्यार्थी यह सामग्री स्वयं ही एकत्रित करता है और अपने बौद्धिक विकास के अनुसार इसका प्रयोग करके लेख आदि लिखता है। इस विधि में विद्यार्थी एक ही विषय से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न लेखकों की कृतियों का अध्ययन करता है। इस प्रकार किसी विषय सम्बन्धी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को अध्ययन करने का उसे अवसर मिल जाता है। इस तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात्, किसी निष्कर्ष पर पहुँचना, उसके लिए सरल हो जाता है। वह स्वतन्त्र, दृष्टि से किसी भी विषय पर विचार कर सकता है। इस विधि के द्वारा विद्यार्थी को भिन्न-भिन्न विद्वानों की शैली का परिचय भी मिल जाता है और उसका शब्द भण्डार भी बढ़ जाता है।

२—स्वाध्याय विधि

यह विधि, मन्त्रणा प्रणाली का ही एक दूसरा रूप है। मन्त्रणा प्रणाली में अध्यापक रचना के विषय के साथ ही साथ भिन्न-भिन्न पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं आदि के नाम भी बता देता है। परन्तु इस विधि के अनुसार अध्यापक केवल रचना सम्बन्धी विषय ही विद्यार्थियों को बताता है। बाकी सब कार्य विद्यार्थी को अपने विवेक से स्वयं ही करना पड़ता है। विद्यार्थी अपने आप ही इस बात की खोज करता है कि विषय सम्बन्धी कौन-कौन सी अन्य रचनाओं का उसे अध्ययन करना चाहिए। और उसके पश्चात् वह, सम्बन्धित सामग्री को एकत्रित करता है तथा अपनी रचना के लिए उसका स्वयं अध्ययन करता है।

इस विधि में विद्यार्थी को स्वयं ही खोज करनी पड़ती है, इसलिए इसे अनुसन्धान विधि भी कह सकते हैं। कई आचार्यों ने इस विधि को "विचार-प्रणाली" का नाम भी दिया है। इस विधि में विद्यार्थी को बहुत परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए इसका उपयोग केवल उच्च कक्षाओं में ही हो सकता है।

३—अनुकरण विधि

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि विद्यार्थी के सम्मुख, कोई ऐसी उत्तम रचना उपस्थित की जाती है जो भाषा तथा शैली की दृष्टि से श्रेष्ठ तथा अनुकरणीय हो। विद्यार्थी उस रचना का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन तथा मनन करता है और उस शैली को हृदयंगम करने का प्रयास करता है। इसके पश्चात् विद्यार्थी को लिखित रचना के लिए कोई विषय दे दिया जाता है। विषय को देते समय, अध्यापक यह आदेश देता है कि लेख उसी भाषा तथा शैली में लिखा जाए, जिसका अध्ययन एवं मनन, उसने अभी-अभी किया है।

४—तर्क प्रणाली

इस विधि को कई लेखकों ने "विमर्श प्रणाली" का नाम भी दिया है। यह विधि विवाद-ग्रस्त विषय के लिए अधिक उपयुक्त हो सकती है। समाज के लोग इन विषयों पर एकमत नहीं है और समय-समय पर पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ न कुछ तर्क उपस्थित करते रहते हैं। सह शिक्षा तथा मूर्ति पूजा इत्यादि ऐसे ही विषय हैं। इस विधि में विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर अपने विषय सम्बन्धी सामग्री को संगठित करता है और अपने पक्ष का मण्डन करते हुए विपक्ष का खण्डन करता है। इसी आधार पर इसे खण्डन-मण्डन विधि भी कहा जा सकता है। सभी सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक समस्याओं पर इस विधि से रचना कराई जाती है। विद्यार्थियों को पहले दो दलों में विभाजित कर उनसे वर्ण्य विषय पर विवाद कराया जाता है। वाद-विवाद की समाप्ति पर, विद्यार्थियों को लिखित रचना के लिए कहा जाता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त कुछ और विधियाँ भी हो सकती हैं, जिनका प्रयोग अध्यापक समुचित ढंग से कर सकता है।

रचना के अंग

भाषा रचना के दो प्रमुख अंग हैं :—

(i) नियमबद्ध रचना

(ii) मुक्त रचना

नियमबद्ध रचना में नियमों का ध्यान रखा जाता है। वाक्यों में शब्द अपने उचित स्थान पर हों, विराम चिह्नों का ठीक-ठीक प्रयोग हो तथा भाषा व्याकरण सम्मत हो।

मुक्त रचना में हमारा मुख्य ध्येय है, विद्यार्थियों में ऐसी शक्ति उत्पन्न करना कि वे अपने विचारों को क्रम पूर्वक अपनी भाषा में व्यक्त कर सकें। मुक्त रचना में, रचनाकार को इस बात की स्वाधीनता है कि वह स्वेच्छा से

शब्दों को चुन कर, उन्हें वाक्यों में सजा सके। इस सम्बन्ध में चैम्पियन (Champion) का कथन है :—

"The ultimate aim of composition is to enable the pupil to arrange his own ideas in his own way, freely to choose his own words, to express his own ideas freely."

रचना के भेद

रचना के दो मुख्य भेद किये जा सकते हैं :—

१—मौखिक रचना

२—लिखित रचना

मौखिक रचना :—इस पर पहले विस्तार से विचार किया जा चुका है। बालक पहले बोलना सीखता है और बाद में लिखना। इसलिए प्रारम्भिक कक्षाओं में, रचना शिक्षा का प्रारम्भ मौखिक पद्धति से ही होता है। मौखिक रचना ही लिखित रचना की आधार शिला है। जिस विषय पर निबन्ध लिखवाना हो, उसकी पहले कक्षा में, मौखिक चर्चा होनी चाहिए। मौखिक चर्चा हो चुकने के पश्चात ही विद्यार्थियों को लिखना प्रारम्भ करना चाहिए।

जो विद्यार्थी अपने विचार शुद्ध हिंन्दी में मौखिक रूप से प्रकट कर सकता है, उसे केवल लिपि, शब्द विन्यास तथा विराम चिन्ह आदि सिखाने की आवश्यकता है। इनके ज्ञान से लेखन कला शीघ्र आजाती है ?

लिखित रचना :—पहले के कुछ पृष्ठों में हमने अपने विचार लिखित रचना के सम्बन्ध में व्यक्त किये हैं। इसके सम्बन्ध में सब से आवश्यक बात यह है कि मौखिक रचना क्षणिक वस्तु है। उसमें स्थायित्व नहीं। बोलते समय, व्यक्ति इधर-उधर की, विषय से बाहर की बातें कर जाता है। परन्तु लिखित रचना में यह बात नहीं है। लिखित रचना क्योंकि स्थायी वस्तु है, इसलिए इसमें दोष छिप नहीं सकते। रचनाकार सर्वदा यह प्रयास करता है कि उसकी रचना निर्दोष तथा गुणों से युक्त हो। इस दृष्टि से लिखित रचना का उत्तरदायित्व, मौखिक रचना से कहीं अधिक है। इसलिए तो बेकन (Bacon) ने कहा है :—

"Speaking maketh a ready man,
But writing maketh an exact man."

रचना सम्बन्धी कुछ अन्य आवश्यक बातें

रचना सुन्दर हो, इसके लिए कुछ और बातें भी जानना आवश्यक है। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य बातें नीचे जा रही हैं :—

१—रचना की भाषा सीधी-सादी, सरल, सुबोध तथा विषय के अनुकूल हो ।

२—रचना में बोलचाल के शब्द ही प्रयोग में लाए जाएँ । वे माधुर्य गुण से युक्त होने चाहिएं ।

३—रचना में विराम चिन्हों का ठीक-ठीक प्रयोग किया जाए ।

४—लिखित रचना करते समय, इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि अक्षर स्वच्छ तथा सुन्दर हों ।

५—लिखित रचना का आकार न बहुत लम्बा होना चाहिए और न ही बहुत छोटा । किसी भी लेख में लम्बी चौड़ी भूमिका देना अनुचित है परन्तु इस बात की सावधानी रखी जाए कि लेख में से कोई बात छूटने न पाए ।

६—इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि लेख लिखते समय, हम कहीं विषय से बाहर न चले जायें और न ही अप्रासंगिक बातों को उसमें स्थान दिया जाए ।

७—किसी भी लेख में एक स्थान पर किसी बात का समर्थन करना परन्तु दूसरे स्थान पर उसका विरोध करना उचित नहीं है ।

८—लेख लिखते समय इस बात की सावधानी रखी जाए कि जितने भी भाव हों व उचित हों तथा क्रमानुसार ही दिये जायें ।

९—लिखित रचना को भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में विभाजित कर लेना चाहिये । एक अनुच्छेद में एक ही भाव होना चाहिए । अनुच्छेद का प्रारम्भ ऐसे वाक्यों से किया जाए, जिनमें उस अनुच्छेद का सार आजाए ।

रचना का पाठ्यक्रम

रचना सिखाने का भी एक क्रम होना चाहिए । प्रथम दो, तीन वर्ष तक तो मुक्त रचना का प्रारम्भ नहीं करना चाहिये, क्योंकि बालकों का भाषा-सम्बन्धी ज्ञान बहुत कम होता है । प्रारम्भिक कक्षाओं में रचना का विषय बालकों की पाठ्य-पुस्तक से सम्बन्धित होना चाहिये तथा उसकी कक्षा में, पहले से ही, चर्चा कर लेनी चाहिये । इसीलिये तो किट्सन (Kittson) ने भी कहा है :—

"In no circumstances should free compositin be set to junior pupils without having the subject thoroughly discussed in class before hand."

छोटी कक्षाओं में रचना का उद्देश्य है, बालकों में वह क्षमता उत्पन्न करना जिसके आधार पर वे अपने भावों को शुद्ध भाषा में व्यक्त कर सकें ।

बालकों की अवस्था के अनुसार रचना का पाठ्यक्रम इस प्रकार होना चाहिए।

प्राथमिक कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम

१—प्रश्नों के उत्तर में बन्धु, बान्धवों तथा परिचित वस्तुओं के नाम बताना।

(मौखिक रचना का प्रारम्भ)

२—अपने बन्धु, बान्धवों तथा मित्रों आदि के नामों को लिखने का अभ्यास।

३—सुपरिचित, तथा आस-पास के पशु-पक्षियों आदि के नामों को लिखने का अभ्यास।

(लिखित रचना का प्रारम्भ)

४—उक्त सम्बन्धियों तथा पशु-पक्षियों आदि के विषय में, साधारण बातचीत।

(मौखिक मौलिक रचना का प्रारम्भ)

५—वार्तालाप में आए, कुछ वाक्यों को श्यामपट पर लिख कर, उसकी प्रतिलिपि करना।

६—पाठ्यपुस्तकों से प्रतिलिपि करना।

७—चित्रों के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर।

८—घर, परिवार, रेलवे स्टेशन, मेला, उत्सव आदि परिचित वस्तुओं का सरल वर्णन करना।

९—माता, पिता, भ्राता आदि कुटुम्बियों को पत्र लिखकर समाचार भेजना। अवकाश माँगने के लिए प्रधानाध्यापक को प्रार्थना पत्र।

१०—किसी छोटी कहानी, वर्णनात्मक लेख अथवा किसी महापुरुष के संक्षिप्त जीवन चरित्र को पढ़ कर, बिना पुस्तक देखे, लिखने का प्रयास करना।

माध्यमिक (मिडिल) कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम

१—विद्यार्थियों द्वारा लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग कराना।

२—रूप रेखा के आधार पर कहानी लिखाना।

३—कहानी को संवाद के रूप में लिखवाना।

४—साधारण उपयोग में आने वाला पत्र व्यवहार छात्रों द्वारा करवाना।

५—इस बात का अभ्यास कराना कि मौखिक तथा लिखित रचना से पूर्व विद्यार्थी रूप रेखा बना लेवें ताकि वे विषय से बाहर न भटकने पावें।

६—प्रधान सामाजिक, तथा धार्मिक विषयों पर साधारण विचारात्मक

लेख लिखवाना जैसे, अछूतोद्धार, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, मूर्ति पूजा, हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि।

७—विद्यालय में होने वाले समारोहों तथा उत्सवों आदि का आँखों देखा वर्णन करवाना।

८—विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति को जागृत करने के लिए, उनसे कल्पना-प्रधान लेख लिखवाना जैसे "यदि मैं भारत का शिक्षा मन्त्री होता", "यदि मैं कवि होता", इत्यादि।

उच्च माध्यमिक (हायर सेकेंडरी) कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम

१—विवादग्रस्त विषयों पर बोलने तथा लिखने का अभ्यास कराना।

२—उच्च कोटि के वर्णनात्मक, तर्कयुक्त और कल्पनात्मक विषयों पर लेख लिखवाना।

३—दूसरी भाषाओं के कुछ सुन्दर अवतरणों का मौलिक ढंग से अनुवाद कराने का अभ्यास कराना।

४—पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं से प्राप्त ज्ञान के अतिरिक्त, विद्यार्थियों द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक सामाजिक, धार्मिक तथा नागरिक अधिकारों से सम्बन्धित विषयों पर विचारात्मक तथा आलोचनात्मक लेख लिखवाना।

५—भावार्थ, संक्षेपीकरण, समीक्षा, स्पष्टीकरण, संवाद विवरण आदि का अभ्यास कराना।

इस रूप रेखा से स्पष्ट है कि रचना शिक्षण में एक क्रमिक योजना का होना आवश्यक है। पहले बालकों को वार्तालाप का अभ्यास कराया जाए, उसके पश्चात वाक्य रचना का। प्रारम्भ में विद्यार्थियों से केवल एक अनुच्छेद लिखाया जाए, बाद में एक से अधिक अनुच्छेद लिखवाये जा सकते हैं। कुछ समय के पश्चात जब निबन्ध लेखन का प्रारम्भ कराया जाएगा तो उसमें भी एक क्रम रहेगा। पहले पहल वर्णनात्मक निबन्ध लिखवाए जाएँगे और बाद में विचारात्मक।

रचना संशोधन

विद्यार्थियों की रचनाओं में प्राय: कई अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। इन अशुद्धियों के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:—

(i) अध्यापक ने रचना के सम्बन्ध में पहले जो निर्देश दिये हैं, उनके बारे में शंका उत्पन्न हो जाना।

(ii) शीघ्रता के कारण।

(iii) असावधानी के कारण ।

(iv) अज्ञानतावश ।

मौखिक रचना के समय, अध्यापक को, विद्यार्थियों की भूलें तत्काल ही सुधार देनी चाहिए । ऐसा करने से वे लिखित रचना में अधिक अशुद्धियां नहीं करेंगे ।

लिखित रचना का संशोधन करना एक कठिन कार्य्य है, क्योंकि एक अध्यापक दो तीन कक्षाओं को पढ़ाता है और इन कक्षाओं के सभी विद्यार्थियों के कार्य का संशोधन करने के लिए समय निकालना उसके लिए एक समस्या बन जाता है ।

परन्तु इतना होते हुए भी रचना संशोधन का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा विद्यार्थी अपने दोष और अशुद्धियाँ जान सकते हैं और भविष्य में इनसे बच सकते हैं । थोम्पसन और वायट (Thomson and Wyatt) के शब्दों में :—

"A correction which is not impressed upon the offender just wastes time."

—"The Teaching of English in India", p. 164.

अपनी सुविधा की दृष्टि से अध्यापक को संशोधन के लिए कुछ संकेत चिह्न निश्चित कर लेने चाहिए । इससे अध्यापक का बहुत सारा समय बच सकता है । ऐसे कुछ संकेत चिह्न नीचे दिए जारहे हैं :—

× = अनावश्यक शब्द ।

Λ=कुछ छूट गया है ।

व्य=व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धि ।

भा = भाषा अशुद्ध है।

? = अस्पष्ट ।

वि=विराम चिह्न की अशुद्धि ।

हि = हिज्जे (spelling) की गलती ।

!=बात को बहुत बढ़ा चढ़ा कर कहा गया है ।

अ = अप्रासंगिक बातों का समावेश किया गया है ।

यह आवश्यक नहीं कि अध्यापक विद्यार्थियों की सभी अशुद्धियों का एक साथ संशोधन करे । संशोधन कार्य, कक्षा और विद्यार्थियों की अवस्था और आवश्यकतानुसार ही होना चाहिए ।

रचना लिखवाने के तुरन्त बाद ही, अध्यापक के द्वारा उसका संशोधन होना चाहिए । बहुत दिनों के बाद विद्यार्थी भूल जाते हैं कि उन्होंने क्या लिखा था ।

सभी कापियों के संशोधन के पश्चात्, अध्यापक सर्वसाधारण अशुद्धियों की एक सूची तैयार कर ले और इन्हें सामूहिक रूप से समझाए।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What are the different forms of Hindi composition ? Give a syllabus in Hindi composition for middle classes in secondary schools.

(2) How would you correct written work in Hindi in schools ?

(३) मातृभाषा के शिक्षण में "रचना" सिखाने के क्या उद्देश्य हैं ? कक्षा ८ को सिखाने के लिए, एक पाठ संकेत प्रस्तुत कीजिए और यह बताइए कि इसमें किन उद्देश्यों की पूर्ति होगी ?

(४) लिखित रचना की विशेषताओं की चर्चा करते हुए लिखो कि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लिए रचना शिक्षण की कौन-कौन सी विधियाँ उपयुक्त हो सकती हैं ?

(५) "रचना" से आप का क्या तात्पर्य है ? रचना के मुख्य मुख्य भेदों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट करो कि रचना शिक्षण के क्या उद्देश्य हो सकते हैं ?

अध्याय ८

नाटक की शिक्षा

हमारी नाट्य परम्परा

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचलन बहुत पहले सी ही है। आचार्यगण नाट्य कला के महत्व से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए उन्होंने अपने परिश्रम से इस कला को उच्च शिखर तक पहुँचा दिया था। विदेशी शासन के आगमन के साथ-साथ भारत में नाट्यकला का भी ह्रास होने लगा। मुस्लिम काल में तो नाट्य-कला का प्रायः लोप सा ही होगया। कहते हैं कि मुगल सम्राट औरंगजेब ने संगीत तथा नाटकों आदि पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ था। वह इन सब वस्तुओं को इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझता था। एकबार की बात है कि औरंगजेब के राज्य में कुछ लोगों ने संगीत तथा नाट्यकला को फिर से जीवित करने के विषय में सोचा। उन्होंने एक नकली मुर्दा बनाया और उसे उठा कर रोते हुए औरंगजेव के महल के सामने से गुजरे। औरंगजेब ने रोने की ध्वनि सुनी और महल की एक खिड़की से झांक कर देखा। उसने रोते हुए लोगों से पूछा कि "कौन मर गया है?" उन्होंने उत्तर दिया कि उस के राज्य में संगीत और नाट्य-कला की मृत्यु होगई है। वे इसी के शव को लिए जारहे हैं। इस पर औरंगजेब ने कहा कि इस शव को इतना गहरा गाड़ना कि फिर से उठने न पाए। जहाँ ऐसी अवस्था हो वहाँ नाट्य-कला बिचारी कहाँ पनप सकती थी।

अंग्रेजों के राज्यमें नाट्य-कला को विकसित करने का फिर से प्रयास किया गया। इस सम्बन्ध में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देन बड़ी महत्वपूर्ण है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस समय जन्म लिया, उस समय बंगाली घरानों में संगीत तथा

नाट्यकला को बड़ा प्रमुख स्थान प्राप्त था। सभी बड़े-बड़े घरानों में संगीतज्ञ थे जो परिवार के सदस्यों को, संगीत की शिक्षा दिया करते थे। जनता में भी कीर्तन, कथा और जात्रा आदि के रूप में संगीत तथा नाट्यकला का कुछ-कुछ प्रचलन था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर नाट्य-कला को फिर से उसी उन्नत अवस्था की ओर ले जाना चाहते थे, जिसमें कि वह कुछ शताब्दियाँ पूर्व थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचारानुसार, शरीर का धर्म है, अपने आप को अभिव्यक्त करना और यह अभिव्यक्ति होगी टाँगों द्वारा, हाथों द्वारा, बाहों द्वारा। उन्होंने एक अंग्रेज दार्शनिक का उदाहरण प्रस्तुत किया है जो मानसिक उद्वेग की दशा में इधर-उधर जोर-जोर से टहलने लगता था। एक बालक जब रोता है, तब अपने हाथों को, पाँवों को, और सिर को पटकता है। उस का सारा शरीर ही अभिव्यक्ति का साधन बन जाता है। परन्तु पाठशाला में इस अभिव्यक्ति को रोका जाता है। वहाँ पर पहला पग ही त्रुटिपूर्ण है। प्रारम्भ से ही बालकों को कठोर आज्ञा दी जाती है, हाथ मत हिलाओ, पैर मत हिलाओ। उन्हें केवल शब्दों द्वारा ही अभिव्यक्त करने को कहा जाता है। किन्तु यह अभिव्यक्ति का अपूर्ण साधन है। शरीर का एक-एक अंग अभिव्यक्ति का साधन है परन्तु फिर भी आज की सभ्यता के युग में उस पर प्रतिबन्ध है।

कभी-कभी हमारी इच्छा होती है कि हम अपने भावों को शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों द्वारा अभिव्यक्त करें। आज की सभ्यता के अनुसार, जब हम ऐसा नहीं कर सकते तो धन खर्च करके नाटक और नृत्य देखने जाते हैं, जहाँ पर कलाकार, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के माध्यम द्वारा अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह मत है कि हमारी अभिव्यक्ति की यह शक्ति नष्ट नहीं होनी चाहिए। इसलिए वे बड़े प्रबल शब्दों द्वारा इस बात का अनुरोध करते हैं कि शिक्षा में अभिनय कला और नाट्य-कला को प्रमुख स्थान दिया जाए।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने इन विचारों को कार्यरूप भी दिया। शांतिनिकेतन में स्थित विश्व-भारती में संगीतकला, नृत्य कला तथा नाट्यकला को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान मिला। वहाँ पर, समय समय पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि विद्वानों के नाटक खेले जाते थे और अब भी वहाँ पर वही परम्परा चली आ रही हैं।

नाट्यकला के सम्बन्ध में विश्वभारती के समान ही, श्री अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी की देन भी उल्लेखनीय है। वहाँ पर अब भी श्री माता जी की अध्यक्षता में श्री अरविन्द प्रभृति विद्वानों के आध्यात्मिक नाटकों का अभिनय किया जाता है। इस बात ने यह सिद्ध कर दिया है कि आध्यात्मिक तथा धार्मिक

क्षेत्रों में भी नाटकों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है और ओरंग-जेब की धारणा निर्मूल थी।

इन्हीं सब बातों ने बंगाली रंगमंच को पनपने में बड़ी सहायता दी। महाराष्ट्र आदि राज्यों में भी इसी प्रकार नाट्य रंगमंच को फिर से जीवित किया गया। परन्तु यह बड़े खेद की बात है कि हिन्दी को रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा श्री अरविन्द जैसा कोई महारथी ऐसा नहीं मिला जो हिन्दी रङ्गमंच को फिर से जीवन प्रदान करता। हिन्दी को अपनी प्रारम्भिक अवस्था में यदि कुछ मिला भी तो पारसी नाटक कम्पनियों के "दिल की प्यास" "इन्दर सभा" और "अमानत" जैसे भद्दे नाटक। जिस जाति ने कालीदास, भवभूति और भास जैसे नाट्यकारों के नाटकों का रसास्वादन किया हो, उसे भला इस प्रकार के नाटक क्यों भाने लगे। इसलिए यह प्रयासअसफल रहा। हिन्दी में यद्यपि जयशंकर प्रसाद, आदि विद्वानों ने कई उत्कृष्ट नाटक लिखे परन्तु रंगमंच के अभाव में हम उन की नाट्यकला का ठीक-ठीक मूल्यांकन न कर सके। यह बड़े हर्ष का विषय है कि अब फिर से लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी तथा दिल्ली जैसे नगरों में हिन्दी रंगमंच की स्थापना की जारही है। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विश्व-विद्यालयों के महत्वपूर्ण योगदान की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती, जहाँ पर प्रायः साहित्यक नाटकों का अभिनय होता रहता है।

नाटक की परिभाषा

संस्कृत साहित्य में भरत मुनि का "नाट्यशास्त्र" बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस पुस्तकमें भरतमुनि ने नाट्यकला के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से लिखा है। नाटकों से सम्बन्धित ऐसी कोई बात नहीं जो छूटने पाई हो। इस ग्रन्थ के द्वारा उस समय की विकसित नाट्यकला का ज्ञान भली-भाँति हो जाता है। नाट्याचार्य भरत मुनि ने नाटक की परिभाषा इन शब्दों में की है :—

"अवस्थानुकृतिर्नाटनम्"

अर्थात् "किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक कहते हैं।" यहाँ पर देखना यह है कि अवस्था के अनुकरण से भरत मुनि का क्या तात्पर्य है? अवस्था से तात्पर्य मानव जीवन की वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं, जिनमें से होकर मनुष्यों को गुजरना पड़ता है। कोई मनुष्य अध्यापन का कार्य करता है, कोई व्यापार करता है, कोई डाक्टर है, कोई स्वामी है, कोई सेवक है, कोई धनवान है, कोई निर्धन है, कोई वीर है, कोई डरपोक है, कोई सच्चरित्र है तथा कोई चोर और डाकू है। मानव जीवन की यह भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं। इनका व्यवस्थित रूप से तथा नियमित ढंग से अनुकरण करना, यही नाटक है। इसके द्वारा जो हम नहीं हैं, वही बन कर दिखाते हैं। अपनी वेश-

भूषा, वाणी तथा आचरण आदि के द्वारा दर्शकों को अपनी आरोपित अवस्था में सत्यता का भान कराते हैं। जब दर्शकगण, इस अनुकरण को सत्य समझने लगते हैं, तभी हमारा अभिनय सफल माना जा सकता है। दर्शक यह विश्वास करने लगे कि वह केवल वास्तविक घटना को ही देख रहा है।

परन्तु नाटक की उपरोक्त परिभाषा सर्वमान्य नहीं समझी गई। नाट्यशास्त्र के एक अन्य विद्वान अभिनव भरत ने अपने "अभिनव नाट्यशास्त्र" में नाटक की नवीन तथा ठीक ठीक परिभाषा इन शब्दों में दी है :—

"किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर, नाट्यकार द्वारा रचित रचना के अनुसार, नाट्यप्रयोक्त द्वारा प्रशिक्षित नट, जब रंगमंच पर संगीत तथा अभिनय आदि के द्वारा रस उत्पन्न कर के दर्शकों का मनोविनोद करते हुए, उन्हें उपदेश और मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं तब इस प्रक्रिया को नाटक या रूपक कहते हैं।"

नाटक के उद्देश्य

अपने ग्रन्थ "नाट्य-शास्त्र" के प्रारम्भ में भरत मुनि ने नाटक के उद्देश्यों की चर्चा इन शब्दों में की है :—

"हितोपदेशजननम् नाट्यमेतद्भविष्यति।
विनोदकरणम् लोके नाट्यमेतद्भविष्यति॥"

अर्थात नाटक के दो प्रयोजन हैं :—

(क) ऐसा उपदेश देना जिससे दूसरों का हित हो।

(ख) दर्शकों का मनोविनोद करना।

भारतीय साहित्य के महान कवि कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध नाटक "मालविकाग्निमित्र" के शुरू में नाटक के प्रभाव के सम्बन्ध में यह उद्गार प्रकट किए हैं :—

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकम् समाराधनम्"

अर्थात् "भिन्न-भिन्न रुचि रखने वाले लोगों को जो समान रूप से सन्तुष्ट करने का साधन है, वह नाटक है।"

मनोरंजन के साधनों में नाटक इतना लोकप्रिय क्यों है, इसकी विवेचना भी हमारे आचार्यों ने की है।

भरत मुनि के मतानुसार "कोई ऐसा ज्ञान, योग, विद्या, कला, शिल्प तथा शास्त्र नहीं है, जिसे नाटक के रूप में न दिखाया जा सके।"

अभिनव भरत का ऐसा विचार है कि "वाद्य, नृत्य, अभिनय, संगीत, दृश्य-सौन्दर्य, चित्र कला, यान्त्रिक-कला, नायक, नायिकाओं आदि का मन-मोहक रूप तथा उनकी विचित्र वेश भूषा आदि अनेकों आकर्षक कलाओं से

का मनोरंजन ही नहीं रहा अपितु शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग होने लगा है। ऊपर हम ने नाटक शिक्षण के उद्देश्यों की चर्चा की है। अब हम देखेंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में नाटकों के द्वारा क्या लाभ पहुँच सकता है।

नाटकों में मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं तथा विषमताओं की चर्चा की जाती है। बालक इन सब को देखता है और सोचता है कि किन परिस्थितियों के अन्दर, पात्रों ने कौन-कौन सा ऐसा काम किया, जिन से कि उन्हें सफलता मिली। क्या वह भी ऐसा कर सकता है ? क्या उस के लिए ऐसा सम्भव नहीं कि वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढाल ले ? क्या वह विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी, बिना घबराए कुशलता से काम लें सकता है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटकों के द्वारा विद्यार्थी परिस्थितियों का सामना करना सीखते हैं।

नाटकों में बालक देखता है कि पात्र अपने माता-पिता तथा अन्य गुरुजनों के साथ कैसे मिलते हैं, अपने से छोटों के साथ उनका आचार-व्यवहार कैसा होता है, राजदरबार आदि में उनके आचरण की क्या विशेषताएं हैं तथा सार्वजनिक स्थानों में वे किस बात की सावधानी रखते हैं। इस प्रकार नाटकों के द्वारा विद्यार्थियों को सामाजिक तथा घरेलू आचार-व्यवहार की शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

नाटकों में अभिनय करते समय, भिन्न-भिन्न पात्रों के रूप में, विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न शब्द बोलने पड़ते हैं। उन्हें यह मालूम हो जाता है कि माता-पिता आदि से बोलते समय किन किन शब्दों का प्रयोग किया जाए तथा अपने साथियों से वार्तालाप करते समय कौन से शब्द बोले जाएं। संस्कृत के नाटकों में तो कई शब्द विशेष अर्थों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे "पति" के लिए "आर्य-पुत्र", साधु सन्त या मुनि आदि के लिए "भगवन", दासी आदि के लिए "हंजे"। इस प्रकार नाटकों के द्वारा विद्यार्थियो का शब्द भण्डार बढ़ाया जा सकता है।

आज के विद्यार्थी ही कल के नागरिक होंगे और उन्हें नागरिकों के उत्तर-दायित्वों को पूरा करना होगा। आज के नेताओं का स्थान भी यही विद्यार्थी ही लेंगे। अतएव यह सर्वथा उचित ही है कि उन्हें सार्वजनिक जीवन के लिए तैयार किया जाए। वे ऐसे कुशल वक्ता बनें कि जनता उन से एकदम प्रभावित हो उठे। नाटकों के द्वारा हम विद्यार्थियों को अच्छा वक्ता अथवा भाषणकर्त्ता बना सकते हैं।

नाटकों में विद्यार्थी पात्रों के भिन्न-भिन्न क्रिया-कलापों को देखते हैं और उन्हें मानव-स्वभाव तथा मानव-चरित्र को अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता

है। इससे उन्हें बड़ा लाभ होता है। समाज के अन्दर रहने वाले मनुष्यों को पहचान सकने में वे समर्थ हो सकते हैं। उन्हें मालूम हो जाता है कि कौन सा व्यक्ति सच्चा तथा ईमानदार है तथा कौन सा व्यक्ति कपटी। इन छद्म वेश धारण करने वाले व्यक्तियों से समाज की रक्षा करनी होगी।

नाटक-शिक्षा की विधियाँ

इस समय नाटक पढ़ाने की कई विधियाँ प्रचलित हैं। उनमें कुछ प्रमुख विधियाँ नीचे दी जा रही हैं:—

१—व्याख्या-प्रणाली

इस विधि के द्वारा नाटक के सम्पूर्ण कथानक की योजना पर, नाटक की भिन्न-भिन्न घटनाओं पर, नाटक के भिन्न-भिन्न पात्रों तथा उन के चरित्र पर, नाटक की भाषा आदि पर, नाटक की पृष्ठभूमि पर, नाटक के विचार सौन्दर्य पर तथा इसी नाटक से सम्बन्धित अन्य विषयों पर प्रश्नोत्तर किये जाते हैं और इस प्रश्नोत्तर के आधार पर नाटक की विशेषताएँ सामने लाई जाती हैं। इस प्रणाली द्वारा विद्यार्थी नाटक के गुण-दोष समझने में समर्थ हो सकते हैं। यह प्रणाली बड़ी पुरानी है। परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखने योग्य है। इस प्रणाली का उपयोग केवल उच्च कक्षाओं में ही हो सकता है। प्राथमिक बुनियादी तथा माध्यमिक कक्षाओं में यह प्रणाली सफल नहो हो सकती।

२—आदर्श नाट्य प्रणाली

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि अध्यापक स्वयं ही कक्षा के सामने, नाटक के सभी पात्रों का कायिक तथा वाचिक अभिनय करता है। वह नाटक के संवादों को इस ढंग से पढ़ता है कि प्रत्येक चरित्र का आभास विद्यार्थियों को हो जाता है। पात्रों के अनुसार प्रेम, करुणा तथा क्रोध आदि का भाव उसके चेहरे पर प्रकट होता है।

इस प्रणाली के द्वारा बालकों का मनोविनोद तो पर्याप्त मात्रा में हो जाता है, परन्तु शिक्षा की दृष्टि से कोई विशेष लाभ नहीं हो पाता क्योंकि बालकों को कोई क्रिया तो करनी ही नहीं पड़ती। वे चुपचाप सुनते तथा देखते रहते हैं। जब तक बालक किसी कार्य को स्वयं न करेंगे तब तक उन्हें कोई लाभ नहीं हो सकता।

प्रयोग प्रणाली :

इस प्रणाली को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

(i) रंगमंच अभिनय प्रणाली

(ii) कक्षाभिनय प्रणाली।

रङ्गमंच अभिनय प्रणाली :—इस विधि के अनुसार जहाँ तक सम्भव हो, विद्यार्थी पूरे के पूरे नाटक को वास्तविक रङ्गमंच पर उपस्थित करते हैं। इस पद्धति की सब से बड़ी कमी यह है कि इस पर धन का व्यय बहुत होता है, भारत जैसे निर्धन देश के लिए ऐसा कर सकना सम्भव नहीं। हाँ, यह बात अलग है कि वर्ष में दो चार बार कुछ नाटक वास्तविक रङ्गमंच पर खेले जाए।

कक्षाभिनय-प्रणाली :—इस प्रणाली की सब से बड़ी विशेषता यह है कि अध्यापक द्वारा नाटक के विभिन्न पात्रों के कार्य, कक्षा के विभिन्न बालकों में बाँट दिये जाते हैं। कोई बालक किसी पात्र का अभिनय करता है तथा कोई बालक किसी का। विद्यार्थियों को जिस पात्र का अभिनय करना होता है, उस से सम्बन्धित संवादों को ध्यानपूर्वक पढ़ता है तथा उस के अनुसार ही कायिक तथा वाचिक अभिनय करता है। रंगमंच अभिनय प्रणाली की अपेक्षा इस प्रणाली में समय की बहुत बचत हो सकती है।

किस विधि को अपनाया जाय ?

सब से उत्तम तरीका तो यह होगा कि अध्यापक कुछ विशेष घटनाओं को अपने आदर्श अभिनय के द्वारा, कक्षा के सामने उपस्थित करे। इस के बाद फिर इन बातों को तथा शेष घटनाओं को कक्षा अभिनय के द्वारा पूरा करावे। अध्यापक का अभिनय, भावुकता तथा सात्विक गुणों से युक्त होना चाहिए। व्यर्थ का अंग संचालन न हो। नाटक के सभी गहन भाव उसके द्वारा स्पष्ट हो सकें और बालक भी उन का अनुकरण कर सकने में समर्थ हो सकें।

साथ ही साथ इस बात का ध्यान भी रखा जाए कि नाटक का उतना ही अंश (एक अंक या दृश्य) लिया जाए, जिसका अभिनय एक घन्टे में किया जा सके।

नाटक पढ़ाने का क्या क्रम हो ?

विद्यार्थियों को नाटक पढ़ाते समय, हम निम्नलिखित क्रम को अपना सकते हैं :—

परिचयात्मक वार्ता

उच्च माध्यमिक तथा उच्चतर कक्षाओं में, पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व विद्यार्थियों को नाटककार का कुछ परिचय दे देना चाहिए। परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि कहीं नाटक के कथानक का ही परिचय न दे दिया जाए। ऐसा होने पर कथानक के प्रति जिज्ञासा की भावना नष्ट हो जाएगी और नाटक का सारा रस समाप्त हो जाएगा।

विषय प्रवेश

इस अवस्था में अध्यापक निश्चित अंश (दृश्य अथवा अंक) का इस प्रकार वाचन करेगा, मानों वह स्वयं ही रङ्गमंच पर खड़ा पात्रों का अभिनय कर रहा है। वाचन के समय अध्यापक जो अभिनय करेगा, वह कायिक नहीं होगा अर्थात् उस में हाथ-पैर हिलाने डुलाने का काम नहीं होगा। वह अभिनय केवल सात्विक तथा वाचिक होगा।

अनुकरण

यह नाटक के पठनक्रम की तीसरी अवस्था है। इस में कक्षा अभिनय प्रणाली का सहारा लिया जाएगा। नाटक में जितने पात्र होंगे, उतने ही विद्यार्थी छाँट लिए जायेंगे और प्रत्येक विद्यार्थी को एक एक पात्र की भूमिका दी जायेगी। पहले अध्यापक ने संवादों का अभिनय जिस प्रकार किया होगा, विद्यार्थी उस का अनुकरण करेंगे।

अनुकरण का एक ढंग और भी हो सकता है जिसे भाव-प्रकाशन प्रणाली का नाम दिया गया है। इस विधि के अनुसार एक विद्यार्थी संवाद पढ़ता जायेगा और अध्यापक उसका कायिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय करेगा परन्तु शिक्षाशास्त्री इस विधि को अब अच्छा नहीं समझते।

आवृत्यात्मक प्रश्न

अभिनय हो चुकने के पश्चात् अध्यापक कई प्रकार के प्रश्न पूछ कर उस दृश्य या अंक की आवृत्ति कर लेगा।

१—इस नाटक में कौन कौन से चरित्र हैं?
२—उन में से आपको कौन सा चरित्र अच्छा लगा है?
३—वह अच्छा क्यों लगा है?
४—शेष चरित्र, इतने अच्छे क्यों नहीं लगे?
५—किस पात्र की बातों में आपको बड़ा आनन्द आया?
६—किस पात्र के विचार आपको ठीक जँचे?
७—इस दृश्य में कौन कौन सी मुख्य घटनाएं हैं?
८—उनमें से कौन-कौन सी घटनाएं आप को अच्छी लगीं?
९—इन घटनाओं का नाटक के पात्रों पर क्या प्रभाव पड़ा?
१०—इन घटनाओं का नाटक के कथानक पर क्या प्रभाव पड़ा?

इस प्रकार के कई प्रश्न विद्यार्थियों से पूछे जा सकते हैं। प्रश्न पूछते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि प्रश्न ऐसे हों जिनसे :—

(i) पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायता मिले ।

(ii) कथानक के विकास पर प्रकाश पड़े ।

(iii) विद्यार्थियों की कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति तथा विवेचन शक्ति का विकास हो ।

नाटक की आलोचना

यदि अध्यापक नाटक पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना चाहता है, या गुण-दोष विवेचन करवाना चाहता है अथवा नाटक के सम्बन्ध में कुछ अन्य बातों की चर्चा करना चाहता है, तो यह काम अन्त में करवाने चाहिए। अभिनय के समय इन बातों को लाना ठीक नहीं ।

नाटकों के गीत और संवाद

हम देखते हैं कि कई नाटकों में कुछ संवाद ऐसे हो सकते हैं जो कठिन हों अब प्रश्न यह उठता है कि इन गीतों और संवादों को किस ढंग से पढ़ाया जाए । इस सम्बन्ध में विद्वानों का ऐसा कथन है कि पूरे नाटक का अभिनय हो चुकने के पश्चात, इन गीतों को स्वतन्त्र रूप से कविता के समान पढ़ाया जाए । इसी प्रकार कठिन संवादों को अलग से गद्य के समान पढ़ाया जाना चाहिए । अभिनय के समय अर्थ बताने लगना या व्याख्या करने लगना समुचित प्रतीत नहीं होता ।

किस प्रकार के नाटक चुने जाएँ

विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए कौन से नाटक चुने जाएँ, यह समस्या भी बड़ी महत्वपूर्ण है । नाटकों का चुनाव करते समय यदि अधोलिखित बातों का ध्यान रखा जाए तो विद्यार्थियों को बड़ा लाभ पहुँच सकता है :—

१—नाटक की भाषा सरल हो, स्पष्ट हो तथा मुहावरेदार हो । नाटक की भाषा में एक प्रवाह हो, रवानी हो तथा व्यंग हो ।

२—नाटकों के सँवाद ऐसे हों, जिनसे कथानक का विकास हो ।

३—नाटक का कथानक इस प्रकार का हो जिससे पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ सके ।

४—जिस नाटक में जितने कम पात्र होंगे, उसका अभिनय उतना ही अच्छा हो सकेगा ।

५—नाटक के द्वारा विद्यार्थियों के मनोरंजन के साथ ही साथ, उन के नैतिक गुणों का विकास भी होना चाहिए ।

६—नाटक में साज-सज्जा, वेश-भूषा, प्रकाश आदि के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश होने चाहिए ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) भारतीय नाट्यकला के विकास पर प्रकाश डालते हुए नाटक की परिभाषा को स्पष्ट करो।

(२) नाटक का शिक्षा की दृष्टि से क्या महत्व है? आपके विचार में नाटक शिक्षण के क्या उद्देश्य होने चाहिए?

(३) नाटक पढ़ाने की कौन कौन सी विधियाँ प्रचलित हैं? विद्यार्थियों के लिए नाटक चुनते समय किन बातों का ध्यान रखा जाए?

अध्याय ६

पाठ्य-पुस्तक

पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता

पाठ्यपुस्तक आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रमुख आधार है। विद्यार्थियों को अपने ज्ञान के विकास के लिए, पाठ्य-पुस्तक का ही सहारा लेना पड़ता है। इसलिए विश्वविद्यालय तथा शिक्षा बोर्ड, विद्यार्थियों की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पस्तकें निर्धारित करते हैं। न केवल विद्यार्थियों के लिए ही अपितु अध्यापकों के लिए भी पाठ्य-पुस्तक का विशेष महत्व है। एक साधारण अध्यापक के लिए पाठ्यपुस्तक मार्ग दर्शक का काम करती है। पाठ्य-पुस्तक के द्वारा अध्यापक को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि उसे इस प्रकार कक्षा में कार्य करवाना होगा। एक गए बीते अध्यापक के लिए तो पाठ्य पुस्तक एक वरदान ही है। उसके सामने एक निश्चित कार्य होता है, कि कम से कम वर्ष-भर में इतना तो अवश्य करवा ही दिया जाए। जहाँ तक सुयोग्य अध्यापक का सम्बन्ध है, वह पाठ्य-पुस्तक के बिना भी अपना कार्य निकाल ही लेगा। सबसे अधिक लाभ जो हमें पाठ्य-पुस्तक से होता है, वह यह कि इससे एक स्तर (Standard) का निर्माण होता है। बिना पाठ्य-पुस्तक के कोई अध्यापक कुछ पढ़ाएगा कोई कुछ। कहीं अधिक पढ़ाया जाएगा कहीं कम। इसलिए एक जैसा स्तर बनाए रखने के लिए हमें पाठ्य-पुस्तक की हर समय आवश्यकता पड़ेगी।

पाठ्य-पुस्तकों का उद्देश्य

पाठ्य-पुस्तक का सबसे बड़ा उद्देश्य यही है कि वह भाषा सम्बन्धी सांस्कृतिक उद्देश्य को पूरा करे। उसके भीतर जनता के सांस्कृतिक जीवन की झलक

मिले। लोगों के रीति रिवाज, तौर तरीके, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ, राष्ट्रीय चरित्र, इनका सबका दिग्दर्शन पाठ्य-पुस्तक के द्वारा हो। ऐसा होने पर ही हम कह सकते हैं कि पाठ्य-पुस्तक भाषा के सांस्कृतिक उद्देश्य को पूरा करती है।

पाठ्य-पुस्तकों के प्रकार

मोटे रूप में पाठ्य पुस्तकें दो प्रकार की होती हैं :—

(i) विस्तृत अध्ययन के लिए, तथा

(ii) सहायक पुस्तक के रूप में।

जो पुस्तकें विस्तृत अध्ययन के लिए होती हैं, वहाँ हमारा प्रयोजन होता है कि बालकों का शब्द भण्डार तथा सूक्ति भण्डार बढ़े। दूसरे शब्दों में हम ऐसा कह सकते हैं कि जिन शब्दों, सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का समावेश पाठ्य-पुस्तक में हुआ है, बालक उसका ठीक-ठीक प्रयोग कर सकें।

सहायक पुस्तकों को हम द्रुत वाचन की पुस्तकें भी कह सकते हैं। यहाँ हमारा प्रयोजन शब्दार्थ समझाना अथवा व्याख्या करना नहीं अपितु शीघ्र गति से वाचन का अभ्यास कराना है। विद्यार्थी जल्दी से जल्दी पुस्तक पढ़कर, भावार्थ समझ लें, यही इस प्रकार की पुस्तकों का उद्देश्य है। कहीं कहीं आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थी अध्यापक की सहायता ले सकता है; अथवा शब्द-कोष देख सकता है।

पाठ्य-पुस्तक के अपेक्षित गुण

पाठ्य-पुस्तक के गुणों की चर्चा करने से पूर्व, हमें उसके दो रूपों को समझ लेना आवश्यक है। पहला है भीतरी रूप और दूसरा बाहरी रूप।

भीतरी रूप में हम पाठ्य-पुस्तक की भाषा, शैली, पाठ्य-विषय आदि की चर्चा करते हैं। बाहरी रूप में पाठ्य-पुस्तक के आवरण, आकार-प्रकार तथा रूप रङ्ग तथा छपाई आदि पर विचार होता है।

पाठ्य-पुस्तकों में निम्नलिखित गुण होना आवश्यक है—

(१) **उपयुक्तता**—बालकों के विकास की जो भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं, पाठ्य-पुस्तकें उसके अनुरूप ही हों। प्रारम्भिक कक्षाओं में बालकों को अद्भुत कथाएँ जैसे अप्सराओं की कहानियाँ, और माध्यमिक अवस्था में जीवनियाँ और जानवरों आदि की कहानियाँ अच्छी लगती हैं। अतः पाठ्य-पुस्तकों में भी इन्हीं विषयों का समावेश होना चाहिए।

(२) **क्रम का होना**—पाठ्य-पुस्तकों का पाठ्य-विषय किसी क्रम के अनुसार होना चाहिए जैसे बालकों की क्रमशः बढ़ती हुई आयु के अनुसार क्रम। भाषा,

शैली तथा शब्दों के चयन के सम्बन्ध में भी क्रम होना चाहिए । पाठ्य-पुस्तकों की भाषा न तो अत्यन्त सरल ही होनी चाहिए, न अत्यन्त कठिन । वह धीरे-धीरे सरलता से जटिलता की ओर बढ़नी चाहिए ।

(३) **अभ्यास**—जिन शब्दों को बालक पहले पढ़ चुके हैं उनका व्यवहार, आगे पाठों में किया जाए, जिससे कि बालक उनसे अभ्यस्त हो जाएँ और वे इन शब्दों का प्रयोग ठीक-ठीक ढङ्ग से कर सकें ।

(४) **सार्थकता**—पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे वाक्य न हों जो अलग से दिखें और जिनका आपस में कोई सम्बन्ध न हो । पाठ्य-विषय में एकता होनी चाहिए और उसका विभाजन भिन्न-भिन्न पैराग्राफों में हो । एक पैराग्राफ दूसरे पैराग्राफ से, एक वाक्य दूसरे वाक्य से सम्बन्धित हो । ऐसा होने पर ही पाठ्य-पुस्तक में सार्थकता सम्बन्धी गुण आएगा ।

(५) **रोचकता**—पाठ्य-विषय ऐसा हो जिसमें विद्यार्थी रुचि रखें । गद्य के पाठों में छोटी और सरल कहानियाँ तथा सरल वर्णनात्मक लेख हों ।

(६) **विषय विविधता**—पाठ्य पुस्तकों के विषयों में विविधता होना आवश्यक है । उनमें भिन्न भिन्न विषयों पर लेख होने चाहिए जैसे कहानी, नाटक, वार्तालाप, यात्रा, जीवनी, इतिहास, आविष्कार इत्यादि ।

(७) **उचित परिमाण में कविताओं का होना**—पाठ्य-पुस्तकों में यथेष्ट परिमाण में कविताएँ भी होनी चाहिए । प्रारम्भिक अवस्था में बालगीत तथा साधारण तुकबन्दी की कविताएँ रखी जाएँ । बाद में धीरे धीरे वर्णनात्मक तथा कल्पनात्मक कविताओं को भी स्थान दिया जा सकता है ।

(८) **भिन्न-भिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित होना**—जो कहानियाँ, लेख, कविताएँ इत्यादि हों, उनका सम्बन्ध किसी एक प्रदेश तक ही सीमित न हो । अपितु उनमें भिन्न भिन्न प्रदेशों तथा विदेशों के जीवन की झलक भी हो, जिससे कुछ समय के पश्चात विद्यार्थी राष्ट्रीय तक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को समझ सकें ।

(९) **साहित्य की सभी धाराओं का समावेश होना**—पाठ्य-पुस्तकों के अन्दर साहित्य की सभी धाराओं का, जैसे कविता, कहानी, नाटक, जीवनी, वार्तालाप, पत्र, वर्णनात्मक लेख, निबन्ध इत्यादि के दर्शन होने चाहिए जिससे विद्यार्थी भी उनसे परिचित हो सकें ।

(१०) **मौलिकता की रक्षा**—कई बार हम देखते हैं कि पाठ्यपुस्ततकों के सम्पादक, किसी लेखक की रचना को या तो संक्षिप्त करके देते हैं, अथवा उस रचना का वर्णन अपने शब्दों में कर देते हैं । इससे रचना की सारी मौलिकता मारी जाती है और विद्यार्थियों को लेखक की मूल रचना से परिचय नहीं मिल पाता । अतएव अन्य प्रान्तीय भाषाओं की रचनाओं को छोड़कर शेष सभी

रचनाएँ मूल रूप में ही दी जाएँ तो अधिक अच्छा रहेगा। जहाँ पर रचनाएँ बहुत लम्बी हों, वहाँ उनका कुछ अंश दिया जा सकता है ?

(११) **रचनाओं का आकार**—इस बात का ध्यान रखा जाए कि पाठ्य-पुस्तकों में जो भी रचनाएँ हों, वह इतनी बड़ी हों जो ३५ अथवा ४० मिनिट के समय में पूरी हो सकें।

(१२) **उपयोगी चित्र**—इस बात का यत्न किया जाय कि वर्णित विषयों से सम्बन्धित चित्र, पाठों के साथ लगा दिये जाएँ। इससे बालक पाठ में अधिक रुचि लेंगे।

(१३) **आवरण**—पाठ्य-पुस्तकों का आवरण सुन्दर होना चाहिए। छोटी कक्षाओं के बालक रंग बिरंगा आवरण पसन्द करते हैं और बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी सादा परन्तु कलात्मक आवरण।

(१४) **कागज**—पाठ्य-पुस्तकों का कागज न बहुत पतला और न ही ऐसा हो, जिसकी चमक आँखों पर पड़े। मुद्रित अक्षर सुन्दर तथा सुडौल होने चाहिएँ।

(१५) **जिल्द और मूल्य**—पुस्तक की जिल्द मजबूत होनी चाहिए तथा मूल्य भी उचित हो।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अन्य गुणों के समान, पाठ्य-पुस्तक की रूप-सज्जा ऐसी होनी चाहिए कि बालक उसे अपने पास रखने में गौरव का अनुभव करे।

सहायक पुस्तकों के आवश्यक गुण

भाषा तथा शब्दावली

इन पुस्तकों की भाषा पाठ्य-पुस्तकों से सरल होनी चाहिए तथा इनमें उन शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जिन्हें वे पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ चुके हैं, इससे उनका अभ्यास पक्का हो जाएगा।

विषय

पाठ ऐसे हों जिनमें बालक रुचि लें तथा वे एक ही विषय से सम्बन्धित हों तो अधिक अच्छा रहेगा।

आवृत्यात्मक प्रश्न

पाठ के अन्त में ऐसे प्रश्न हों जिनका सम्बन्ध पाठ्य-विषय के सार से हो।

पाठ्यपुस्तकों का चयन

पाठ्य-पुस्तकों के चयन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए :—

१—पाठशालाओं में, पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव में अध्यापकों को पूर्ण स्वत - न्त्रता होनी चाहिए।

२—किसी भी विद्यालय में, एक ही भाषा पढ़ाने वाले सभी अध्यापक, आपस में मिलकर निश्चय कर लें, कि कौन-कौन पाठ्य-पुस्तकें अनुमोदित की जाएँ। ऐसा करने पर जल्दी-जल्दी, पाठ्य-पुस्तकें बदली नहीं जाएँगी।

३—पश्चिम के बहुत से देशों में ऐसा देखा जाता है कि विश्वविद्यालय तथा शिक्षा बिभाग, पाठ्यपुस्तकें निर्धारित करने से पहले, अध्यापकों की सम्मति ले लेते हैं। भारतवर्ष में भी ऐसा ही होना चाहिए।

४—भाषा पढ़ाने वाले अध्यापकों की ऐसी संस्थाएँ होनी चाहिए जो पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में अपनी आलोचनाएँ तथा सुझाव विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा विभागों को भेजें। इन सुझावों के आधार पर ही, पाठ्य-पुस्तकों के नए संस्करण छपने चाहिए।

लेखकों के लिए सुझाव

प्रत्येक लेखक को पाठ्य-पुस्तक लिखते समय नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिए :—

१—वह जिस भाषा की पुस्तक लिख रहा है, उसे उस भाषा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

२—वह जिन कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तक लिख रहा है, उसे उन कक्षाओं के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी होनी चाहिए।

३—उसे बालकों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ऐसा न होने पर, वह अपने साथ उस व्यक्ति को सम्मिलित कर लेवे, जिसे इन बातों का ज्ञान है।

प्रकाशकों को सुझाव

पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशकों को नीचे लिखे सुझाव दिए जा सकते हैं :—

१— प्रकाशकों के द्वारा, लेखकों को इस बात की सुविधा मिलनी चाहिए कि वे पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में उनकी कापी राईट पुस्तकों का उपयोग कर सकें।

२—शिक्षा-विभागों, तथा अध्यापकों को, पाठ्य-पुस्तकों के चुनाव में, सहायता देने के लिए, प्रकाशन संस्थाओं को, अपने द्वारा प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों की नमूने की प्रति, शिक्षा विभागों को, प्रशिक्षण संस्थाओं को तथा अध्यापकों की संस्थाओं को भेजनी चाहिए।

३—पाठ्य-पुस्तकों का मूल्य, जहाँ तक सम्भव हो, कम रखना चाहिए।

पठन सामग्री

बालकों की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों की पठन सामग्री, इस प्रकार की होनी चाहिए :—

प्रारम्भिक अवस्था (Primary Stage)

इस अवस्था में घरेलू जीवन सम्बन्धी कहानियाँ तथा छोटे-छोटे वर्णनात्मक लेख हों तथा कविताएँ हों। कहानियाँ अत्यन्त सरल होनी चाहिएँ तथा उनमें गतिशीलता तथा अभिनयशीलता सम्बन्धी गुण होने चाहिएँ। इस अवस्था की पाठ्य-पुस्तकों में काफी संख्या में चित्र हों, प्रत्येक पाठ के पश्चात् अध्यापकों के लिए टिप्पणियाँ हों तथा पाठ के अन्त में बालकों के अभ्यासार्थ प्रश्न दिए जाएँ।

माध्यमिक अवस्था (Middle Stage)

इस अवस्था में धीरे-धीरे बालकों को साहित्य की विभिन्न धाराओं का परिचय कराया जाएगा इसलिए पाठ्य-पुस्तकों में वार्तालाप, छोटे-छोटे एकांकी तथा दूसरे नाटक, छोटी-छोटी कहानियाँ, संक्षिप्त वर्णनात्मक लेख और पत्रादि रहेंगे। पाठ्य-पुस्तकों में चित्र तो रहेंगे परन्तु संख्या में अधिक नहीं। प्रत्येक पाठ के अन्त में अभ्यास के लिए शब्द रखे जाएँगे। इस अवस्था में व्याकरण का प्रारम्भ होता है, इसलिए व्याकरण सम्बन्धी कुछ प्रश्न भी रखे जाएँगे। पाठ्य-पुस्तक के आधार पर प्रस्ताव (Composition) लेखन का भी सुझाव दिया जाएगा।

उच्च माध्यमिक अवस्था (Higher Secondary Stage)

इस अवस्था में विद्यार्थियों को मूल साहित्य से परिचित कराया जाएगा। इसलिए पाठ्य-पुस्तकों में प्रसिद्ध लेखकों की मूल रचनाएँ रहेंगी। इस अवस्था की पाठ्य-पुस्तकों में साहित्य की सभी धाराओं का समावेश होना चाहिए जैसे भावात्मक तथा कलात्मक कविताएँ और कहानियाँ, विचारात्मक निबंध, नाटक, यात्रा वर्णन इत्यादि।

माध्यमिक विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तकें और मुदालियर आयोग

मुदालियर आयोग ने भी अपने प्रतिवेदन में, माध्यमिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध विस्तार से विचार किया है। उनके निष्कर्ष और सुझाव नीचे दिए जा रहे हैं :—

वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों के दोष

पाठशालाओं और महाविद्यालयों के अध्यापकों ने आयोग को जो सूचना दी, उसके आधार पर वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों में निम्नलिखित दोष पाए जाते हैं :—

१—कुछ पाठ्य-पुस्तकों का स्तर, श्रेणी विशेष के स्तर से बहुत ऊँचा होता है।

२—कुछ पाठ्य पुस्तकें, श्रेणी विशेष के बालकों के स्तर को देखते हुए, बहुत सुगम होती हैं।

३—प्रायः पाठ्य पुस्तकों की भाषा दोषपूर्ण होती है।

४—पाठ्य-पुस्तकों में विषय का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं किया जाता।

५—केन्द्रीय सरकार, तथा राज्यों की पाठ्य-पुस्तक समितियाँ इस ओर विशेष ध्यान नहीं देती।

६—पाठ्य-पुस्तकों में प्रयोग किया जाने वाला कागज, सामान्य रूप से घटिया होता है।

७—पाठ्य-पुस्तकों का मुद्रण असन्तोषजनक होता है।

८—पाठ्य-पुस्तकों में मुद्रण सम्बन्धी कई अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

९—पाठ्य-पुस्तकों में दिए गए चित्र घटिया प्रकार के होते हैं।

मुदालियर आयोग के सुझाव

उपरोक्त दोषों को देखते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में नीचे लिखे सुझाव दिए हैं :—

(क) पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन

पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन के सम्बन्ध में, आयोग ने नीचे लिखे विचार प्रकट किए हैं :—

(i) पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन वाणिज्य-प्रकाशकों के हाथों में न छोड़ा जाए अपितु उन्हें राज्यों की पाठ्य-पुस्तक समितियों की संरक्षणता में प्रकाशित किया जाये।

(ii) प्रत्येक श्रेणी तथा विषय के लिए, पर्याप्त संख्या में, पाठ्य-पुस्तकें अनुमोदित की जाएँ और उपयुक्त पुस्तकों का चयन, संबद्ध संस्थाओं पर छोड़ दिया जाये।

(iii) ऐसी कोई पुस्तक अनुमोदित न की जाए जो जनसमुदाय के किसी भाग की धार्मिक भावनाओं पर आघात करती हो अथवा किसी सामाजिक प्रथा को अवमान में लाती हो।

(iv) पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा किसी विशेष राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रचार नहीं होना चाहिये।

(v) पाठ्य पुस्तकें ऐसी हों जिनके द्वारा किशोरों में सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रेम बढ़े और वे अच्छे नागरिक बन सकें।

(ख) पाठ्य-पुस्तकों के चित्र

पाठ्य पुस्तकों में किस प्रकार के चित्र होने चाहिए, इसके सम्बन्ध में आयोग ने अधोलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

(i) केन्द्रीय सरकार को एक नवीन संस्था स्थापित करनी चाहिए, जिस में होनहार कलाकारों को पुस्तक चित्रों की प्रविधियों में प्रशिक्षित किया जा सके।

(ii) केन्द्रीय सरकार को और यदि सम्भव हो तो राज्य सरकारों को भी अच्छे चित्रों के ऐसे संग्रहालय खोलने चाहिए, जिनमें से, आवश्यकता पड़ने पर, पाठ्य-पुस्तक समितियों और प्रकाशकों को चित्र भेजे जा सकें।

(iii) पाठ्य पुस्तक समितियों को, विभिन्न श्रेणियों के लिए कागज, मुद्र (Type), चित्रों तथा पुस्तकों के आकार आदि के सम्बन्ध में निश्चित तथा स्पष्ट माप दण्ड निर्धारित कर देने चाहिए और ऐसी पाठ्यपुस्तकों को अस्वीकार कर देना चाहिए जो निर्दिष्ट मापदण्डों के अनुसार न हों।

(ग) उच्चशक्ति समिति का संगठन

आयोग के मतानुसार, प्रत्येक राज्य में एक उच्चशक्ति समिति का निर्माण किया जाए। समिति में नीचे लिखे सात सदस्य होने चाहिए :—

(i) राज्य के उच्च न्यायालय (High Court) का एक न्यायाधीश।

(ii) राज्य के लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) का एक सदस्य।

(iii) संबद्ध प्रदेश का एक उप-कुलपति।

(iv) राज्य का एक मुख्याध्यापक अथवा मुख्याध्यापिका।

(v) राज्य का शिक्षा संचालक (Director of Public Instruction)

(vi) तथा (vii) उपरोक्त सदस्य दो प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्रियों को मनोनीत (Co-opt) करेंगे।

राज्य का शिक्षा संचालक, समिति का सचिव होना चाहिए। समिति का कार्यकाल पाँच वर्ष होना चाहिए। समिति का अपना अलग कार्यालय होगा। समिति के सदस्य अपना सभापति निर्वाचित कर सकते हैं।

समिति के कार्य :—समिति के कार्यों का उल्लेख करते हुए आयोग ने निम्नाङ्कित विचार प्रकट किए हैं :—

(i) माध्यमिक विद्यालयों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम के प्रत्येक विषय के लिए विषय विशेषज्ञों (Subject Specialists) की तालिका तैयार करना ।

(ii) निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में, समय समय पर, विशेषज्ञ समितियों की नियुक्ति करना ।

(iii) पाठ्य-पुस्तकें तथा आवश्यकता पड़ने पर, अध्ययन के लिए, अन्य पुस्तकें लिखने के लिए, विशेषज्ञों को निमन्त्रित करना ।

(iv) पाठ्य पुस्तकों के योग्य चुनाव के लिए, यदि सम्भव हो तो, अन्य राज्यों की उच्चशक्ति समितियों से सहयोग प्राप्त करना ।

(v) माध्यमिक पाठशालाओं के लिए, अपेक्षित पाठ्य-पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए प्रबन्ध करना ।

(vi) प्रकाशनों की बिक्री से प्राप्त धन-राशि से एक निधि (Fund) की स्थापना की जाए ।

(vii) उन लेखकों को अधिशुल्क (Royalties) प्रदान करना, जिनकी पुस्तकें, पाठ्य-पुस्तकों के रूप में अथवा निर्देश पुस्तकों (Books of Reference) के रूप में अनुमोदित की जाती है ।

(viii) निधि के शेष भाग का प्रयोग नीचे लिखे कार्यों के लिए किया जाएगा—

१—निर्धन तथा योग्य छात्रों को छात्र-वृत्तियाँ प्रदान करना ।

२—ऐसे विद्यार्थियों के लिए, आवश्यक पुस्तकों का प्रबन्ध करना ।

३—पाठशाला के बालकों के लिए दूध, मध्यान्ह भोजन (Mid-day meal) और सायं-अल्पाहार का प्रबन्ध करना ।

४—सरकार के सामने, ऐसे अन्य कार्यों की योजनाएँ रखना ।

(घ) निर्देश पुस्तकें

आयोग के विचार में, विद्यार्थियों के सर्वतोमुखी विकास के लिए यह आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषाओं में, निर्देश पुस्तकें (Books of Reference) प्रकाशित की जाएँ । अध्यापक भी इस प्रकार की पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं और अपने ज्ञान को अद्यावधिक (Up-to-date) बनाए रख सकते हैं ।

(च) पाठ्य-पुस्तकों का परिवर्तन

माध्यमिक शिक्षा आयोग के मतानुसार समय-समय पर पाठ्य पुस्तकों का परिवर्तन करना उचित प्रतीत नहीं होता इसलिए उनका सुझाव है कि पाठ्य-पुस्तकों तथा अध्ययन के लिए निर्धारित अन्य पुस्तकों को बार बार बदला न जाए । इस प्रकार के परिवर्तनों को निरुत्साहित करना चाहिए ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Give the qualities of a book to serve as text book. Name any existing book stating, how it meets your demand in teaching Hindi.

(2) What principles should guide us in the selection of text books in Hindi for High School classes ? Give your suggestions, especially for the selection of prose texts and rapid readers.

(3) How does the method of teaching a Rapid Reader differ from that of Text Book ? What are the qualities of a good Rapid Reader ?

(४) हिन्दी की पाठ्य-पुस्तक किन आधारों पर बनाई जा सकती है ? आदर्श पाठ्य-पुस्तक के लक्षण बताइये ।

(५) "पाठ्य-पुस्तक साध्य न होकर साधन मात्र है", इस उक्ति पर विचार करते हुए लिखिए कि पाठ्य-पुस्तकों के क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

(६) पाठ्य-पुस्तकों के सम्बन्ध में, माध्यमिक शिक्षा आयोग ने क्या सुझाव दिए हैं ? इनके सम्बन्ध में आप का क्या विचार है ?

अध्याय १०

कविता का अध्यापन

कविता का अध्यापन कैसे किया जाए, इस की चर्चा करने से पूर्व, यह जानना अधिक आवश्यक होगा कि कविता से हमारा तात्पर्य क्या है। कविता के तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए, समय समय पर, भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। उन का सारांश नीचे दिया जा रहा है :—

कविता किसे कहते हैं ?

कविता के सम्बन्ध में आनन्दवर्धनाचार्य का मत है कि

"काव्यस्यात्मा ध्वनिः।"

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है।

आचार्य कुन्तक के मतानुसार :—

"वक्रोक्तिर्काव्य जीवितम्।"

अर्थात् वक्रोक्ति (बात को घुमा फिरा कर कहना) ही काव्य का जीवनाधार है।

क्षेमेन्द्र के अनुसार :—

"औचित्यं स्थिर सिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्"

अर्थात् औचित्य ही काव्य का प्राण है।

आचार्य मम्मट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "काव्य प्रकाश", में काव्य का लक्षण इन शब्दों में दिया है :—

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि"

अर्थात् दोष रहित, गुणयुक्त प्रायः अलंकृत परन्तु कभी अनलंकृत शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

वामन ने रीति को अधिक महत्व देते हुए काव्य की परिभाषा इन शब्दों में की है :—

रीतिरात्मा काव्यस्य

अर्थात् रीति ही काव्य की आत्मा है। रीति से आचार्य वामन का तात्पर्य है गौड़ी, वैदर्भी तथा पाञ्चाली रीतियों से। रीति में वर्णों की व्यवस्था अर्थात् कानों पर पड़ने वाले प्रभाव को विशेष महत्व दिया जाता है।

"रसगङ्गाधर" के प्रणेता पंडित राज जगन्नाथ कहते हैं कि :—

"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द ही काव्य कहलाता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि "रमणीयता" से आचार्य का क्या तात्पर्य है। "रमणीयता" शब्द को स्पष्ट करने के लिए, वे आगे कहते हैं :—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपम् रमणीयतया :

अर्थात् जो वस्तु क्षण-क्षण में नवीन दिखाई पड़े, उसे रमणीय कह सकते हैं।

कविराज विश्वनाथ ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ "साहित्य दर्पण" में कविता की परिभाषा इन शब्दों में दी हैं : —

"वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्"

अर्थात् रस से युक्त वाक्य ही, काव्य है।

संस्कृत भाषा के कई आचार्यों ने अलंकार को ही काव्य का आत्मा कहा है। अब हम देखेंगे कि अंग्रेजी भाषा के विद्वानों ने कविता की परिभाषा किन शब्दों में की है :—

अंग्रेजी कवि "वर्डसवर्थ" (Wordsworth) कहता है :—

"Wisdom married to immortal verse"

[The Excursion, Book 7]

"Choiced word and measured phrase,
Above the reach
Of ordinary man"

[Resolution and Independence]

"पोप" (Pope) ने लिखा है :—

"The varying verse, the full resounding line,
The long majestic march, energy divine."

[Imitations of Horas—Book II]

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि "कालरिज" (Coleridge) ने कविता की परिभाषा इन शब्दों में की है :—

"Best words in the best order."

"हिल" (Hill) कविता को ईश्वर की दी हुई शक्ति मान कर कविता के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार व्यक्त करता है :—

"Read, meditate, reflect, grow wise—in vain;
Try every help, force fire from every spark;
Yet shall you never the poet's power attain;
If Heaven never stamped you with the muse's mark."
[The Poet]

अंग्रेज कवि "कीट्स" (Keats) ने कविता का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है :—

Of poetry, that it should be a friend,
To sooth the cares and lift the thought of men."

प्रसिद्ध हिन्दी समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "चिन्तामणि" में कविता की जो परिभाषा दी है, वह अंग्रेज कवि कीटस (Keats) की परिभाषा से काफी मिलती जुलती है। आचार्य शुक्ल जी के मतानुसार :—

"कविता वह साधन है, जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा तथा निर्वाह होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविता के सम्बन्ध में किन्हीं भी दो व्यक्तियों के विचार एक से नहीं है। परन्तु फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा कवि कीट्स (Keats) की परिभाषाएं उत्तम कही जा सकती हैं। समन्वित रूप से यदि देखा जाए तो काव्य में रसात्मकता, निर्दोषता, अलंकार विधान तथा लोक हित की भावना आदि का समावेश हो जाता है।

पद्य और कविता में अन्तर

पद्य और कविता में पर्याप्त अन्तर है। कविता की अपेक्षा पद्य शब्द अधिक व्यापक है। सभी कविताएं पद्य हो सकती हैं, परन्तु सभी पद्य कविताएं नहीं हो सकते। कविता छन्द रहित भी हो सकती है, परन्तु पद्य के लिए छन्द का होना आवश्यक है। पद्य और कविता में इतना अन्तर होते हुए भी, प्रायः दोनों को एक ही समझा जाता है। यहाँ पर इस पुस्तक में हम भी कविता को इस व्यापक रूप में ही लेंगे।

गद्य और पद्य में अन्तर

पद्य एक छन्दोबद्ध रचना है। उसमें यति, गति तथा लय आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। पद्य या कविता का सम्बन्ध हमारे हृदय से

होता है। उसमें रोचकता का अंश अधिक होता है। परन्तु गद्य में यह बातें नहीं पाई जातीं, इसलिए वह कविता की अपेक्षा अधिक शुष्क होता है।

छन्दोबद्ध रचना का क्रमानुसार विभाजन

छन्दोबद्ध रचना या पद्य को नीचे लिखे रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

१—बाल गीत या बालोचित तुकबन्दियाँ।

२—वर्णनात्मक या घटना प्रधान पद्य।

३—साहित्यक रचनाएँ।

बालगीत या तुकबन्दियाँ

इस प्रकार की कविताएँ प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए, विशेष प्रकार से उपयुक्त हैं। कविताओं को चुनते समय नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिए :—

(i) यह बालगीत तथा तुकबन्दियाँ अत्यन्त सरल होनी चाहिए। इनमें प्रयुक्त वाक्य छोटे होने चाहिए।

(ii) सम्पूर्ण कविताएँ २०-३० पंक्तियों से अधिक लम्बी न हों।

(iii) कविताओं में वर्णित बातें, बालकों तथा बालिकाओं के वातावरण के अनुसार तथा उनकी अनुभव परिधि के भीतर हों।

(iv) यह कविताएँ मनोरंजक होनी चाहिए। इनके द्वारा बालक आनन्द की प्राप्ति कर सकें।

(v) इन कविताओं में गेयता तथा अभिनयात्मकता होनी चाहिए ताकि छोटे-छोटे बालक इन्हें सुविधापूर्वक गुनगुना सकें।

उदाहरण के रूप में हम इस कविता को ले सकते हैं :—

सड़क बनी है लम्बी चौड़ी,
इस पर जाती मोटर दौड़ी।
सब बच्चे पटरी पर जाओ,
बीच सड़क पर कभी न आओ।
आओगे तो दब जाओगे,
चोट लगेगी पछताओगे।

वर्णनात्मक या घटना प्रधान कविताएँ

इस प्रकार की कविताएँ विशेष रूप से माध्यमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त होती हैं। इन कविताओं के कुछ विषय नीचे दिए जा रहे हैं :—

(i) घटनाओं का वर्णन ।

(ii) ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियाँ ।

(iii) प्राकृतिक दृश्य ।

(iv) महापुरुषों की पद्यात्मक कथाएँ ।

उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित कविताएँ, इस कोटि में आएँगी :—

(क) गोस्वामी तुलसीदास का "सीता स्वयम्बर", (ख) सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" का "भिक्षुक" तथा (ग) सुभद्राकुमारी चौहान की "झाँसी की रानी" ।

साहित्यक रचनाएँ

इस प्रकार की रचनाएँ कल्पनापूर्ण तथा विचारात्मक होती हैं । वे गम्भीर विषयों पर लिखी जाती हैं । वे नीति, करुणा, दया, मानवता तथा विश्व-बन्धुत्व आदि के भावों से परिपूर्ण होती है । भक्तिकाल तथा रीतिकाल की अनेकों रचनाएँ तथा आधुनिक युग में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा तथा जयशङ्कर प्रसाद आदि की रचनाएँ इस कोटि में आती हैं ।

यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि कविताओं का यह वर्गीकरण सुगमता की दृष्टि से किया गया है । बहुत सी कविताएँ, एक से अधिक वर्गों में स्थान पा सकती हैं ।

कविता का उद्देश्य

जब हम कविता के अध्यापन तथा उस पर होने वाली आलोचना पर विचार करते हैं तो दो प्रमुख बातें हमारे सामने आती हैं । पहली यह कि जिस ध्येय की पूर्ति के लिए कविता पढ़ाई जा रही है, उस पर अध्यापकगण तनिक भी विचार नहीं करते । दूसरी बात यह कि बहुत से आलोचक भी, काव्य अध्यापन के उद्देश्य के सम्बन्ध में अन्धकार में है । वस्तुस्थिति ऐसी होने के कारण अध्यापक कविता का अध्यापन किसी भी प्रकार पूरा कर लेता है और आलोचक ठीक प्रकार से उसका मार्गदर्शन नहीं कर पाते ।

हम जिस विषय को पढ़ा रहे हैं, इसका विद्यार्थियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका ज्ञान यदि अध्यापक को भली भाँति नहीं होगा, तो उसका सारा प्रयत्न अव्यावहारिक तथा व्यर्थ होगा ।

"काव्य विषयक भ्रामक कल्पना" नामक लेख में प्रसिद्ध मराठी आलोचक डा० पटवर्धन लिखते हैं :—

पुराने अध्यापकों का कथन है कि कविता का भली-भाँति अभ्यास हो जाने पर निम्नलिखित चार बातें पूरी हो जाती हैं—

१—अपरिचित दुर्बोध शब्दों का परिचय हो जाने पर शब्द भण्डार बढ़ता है।

२—मुहावरों और लोकोक्तियों का ज्ञान हो जाने पर, इनका प्रयोग भाषणादि में किया जा सकता है।

३—नीति सम्बन्धी ज्ञान होने पर व्यक्ति तथा समाज दोनों का भला होता है।

४—अन्वयार्थ आदि के अभ्यास से बुद्धि तीव्र होती है।

पुराने अध्यापकों के सामने इन चार बातों का ध्यान इतना अधिक रहता था कि काव्य अध्यापन का वास्तविक उद्देश्य क्या है, इस ओर उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया। यदि हम पहले की पाठ्य पुस्तकों पर दृष्टि डालें, तो भी यही बात सामने आएगी। कविता जितनी कठिन होगी उतनी ही अच्छी बात है, कविता में नीति सम्बन्धी कुछ न कुछ उपदेश होना ही चाहिए। कविता में अलंकारों अथवा मुहावरों आदि की भरमार होनी चाहिए। यह बातें पुस्तक के सम्पादक अथवा लेखक अपने ध्यान में रखते थे। अध्यापक भी इसी बात को यथेष्ट समझते थे कि कविता में कठिन शब्दों के अर्थों को बता दिया गया है, अलंकार करवा दिए गए है, गद्य में व्याख्या हो गई है और विद्यार्थियों ने कविता रट ली है।

काव्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में इस भ्रान्ति का मूल परिणाम यह निकला कि छात्रगण काव्य के वास्तविक स्वरूप को न समझ सके और न ही उनके हृदयों में काव्य के प्रति प्रेम जागृत हो सका।

कविता के अध्यापन में विकृत दृष्टिकोण होने का क्या परिणाम निकला, यह देख लेने के बाद यह प्रश्न सामने आता है कि पाठशाला में कविता के अध्यापक के सामने क्या उद्देश्य रहना चाहिए?

मानवीय जीवन को रमणीय बनाने के लिए जो अनेकों ललित कलाएँ हैं, उनमें काव्य कला भी एक प्रमुख स्थान रखती हैं। कला का उद्देश्य है सौन्दर्य का भाव जागृत करना। पाठशालाओं के पाठ्यक्रम में काव्य कला का स्थान इसीलिए होना चाहिए कि विद्यार्थियों के मन में सौन्दर्य ग्रहण करने की शक्ति को विकसित किया जाए। कविता के अभ्यास से वह जगत में सभी प्रकार के सुप्त अथवा असुप्त सौन्दर्य की पहचान कर सकें। हमारे आस-पास के वातावरण में कितने ही रमणीय दृश्य हैं। सभी लोगों को वे रम्य नहीं लगते। इसका प्रधान कारण यह है कि इन लोगों के पास रमणीयता का शोध करने वाली दृष्टि

का अभाव है । इसी अभाव के कारण वे कितने ही आनन्द को ग्रहण नहीं कर पाते । कविता के अध्यापन का भी यही ध्येय है कि वह सौन्दर्य शोधक दृष्टि विद्यार्थियों में उत्पन्न की जाए जिससे कि वे संसार रूपी उद्यान में विहार करते समय अनेकों प्रकार के रमणीय स्थलों का आनन्द ले सकें । निर्झर का कल कल स्वर, लहरों का नर्तन उनके हृदयों को गुदगुदा दे । इन्द्रधनुष के विविध रंग उनके नेत्रों में एक नवीन ज्योति का आभास उत्पन्न करें । हिमालय के धवल शिखर उनके मन में सात्विक भावों को भरें, देश भक्तों की त्यागवृत्ति उनके हृदयों में भी ध्येय के प्रति निष्ठा को जाग्रत करे । सारांश यह कि इस जगत और जीवन में जो सुन्दर हैं उसका आस्वाद वे भली-भाँति ले सकें ।

जब हम यह कहते हैं कि कविता का उद्देश्य है कि विद्यार्थी सौन्दर्य का ग्रहण कर सकें, तो हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि यह सौन्दर्य ग्रहण तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि इसमें "सत्य" और "शिव" का मिश्रण नहीं होगा । महाकवि कीट्स ने कहा है "Beauty is Truth" अर्थात् सौन्दर्य सत्य है । जीवन के जो शाश्वत सत्य है, जीवन के जो शाश्वत मूल्य हैं, उनका दर्शन कविता में होना चाहिए । चित्र कला के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वही चित्र श्रेष्ठ हैं जिसमें वास्तविक जीवन (सत्य) के दर्शन हों । यही बात काव्य के सम्बन्ध में भी लागू होती है । यदि कविता के अध्यापन में अध्यापक ने सौन्दर्य से सत्य की ओर जाने वाली शक्ति का विकास भली-भाँति कर दिया, तो पाठशाला छोड़ने के पश्चात भी विद्यार्थी अपने लिखने, बोलने, पढ़ने आदि जीवन के सभी क्रियाकलापों में जो जो शिव और अन्तिम सत्य है, उसे आत्मसात करने लगेंगे और अपने जीवन को रम्य तथा उदात्त बनाते हुए, सत्यं, शिवं और सुन्दरं के आदर्श को ग्रहण करने लगेंगे तथा इस जगत में जो कुछ असत्य, अमंगल अथवा अभद्र है, उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखेंगे । फिर यह रोज-रोज का लड़ाई-झगड़ा, पर-धन-हरण इत्यादि बातें नहीं दिखेंगी और उनमें शुद्ध सात्विक भावों का संचार होगा । फिर विद्या का जो अन्तिम ध्येय आत्म-विकास है, उसकी ओर जाने वाले का मार्ग सहज हो जाएगा ।

मनुष्यों के मन में जो श्रृंगार, करुण, वीर, वात्सल्य आदि भावनाएँ है, कवि अपने काव्य के द्वारा इनको स्पर्श करता हुआ सित्यं-शवं-सुन्दरं के आदर्श की ओर ले चलता है ।

कविता का अध्यापक

कविता के उद्देश्य पर चर्चा करने के पश्चात अब यह प्रश्न सामने आता है कि कविता का अध्यापन कौन करे ? दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कविता के अध्यापक में कौन कौन से गुण होने चाहिए ?

इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात यह है कि कविता का अध्यापन करने वाले के हृदय में स्वयं कविता से प्रेम होना चाहिए। उसके स्वभाव में रसिकता तथा आनंद का प्रमुख अंश होना चाहिए। जीवन में हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति को जिस विषय में रुचि होती है, जिस विषय का उसे अनुभव होता है, उसका कथन वह बड़ी उत्तम रीति से कर सकता है। यह बात कविता के अध्यापक पर भी लागू होती है। कविता के अध्यापक की यह विशेषता है कि कवि द्वारा प्राप्त अनुभवों को सजीव बनाकर वह उनका आकलन विद्यार्थियों को करा देता है। काव्य के निर्माण के समय, कवि के अन्तःकरण में जिन जिन भावनाओं और कल्पनाओं का उद्भव हुआ होगा, उन्हीं उन्हीं भावनाओं और कल्पनाओं का प्रादुर्भाव बालकों के हृदयों में कराना, कविता के अध्यापक का प्रथम कर्त्तव्य है। ऐसा होने पर ही विद्यार्थीगण काव्य का रसास्वादन कर सकेंगे।

परन्तु विद्यार्थियों के मन में काव्य-रस को ग्रहण करने की पात्रता का निर्माण तभी होगा, जब सर्वप्रथम उसका निर्माण अध्यापक के मन में होगा। यदि अध्यापक को कविता रूखी सूखी लगेगी, और उसमें काव्याध्यापन का उत्साह नहीं होगा तो विद्यार्थी कैसे काव्य का रसास्वादन करेंगे, कैसे कवि के अनुभवों का साक्षात्कार करेंगे, कैसे उन भावनाओं का अपने में विकास करेंगे।

इसलिए यह अधिक अच्छा होगा कि ऐसे अध्यापक, जिन्हें कविता प्रिय नहीं हैं, काव्य के अध्यापन में हाथ न डालें। न ही वरिष्ठ अधिकारियों को, ऐसें अध्यापकों से कविता पढ़ाने के लिए कहना चाहिए। तात्विक दृष्टि से यह बात चाहे जितनी सरल हो परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं, इसका पर्याप्त अनुभव लेखक को है। परन्तु चित्र का एक दूसरा रूप भी है? अध्यापन कार्य में लगे व्यक्तियों में ऐसे कितने हैं जिन्हें कविता से प्रेम है ? थोड़े बहुत परिमाण में काव्य तथा सौन्दर्य से प्रेम तो प्रत्येक मनुष्य को है। एकाध अपवाद निकला तो उसकी गणना "स वै मुक्तोऽथवा पशुः" इस श्रेणी में की जा सकती है।

दूसरी बात, जिसे कविता का अध्यापक याद रखे, यह है कि वह कविता का वाचन तथा अध्ययन सतत् जारी रखे। किसी भी विषय का अध्यापक हो, उसे अपने-अपने विषय का अभ्यास चालू रखना चाहिए। परन्तु यह बात कितने अध्यापकों में है?

ऐसे कितने ही अध्यापक हैं जिन्होंने विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं के अतिरिक्त, अन्य किसी कविता पर दृष्टि दौड़ाई ही नहीं। यदि कविता का अध्यापक भिन्न-भिन्न तथा नई-नई कविताएं, स्वयं नहीं पढ़ेगा तो वह उनके भावों का दिग्दर्शन विद्यार्थियों को कैसे करा सकेगा। कहने का

तात्पर्य यह कि कविता का अध्यापक यदि कविता की भावनाओं को सजीव रूप में देखना चाहता है तो उसे काव्य वाचन का अभ्यास निरन्तर जारी रखना चाहिए ।

ट्रेनिंग कालेजों से निकलने वाले अध्यापकों के विषय में जब हम विचार करते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है । जब हम यह देखते हैं कि हिन्दी विषय को लेकर उत्तीर्ण होने विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है, तो पहले पहल बड़ा समाधान होता है । परन्तु उनसे जब ठीक-ठीक परिचय प्राप्त हो जाता है तो यही कहना पड़ता है कि यदि इससे आधे विद्यार्थिगों ने हिन्दी का विषय लिया होता तो और भी अच्छा होता । चार-चार वर्ष कालेज में लगाने के पश्चात भी वे शुद्ध वाचन नहीं कर सकते, शुद्ध प्रयोग नहीं कर सकते तथा हिन्दी साहित्य की गतिविधियों से जानकारी नहीं रखते । ऐसे व्यक्ति जब ट्रेनिंग कालेजों में बी० टी० अथवा बी० एड० के लिये आते हैं, तो यही कहना पड़ता है कि "खुदा ऐसे अध्यापकों से विद्यार्थियों को बचाये ?"

सामान्यतः विद्यार्थी अनुकरण प्रिय होते हैं । वे अध्यापक को अपने नेता के रूप में देखते हैं । अतः अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह सदा जागरूक रहे क्योंकि विद्यार्थियों के मन को तैयार करने का श्रेष्ठ तथा पवित्र कार्य उसे सौंपा गया है । विद्यार्थियों के हृदयों में रमणीय वस्तुओं से प्रेम उत्पन्न करना, उनकी भावनाओं को स्पर्श करके, उदात्त भावों का विकास करना, ये कार्य कविता के अध्यापक को करने हैं । इसमें तभी उसे सफलता मिलेगी, जब वह स्वयं भी, इस ओर प्रयत्नशील होगा और अपेक्षित गुणों का विकास अपने अन्दर करेगा ।

कविता का चयन

कविता अध्यापन किस उद्देश्य से किया जाए तथा कविता के अध्यापक में कौन से गुण होने चाहिए, इन दोनों बातों के समान ही, कौन सी कविता बालक को पढ़ाई जाए, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । बालकों की पाठ्य-पुस्तकों में अनेकों कविताओं का संग्रह होता है । अध्यापक उनमें से किस कविता से प्रारम्भ करे । आम तौर पर तो यही समझा जाता है कि बालकों की पाठ्यपुस्तक में से, जिसमें गद्य तथा पद्य दोनों ही मिलते हैं, कोई भी कविता चुन ली जाए ।

साधारणतयः बालकों की पाठ्यपुस्तकों में, वर्ष भर में पढ़ने के लिए केवल दस बारह कविताएँ ही होती हैं । हम बालकों के हृदयों में सौन्दर्य ग्रहण करने की शक्ति का विकास करना चाहते हैं । क्या केवल दस-बारह कविताओं

से यह सम्भव हो सकता है ? क्या हम इसे न्यायसंगत कह सकते हैं ? परन्तु यह वास्तविक स्थिति है । इसे इसी रूप में ग्रहण करना ही पड़ता है ।

पढ़ाने के लिए अध्यापकगण वे ही कविताएँ चुनते हैं, जिनमें वे अधिक से अधिक प्रश्न पूछ सके, किसी अंश की व्याख्या करने के लिए लम्बी वक्तृता झाड़ सकें अथवा उसकी नीति सम्बन्धी बातों पर प्रकाश डाल सकें ।

परन्तु काव्य केवल मात्र बौद्धिक क्रिया कलाप नहीं और न ही नीति सम्बन्धी चर्चा का विषय है । यदि इन बातों के कारण विद्यार्थियों के मन में यह बात बैठ गई कि काव्य तो कठिन विषय है तो उनकी काव्य के प्रति अनास्था तथा अप्रीति हो जाएगी, उनकी भावनाओं का समुचित विकास नहीं होगा और जीवन में जो रम्य अथवा सुन्दर है, उसके प्रति वे उदासीन रहेंगे ।

कविता के चयन में अध्यापक को, अपनी पसन्द को ही प्रधानता देनी चाहिए । "यह कविता मुझे प्रिय है, मैं इसे विद्यार्थियों को सिखा सकूँगा"—यदि अध्यापक के मन में ऐसा आत्म-विश्वास रहा तो वह बड़ी उत्तम रीति से कविता का पाठ पढ़ा सकेगा । कविता में अध्यापक की तन्मयता को देखकर बालक भी अल्पावधि में एक रूप होकर, उस कविता का रसास्वादन करने लगेंगे । अध्यापक की प्रसन्न मुखमुद्रा, उसकी दृष्टि में दिखने वाली चमक, इन सबसे बालक पूर्ण रूप से कविता के भावों को समझने में समर्थ हो सकेंगे । इसीलिए तो अँग्रेजी में कहा गया है कि रसास्वादन तो स्वयं किया जाता है, उसे कोई दूसरा नहीं करा सकता—"Appreciation is not taught but caught." इसलिए प्रत्येक अध्यापक को अपनी प्रिय कविताओं का संग्रह करना चाहिए और बालकों को भी इस बात की प्रेरणा कर देनी चाहिए कि वे भी ऐसी कविताओं का संग्रह करें जो उन्हें अच्छी लगती हैं ।

जो कविताएँ अध्यापक को अच्छी लगती है, उनके प्रति उसका ममत्व होगा । इस कारण से ऐसी कविताओं के अध्यापन में एक सजीवता आएगी ।

मैट्रिक तथा इन्टर की परीक्षा देने वाले छात्रों के यदि उत्तर देखे जाएँ तो दुर्दैव से एक ही अनुभव सामने आता है । यदि किसी कविता के सम्बन्ध में उनकी सम्मति ली जाए तो वे अपनी ओर से कुछ भी कहने में असमर्थ होंगे । उस कविता के सम्बन्ध में जो भिन्न भिन्न आलोचकों का मत है, केवल उसे ही उद्धृत कर देंगे । जब तक वे कविताओं का संग्रह नहीं करेंगे, उनको लयानुसार बार बार गुनगुनाएँगे नहीं, तब तक उनके वास्तविक सौन्दर्य का भली भाँति दिग्दर्शन नहीं कर सकेंगे ।

कविता के चयन के सम्बन्ध में अध्यापक को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि उसका प्रधान कार्य विद्यार्थी को ज्ञान प्रदान करना नहीं अपितु

कवि को जो जो अनुभव हुए हैं, उनको फिर से बालकों के अन्ताकरण में उद्घाटित कर देना है।

"The poetry lesson should not attempt in any direct manner to increase the vocabulay, or enlarge the readers stock of general knowledge or his power of expression......The aim is to afford each individual in the class a keen and sincere pleasure in a new experience of an enlargement of his powers of sympathetic imagination; to enable the poem to stimulate emotions of imagination for which the poem is itself the adequate expression."[1]

कविताओं के चयन के सम्बन्ध में भी याद रखना चाहिए कि सारी कविताएँ एक विषय तक ही सीमित न हों अपितु भिन्न भिन्न विषयों पर हों। उनमें विविधता होनी चाहिए और यह विविधता भी केवल काव्य-विषयों तक ही मर्यादित न रहे अपितु एक ही कवि की भिन्न भिन्न विषयों की कविताएँ भी ली जाएँ।

कविताओं को चुनते समय एक और प्रश्न भी सामने आता है। क्या पुराने कवियों की कविता भी चुनी जाए? इस सम्बन्ध में एक पक्ष का कथन है कि पुराने कवियों की कविताएँ बिल्कुल न चुनी जाएँ क्योंकि—

(i) ऐसी कविताओं की भाषा क्लिष्ट होती है?

(ii) ऐसी कविताओं में दोहा, सवैया, चौपाई, आदि छन्दों का बन्धन होता है, इसलिए यह कविताएँ मनोरंजक नहीं होती।

(iii) ऐसी कविताएँ साधारणतय: धर्म सम्बन्धी अथवा ईश्वर सम्बन्धी होती हैं। विषयों की विविधता के दर्शन उनमें नहीं होते।

दूसरे पक्ष का कथन है कि पुराने कवियों की कविताएँ अवश्य चुननी चाहिएँ क्योंकि—

(i) भारतीय संस्कृति के यदि हम दर्शन करना चाहते हैं तो इन पुरानी कविताओं के द्वारा ही सम्भव हो सकेगा।

(ii) पुरानी कविताओं में रमणीयता है, सौन्दर्य है और विविधता है। इसका ज्ञान तभी होगा जब हम ऐसा कविताओं का अध्ययन करेंगे।

इस सम्बन्ध में यही बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कविता के द्वारा हम मानवीय भावनाओं को स्पर्श करते हैं। इस दृष्टि से नई कविता और पुरानी कविता, ऐसे दो भेद हम नहीं कर सकते।

1—"Teaching Poetry"—Introduction (Compiled by The Society for Teachers)

दोनों प्रकार की कविता में ऐसा सामर्थ्य है। पुरानी कविता अवश्य ही चुनो जाए परन्तु ध्यान देने योग्य बात केवल इतनी है कि वह कौन सी कक्षा से प्रारंभ की जाए जिससे कि विद्यार्थी उन कविताओं में नीति और धर्म सम्बन्धी जो भाव हैं, उन्हें समझ सकें।

कविता की प्रस्तावना

कविता के प्रत्यक्ष अध्यापन में सबसे पहले जो समस्या सामने आती है वह यह कि कविता की प्रस्तावना कैसे की जाए ? साधारण अध्यापकों के सम्बन्ध में देखा जाता है कि वे कक्षा में प्रवेश करने के बाद चार पांच मिनिट कुछ भी इधर-उधर के प्रश्न पूछते हैं, अथवा प्रस्तावनात्मक भाषण देने के बाद कविता प्रारम्भ कर देते हैं।

ट्रेनिंग कालेजों में छात्राध्यापक इस उधेड़बुन में रहते हैं कि किस प्रकार हरबार्ट के पंच सोपानों को कविता के चौखटे में फिट किया जाए और प्रस्तावना ऐसी हो कि छात्र झटपट अपने हाथ खड़ा कर प्रश्नों का उत्तर देने को उत्सुक रहें। इस प्रस्तावना को इतना महत्व देने का परिणाम यह होता है कि कभी-कभी स्थिति बड़ी हास्यापद हो जाती है।

एक छात्राध्यापिका को तीसरी कक्षा को कविता पढ़ानी थी। कविता का शीर्षक था "दूर है माता तेरी।" अध्यापिका ने सोचा कि कुछ न कुछ प्रस्तावना तो होनी ही चाहिए उसने प्रश्न किया "कितनी छात्राएं यहाँ पर, अपनी माँ से दूर रहती हैं ?" तीन चार छात्राओं ने, जो छात्रावास में रहती थीं, हाथ खड़े कर दिए। फिर यह प्रश्न पूछे गए, माँ की याद कब आती है ? याद आने पर वे क्या करती हैं ? छात्रावास से पत्र कैसे भेजे जाते हैं ? छात्रावास में उन्हें क्या क्या अनुभव हुए हैं ? ३५ मिनट का समय था। उसमें से २० मिनट तो इन्हीं प्रश्नों की चर्चा में बीत गए। फिर छात्राध्यापिका ने कहा "अच्छा, अब अपनी पुस्तकें खोलो।" छात्राओं ने पूछा "बहन जी ! क्या "मालती का मां के नाम पत्र" नामक पाठ पढ़ाएंगी ?"

इसी प्रकार एक अन्य छात्राध्यापक थे, जो लाहौर में रहते थे। उनको जो कविता पढ़ानी थी, उसका शीर्षक था "अनारकली"। अब अध्यापक जी ने सोचा कि यदि सभी विद्यार्थी प्रस्तावना में भाग लें तो कितना अच्छा हो। कक्षा में आने के पश्चात उन्होंने बड़ी गंभीरतापूर्वक प्रश्न किया "बालको तुमको इतिहास कौन पढ़ाता है ?" उत्तर—"श्री रमेशचन्द त्रिपाठी"। पुन: प्रश्न : "श्री त्रिपाठी कहाँ रहते हैं ?" उत्तर : "अनारकली बाजार में" "अच्छा तो आज हम 'अनारकली' नामक कविता पढ़ेंगे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि छात्राध्यापक इस प्रस्तावना के सम्बन्ध में काफी परेशान रहते हैं।

पाठशालाओं में प्रस्तावना की जो पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं, अब हम उन पर कुछ विचार करेंगे।

कुछ अध्यापक कविता पढ़ाने के पूर्व विद्यार्थियों को कवि का परिचय दे देते हैं। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि वे कविता को "कविता के लिए" न पढ़ाकर "परीक्षा के लिए" पढ़ाते हैं। मैट्रिक की परीक्षा में कवि के चरित्र पर एक प्रश्न अवश्य आता है, इसलिए कवि का परिचय देना आवश्यक है।

हम पहले विचार कर चुके हैं कि, कविता पढ़ाते समय अध्यापक का कार्य है कविता के सौन्दर्य का उद्घाटन करना और बालकों की भावनाओं का विकास करना, कवि के चरित्र का कथन करना नहीं। कवि के चरित्र के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता तो कविता पढ़ चुकने के पश्चात होनी चाहिए, इससे पूर्व नहीं। जब बालक किसी कवि की अनेकों कविताएँ पढ़ लेंगे और उस कवि की कविताएँ उन्हें अच्छी लगेंगी, तो उसके जीवन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए, वे स्वयं ही प्रयत्नशील होंगे। यह ही वह समय है, जब बालकों को कवि के चरित्र के सम्बन्ध में जानकारी दी जाए।

प्रस्तावना करने की एक दूसरी पद्धति यह है कि कविता का जो मुख्य विषय है, उसकी चर्चा प्रारम्भ में कर देना। मुख्य विषय की चर्चा करते समय कभी-कभी अध्यापक कविता के केन्द्रीय भाव का कथन करता है। यदि कविता के मध्यवर्ती भाव की चर्चा पहले ही कर दी गई तो बालक उस कविता का आनन्द क्या उठायेंगे? फिर कविता के अन्दर ऐसी कौन सी बात रह जाएगी जिससे बालक प्रेरित हों? कभी कभी हम किन्हीं पाठ्यपुस्तकों में भी कविता के प्रारम्भ में थोड़े शब्दों में मुख्य विषय का कथन करने की अनिष्टकारी पद्धति देखते हैं।

प्रस्तावना की एक अन्य रीति यह हैकि कविता पढ़ाने से पूर्व कठिन शब्दों तथा कठिन प्रसंगों को स्पष्ट कर देना। कविता में जो कठिन शब्द प्रतीत हों, उन्हें श्यामपट पर लिख दिया जाता है ताकि बालक कविता पढ़ने से पूर्व इन शब्दों से परिचय प्राप्त कर सकें। यहाँ कठिन शब्दों का अर्थ शब्दकोष के आधार पर बताया जाता है। परन्तु कविता में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ, अर्थ के भीतर सूक्ष्म छटा तथा प्रभाव, यह सब दूसरे शब्दों के साहचर्य से ही समझा जाता है। कविता के भिन्न-भिन्न चरणों का दो-तीन बार वाचन हो चुकने के पश्चात कवि के शब्दों का नाद, अर्थ तथा औचित्य जितनी अच्छी प्रकार से समझ में आ सकता है, उतना केवल मात्र शब्दों के अर्थ बता देने से नहीं। एक दूसरी बात भी इस सम्बन्ध में स्मरण रखने योग्य है। यदि हम बालकों को शब्दों का अर्थ पहले ही बता देंगे तो शब्दों के साहचर्य से नवीन शब्दों का अर्थ समझने

की सामर्थ्य उनमें नहीं बढ़ा पाएंगे। क्योंकि ऐसा अवसर बार बार नहीं आएगा। डा० गरे ने भी इस बात का समर्थन इन कब्दों में किया है :—

"The words of the poem are not to be regarded objectively, not to be looked at and examined, with detetchment. They should sink into the mind and be allowed to repose there as the focus of one's meditation until they yield fulness.

कविता की प्रस्तावना एक अन्य विधि से भी की जाती है। जिस कविता को पढ़ाना हो, उसकी पार्श्वभूमि से सम्बन्धित कुछ प्रश्न पूछ कर, वैसा ही वातावरण तैयार किया जाता है। "हल्दी घाटी" अथवा 'शिवाजी" नामक कविता पढ़ानी हो तो राजपूतों तथा मराठों की वीरता सम्बन्धी प्रश्न पूछ कर वीर रस पूर्ण वातावरण तैयार किया जाएगा। परन्तु इस सम्बन्ध में भी एक शंका है। ऐसे वातावरण का निर्माण, मूल कविता के प्रध्यापन से पूर्व कैसे सम्भव होगा ? क्या यह सारा प्रयत्न कृत्रिम न होगा ?

यदि उपरोक्त सभी पद्धतियाँ दोषपूर्ण हैं तो कौन सी ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा प्रस्तावना दी जाए। इस सम्बन्ध में प्राध्यापक हैडो का मत ही सबसे अधिक युक्ति संगत लगता है। उनका कथन है कि कवि के सामर्थ्य पर तथा अपने विद्यार्थियों में विश्वास रखो और सीधे मूल कविता की ओर अग्रसर हो जाओ।

"Have a faith in the poet, and in your pupils and go straight to the poem."[2]

वास्तबिक कविता के अध्यापन से पूर्व, कविता सम्बन्धी वातावरण का निर्माण करना प्रायः अशक्य सा है, इसलिए प्रस्तावना आदि के झंझट में न फँसते हुए, एक दम कविता का उत्तम रीति से, सस्वर, भावपूर्ण तथा लययुक्त वाचन प्रारम्भ करवा देना चाहिए। प्रस्तावना में व्यर्थ ही समय व्यय करने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा होगा कि छात्रगण वास्तिवक कविता की अनुभूति के द्वारा कविता के सौन्दर्य को हृदयंगम कर अपनी भावनाओं को विकसित कर सकें।

कविता का वाचन

अनेकों अध्यापकों को जब कक्षा के समक्ष कविता पढ़ने के लिए कहा जाता है तो वे इसे टालने का यत्न करते हैं। इसके दो प्रमुख कारण हैं। एक तो अध्यापक को कविता पढ़ने का अभ्यास न होने से संकोच रहता है। दूसरे कविता के अध्यापन में, कविता पढ़ कर दिखाने का क्या महत्व है, वे इसे

1—Dr. P. Gurrey : "The Appreciation of Poetry."
2—Haddow : "On The Teaching of Poetry."

नहीं जानते । कुछ अध्यापक कविता का वाचन करते भी हैं तो बड़ी अनास्था से और इसका परिणाम भी वैसा ही रहता है । बालक काव्य का वास्तविक आनन्द नहीं उठा पाते । जल्दी जल्दी कविता का वाचन करना, वाचन करते समय अनेकों शब्दों को छोड़ देना, अटक-अटक कर पढ़ना, आवाज का उतार चढ़ाव न होना, वाचन का भावपरिपोषक न होना—इत्यादि अनेकों दोष अध्यापकों के काव्य-वाचन में पाए जाते हैं । इसलिए हमें इस बात पर विचार करना है कि कविता का वाचन करते समय किन किन विशेषताओं का ध्यान रखा जाए ।

सबसे प्रमुख बात जो ध्यान रखने योग्य है वह यह कि काव्य मुख्य रूप से श्रव्य कला है । इसका सम्बन्ध कानों से है । नृत्य और चित्रकला के समान वह केवल मात्र आँखों का विषय नहीं जैसा कि प्राध्यापक हैडो ने कहा है :—

"Poetry is an art of ear, not of the eye—in other words, poetry is sound, not sight."[१]

अतः कविता का रसास्वादन केवल कानों के द्वारा ही हो सकता है । इस दृष्टि से कविता का वाचन कितना महत्वपूर्ण है, यह हम भली-भाँति समझ सकते हैं ।

पुराने राज दरबारों में भी, वे ही कवि अधिक आदर, सत्कार पाते थे जो अपनी कविता का वाचन सुन्दर ढङ्ग से कर पाते थे । मुद्रण-कला ने हमारे जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है । जहाँ उसके इतने उपकार हैं वहाँ कुछ थोड़ा सा अपकार भी है । लोग अब मौन वाचन करने लगे हैं और कानों को कविता सुनने का अवसर बहुत कम मिलता है ।

पाठशाला के वातावरण में कविता का नियमित रूप से वाचन होना अति आवश्यक है । बालकों का मन नाद माधुर्य्य और तालबद्धता से जल्दी आकर्षित होता है । इन बातों की पूर्ति कविता के वाचन के द्वारा ही सम्भव हो सकती है । अध्यापक अपनी कविता निःसंकोच होकर, खुली आवाज से, तन्मयता-पूर्वक पढ़े, फिर देखो बालकों के हाथों, पैरों और गर्दन में कैसी गति होती है । केवल पुस्तक में से ही चुपचाप कविता पढ़ लेने पर बालक उसका भाव ठीक प्रकार से नहीं समझ सकेंगे । इसके लिए अध्यापक को स्वयं स्पष्ट रूप से कविता का वाचन करना होगा । कई अध्यापक संकोचवश अथवा आलस्यवश कविता पढ़ने का काम किसी बालक पर डाल देते हैं । परन्तु यह पद्धति ठीक नहीं है । बालकों से कविता का वाचन अवश्य कराया जाए परन्तु प्रारम्भ में ही नहीं अपितु बाद में । जब तक बालकों ने कविता के अर्थों को हृदयंगम नहीं

1—Haddow : On the Teaching of Poetry.

किया, भावों को ठीक प्रकार से नहीं समझा, तब तक वे कविता का वाचन अच्छी प्रकार से कैसे कर सकेंगे। यही बात अध्यापकों पर भी लागू होती है, जब तक कि वे कविता को भली-भाँति समझ न लें तब तक उन्हें कक्षा में कविता का वाचन नहीं करना चाहिए। स्वतः अनुभव करना और रसास्वादन प्राप्त करना, ये कार्य पहले होने चाहिए अन्यथा कविता का वाचन, केवल दृष्टि का व्यायाम होकर ही रह जाएगा। इस सम्बन्ध में श्री गरे ने बड़ा अच्छा कहा है :—

"We do not understand a great poem till we have felt it through and as far as possible re-created in ourselves the emotions which it originally carried.

कविता का वाचन उत्तम होना, यह भी एक कला है। इस कला की प्राप्ति में दैवी देन के समान, परिश्रम की भी अत्यन्त आवश्यकता है। जो अध्यापक इसके लिए प्रयत्न नहीं करते और बिना किसी तैयारी किए, किसी भी ढङ्ग से कविता पढ़ देते हैं, वह अपना तथा विद्यार्थियों का समय नष्ट तो करते ही हैं, साथ ही साथ कविता का अपमान भी करते हैं। कविता का उत्तम वाचन किये बिना उसका अध्यापन पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

इसके पश्चात जो बात विचारणीय है, वह यह कि उत्तम वाचन से हमारा क्या तात्पर्य है ? सामान्य रूप से यही समझा जाता है कि आवाज मधुर हो और कविता अच्छी प्रकार से गाई जा सके। परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। भावों का बोध कराने वाले लयानुसार वाचन तथा तान और आलाप लेकर गाए गए संगीत में पर्याप्त अन्तर है।

एक छात्राध्यापिका को जय शंकर 'प्रसाद' की एक कविता पढ़ानी थी। कविता का शीर्षक था "बीती विभावरी जाग री" कविता वास्तव में बड़ी सुन्दर थी। अब उस अध्यापिका ने सोचा कि कविता गा कर पढ़ी जाए। आधे से अधिक समय तो तान और अलाप लेने में ही लग गया और फिर जब उसने गाना प्रारम्भ किया तो आस-पास की कक्षाओं से कितने ही विद्यार्थी वहाँ आ पहुँचे और उस कक्षा के सामने अच्छा जमघट सा लग गया। काव्य वाचन का सब से प्रमुख गुण गेयता नहीं अपितु लयानुसार कविता का वाचन करना है।

काव्य-वाचन का दूसरा प्रमुख गुण है "तन्मयता"। अध्यापक वाचन के समय अपने "स्व" का विस्मरण कर कवि की आत्मा के साथ एक रूप हो जाए। बालक यही समझें कि स्वयं कवि ही अपने हृदय को खोलकर सामने रख रहा है। इस समरसता की प्राप्ति के लिए विशाल सहानुभूति, परिश्रम तथा पूर्व तैयारी की आवश्यकता है। जब अध्यापक कवि तथा कविता के साथ समरसता स्थापित कर सकेगा तब प्रेम—कविता पढ़ते समय, आर्तता तथा

मधुरता, वीररस की कविता पढ़ते समय आवेश तथा प्रखरता, भक्तिरस की कविता में आनन्द तथा शोक गीत पढ़ते समय, करुणा तथा हास्य रस की कविता में हँसी के फव्वारे छूटने लगेंगे। ऐसी स्थिति में ही कविता का वाचन श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

अध्यापक को विराम चिन्ह तथा छन्द शास्त्र आदि का भी ज्ञान होना चाहिए। कई बार हम देखते हैं कि केवल एक विराम चिन्ह में ही अर्थ को निर्माण करने तथा बदलने की सामर्थ्य है।

विद्यार्थियों को भी कविता के वाचन करने के पर्याप्त अवसर देने चाहिए। इस से कवि के भाव उनके अन्तःकरण में भी प्रतिबिंबित होंगे और शब्द तथा वाद के साहचर्य से वे पुनः सजीव होकर उनके सामने उपस्थित हो सकेंगे।

काव्य-शिक्षण-पद्धति

कविता के वाचन के सम्बन्ध में विचार कर लेने के पश्चात्, अब प्रश्न यह उठता है कि कविता किस ढंग से पढ़ाई जाए। किसी एक पद्धति को ले कर निर्णय देना अत्यन्त कठिन है। इस सम्बन्ध में अँग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वान, प्राध्यापक हैडो का कथन बड़ा मनोरंजक तथा विचारणीय है। उनके कथनानुसार काव्य-शिक्षण-पद्धति प्रणयाराधन के समान है। हरेक व्यक्ति का प्रणय करने का ढंग भिन्न भिन्न होता है। वह अपने निजी ढंग से अपने प्रेमी को प्राप्त करने का यत्न करता है। इस सम्बन्ध में कोई विशेष प्रणाली निश्चित नहीं की जा सकती। यही बात कविता के शिक्षण पर भी लागू होता है। कविता के प्रत्यक्ष अध्यापन के लिए कुछ सिद्धान्त निश्चित किए जा सकते हैं, परन्तु इन सिद्धांतों में कक्षा, कविता तथा अध्यापक की आवश्यकता के अनुसार हेर फेर होता रहेगा ?[1]

अनेकों शिक्षा शास्त्रियों का ऐसा मत है कि कविता का उत्तम वाचन हो जाना ही यथेष्ट है। अध्यापक को कविता पढ़ाने के गोरख धन्धे में फँसने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। कविता से परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् विद्यार्थियों को स्वयं उसका अभ्यास कर, कविता के सौन्दर्य तथा गुण दोष के सम्बन्ध में अपनी सम्मति स्थिर करने का अवसर मिलना चाहिए। इससे विद्यार्थी

1- Poetry teaching is like love making-each teacher must do in his own way.........that teaching poetry is like life, that we can lay down a few main principles that ought to be followed, but that method of applying these principles varies with the class, the poem and the teacher."

—Haddow : On the Teaching of Poetry.

स्वावलम्बी बन सकेंगे। उनके मत स्थिर कराने में अध्यापक को कोई सहायता नहीं देनी चाहिए। वास्तव में यह उन मत वालों की प्रतिक्रिया है जो कहते हैं कि कविता की एक-एक पंक्ति लेकर उसका अर्थ करवाया जाय।

यह दोनों मत ही दोष पूर्ण हैं। यह ठीक है कि विद्यार्थियों को स्वतः ही अपने मत स्थिर करने चाहिए परन्तु बालक क्योंकि अभी अपरिपक्व अवस्था में होते हैं इस लिए अध्यापक यदि थोड़ी सहायता कर देगा तो अनुचित न होगा। मार्ग दर्शन करना तो अध्यापक का काम है ही। जहाँ तक दूसरे मत का सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि किसी वस्तु का सौन्दर्य टुकड़े-टुकड़े करके नहीं देखा जा सकता। यदि हम ताजमहल के शिल्प सौन्दर्य को समझना चाहते हैं तो हमें सारी इमारत को एक साथ देखना होगा, उसके अलग अलग भाग करके नहीं। यही बात कविता पर भी लागू होती है।

काव्य-अध्यापन के सम्बन्ध में एक तीसरा मत और भी है। इस मत के अनुसार कविता पढ़ाई नहीं जा सकती। अध्यापक का कार्य तो केवल ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है, जिनके द्वारा कविता अपनी सब सम्भावनाओं के सहित, बालकों के सामने आ सके ?[1]

ऐसी स्थिति में कविता के प्रत्यक्ष अध्यापन के लिए क्या किया जाए ?

जब कविता का वाचन भली-भाँति हो चुके तो अध्यापक को कुछ क्षण रुक कर विद्यार्थियों को कविता के सम्बन्ध में सोचने का अवसर देना चाहिए। फिर उसे देखना चाहिए कि कविता में जो अत्यन्त महत्वपूर्ण भाव है; उसका आकलन, उन्होंने कहाँ तक किया है। जो महत्व शरीर में, प्राण-शक्ति का है, वही महत्त्व कविता में; केन्द्रीय भाव का है। अतः आदर्श तथा अनुकरणीय वाचन के पश्चात, हो चुकने दो तीन प्रश्न पूछ कर, अध्यापक यह मालूम करे कि विद्यार्थियों ने कविता के केन्द्रीय भाव को कहाँ तक समझा है। यदि उपयुक्त उत्तर न मिले तो फिर से कविता का सस्वर वाचन होना चाहिए। जब तक कविता का केन्द्रीय भाव, विद्यार्थियों को स्पष्ट न हो तब तक अध्यापक को अन्य प्रश्न नहीं पूछने चाहिए।

केन्द्रीय भाव के स्पष्ट हो चुकने पर अध्यापक को कविता के भिन्न-भिन्न पदों से ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जिन के द्वारा कविता के सौन्दर्य का उद्घाटन

1—Poetry cannot be taught. The teacher can only create conditions in which a poem may have its fullest possible significance for the pupils reading it.

Teaching Poetry—Compiled by the Society for Teachers of English.

हो सके। यह सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न केन्द्रीय भाव के पोषक होंगे। अध्यापक को इस बात का पूरा २ ध्यान रखना चाहिए कि उस के पास पैंतीस या चालीस मिनिट का सीमित समय है। अतः सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न एक तो संख्या में में बहुत अधिक न हों, दूसरे वे मुख्य विषय से सम्बन्धित हों अन्यथा रस भंग होने की सम्भावना है।

अब एक अन्य महत्वपूर्ण बात सामने आती है। क्या कविता का अध्यापन करते समय, अन्य कविताओं का भी उल्लेख करना चाहिए अथवा नहीं? इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार का तुलनात्मक अभ्यास बड़ा लाभप्रद है परन्तु यह सब मूल कविता के केन्द्रीय-भाव के पोषक रूप में ही होना चाहिए और इस का प्रयोग विद्यार्थियों के मन में काव्य-प्रेम को बढ़ाने के लिए ही करना चाहिए। काव्य के इस तुलनात्मक अध्ययन में विद्यार्थियों की आयु और धारण शक्ति पर भी उचित ध्यान रख कर, इसे छठी, सातवीं कक्षा से प्रारंभ करना चाहिए। अध्यापक तथा विद्यार्थी जिन जिन कविताओं का संकलन करेंगे, उस में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाएगा कि एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न कविताओं का संकलन किया जाए। प्रभात काल, संध्या काल, अरुणोदय, मातृप्रेम, आदि अनेकों ऐसे विषय हैं, जिन पर अनेकों कवियों की कविताएँ मिल जाएँगी।

कुछ अन्य महत्व-पूर्ण प्रश्न

अब कविता के अध्यापन सम्बन्धी कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पद विचार कर, इस विषय का उपसंहार किया जाएगा।

पहला प्रश्न यह है कि कविता के अध्यापन में, कवि के चरित्र का स्थान कहाँ तक है? क्या कवि के चरित्र की चर्चा करनी चाहिए। प्रस्तावना में इस प्रश्न पर विचार करते समय हम कह आए हैं कि विद्यार्थी यदि कविता को आनन्द प्रदान करने वाली पाएँगे तो स्वयं ही कवि के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ जानने को उत्सुक होंगे। छोटी कक्षाओं में यह बात चल सकती है परन्तु बड़ी कक्षाओं में एक कठिनाई है। मैट्रिक की परीक्षा में कवि-चरित्र पर प्रश्न पूछे जाते हैं, इसलिए अध्यापक उच्च-कक्षाओं में विद्यार्थियों को वैसी तैयारी करवाना चाहते हैं। इस कठिनाई का हल कैसे किया जाए? इस सम्बन्ध में दो बातें याद रखने योग्य हैं। पहली यह कि यदि कविता वस्तु-निष्ठ (objective) है तब तो कवि-चरित्र कथन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी बात यह कि यदि कविता आत्म-निष्ठ (subjective) है तब अवश्य कवि के चरित्र सम्बन्धी परिचय की आवश्यकता है। चरित्र कथन करते समय हम यह अवश्य

ध्यान में रखें कि कवि के जीवन, की सभी बातों को बालकों के सामने रखने की कोई आवश्यकता नहीं। केवल वे ही बातें सामने रखी जाएँ, जिनसे कविता के भावों को समझने में सहायता मिलें।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या विद्यार्थियों को यति, गति, मात्रा, गण, जाति अर्थात् छन्द शास्त्र का ज्ञान कराया जाए। इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि यह सब कुछ काव्य के बाहिरी आवरण हैं। यदि चाहें तो उच्च कक्षाओं में इसका प्रयोग किया जा सकता है परन्तु छोटी कक्षाओं में इसका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए। मुख्य वस्तु है नाद, मधुरता तथा तालबद्धता जिसे हम लय भी कह सकते हैं। यदि कविता का वाचन सस्वर तथा लयानुसार किया जाता है तो छात्रों के कानों को उसका उचित प्रशिक्षण मिल जाएगा और वे भी कविता का पाठ लयानुसार ही करने लगेंगे।

तीसरा महत्वपूर्ण प्रश्न जिस पर हम विचार करेंगे वह यह है कि क्या कविता का अध्यापन करते समय, कविता की आलोचना की जाए ? यदि आलोचना से हमारा तात्पर्य अर्थ को स्पष्ट करना, कविता के अन्दर आए हुए भावों का खुलासा करना है, तब तो किसी को भी इसमें आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु आज आलोचना का अर्थ ही बदल गया है। अब तो आलोचना में गुणों के साथ-साथ दोषों की भी चर्चा की जाती है। उच्च माध्यमिक कक्षाओं तक हमारा ध्येय विद्यार्थियों को आलोचक बनाना नहीं है अपितु उन्हें इस योग्य बनाना कि वे कविता के भावों को भली-भाँति समझ सके। यदि आलोचना से इस कार्य में सहायता मिलती हो तो अवश्य ही कविता की आलोचना की जाए अन्यथा इस विषय को कालेज के विद्यार्थियों के लिए छोड़ दिया जाए।

अन्त में, क्या बालकों को कविता मुखाग्र करने के लिए कहा जाए ? इस सम्बन्ध में विद्वानों का यह मत है कि यदि विद्यार्थियों को कविता अच्छी लगेगी तो वे स्वयं ही उसे गुनगुनाएंगे और मुखाग्र करेंगे। श्री जैगर के कथनानुसार कविता को मुखाग्र करना, काव्य के सौन्दर्य-विवेचन का अन्तिम सोपान है। "To learn a poem by heart is the last step in appreciating it."[1] यदि हम यह बात ध्यान में रखेंगे तो फिर हमें इस सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होगी।

काव्य में रुचि उत्पन्न करने के साधन

यदि कक्षा में कविता का अध्यापन ठीक ढंग से हुआ है तो विद्यार्थी अवश्य

1—J. H. Jagger—Poetry in School,

ही कविता में रुचि लेंगे। परन्तु फिर भी कुछ अन्य साधन ऐसे हैं, जिन के द्वारा विद्यार्थियों में काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है। इन में से कुछ मुख्य मुख्य साधन यह हैं—

(i) अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता
(ii) सुभाषित प्रतियोगिता
(iii) समस्यापूर्ति
(iv) कवि सम्मेलन
(v) कवि-जयन्ति
(vi) कवि-समादर

अब हम इन्हीं साधनों के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करेंगे।

अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता

आजकल पाठशालाओं में अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता बहुत प्रसिद्ध है। इस प्रतियोगिता में विद्यार्थियों के दो दल बना दिए जाते हैं। पहले दल का कोई सदस्य किसी कविता या पद का वाचन करता है। वाचन समाप्त हो जाने पर दूसरे दल का कोई सदस्य ऐसी कविता पढ़ता है जिसका प्रथम अक्षर पूर्व पठित कविता का अन्तिम अक्षर होता है। इस प्रकार दोनों दलों के लोग बराबर कविता पढ़ते चलते हैं। किसी समय यदि कोई दल, किसी अक्षर विशेष से कविता सुनाने में असमर्थ होता है, तब दूसरे दल वाले, उसी अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कविता सुनाकर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विद्यार्थी बिना प्रयास के ही कविताएँ कण्ठाग्र करने में उत्साह प्रकट करते हैं। परन्तु इस प्रतियोगिता से जितना लाभ होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। इसका कारण यह हैकि कविता के गुणों की ओर आवश्यक ध्यान न देकर, एक दल की कविता के अन्तिम अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कविता को दूसरे दल से कहलवा लेना ही यथेष्ट समझा जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक दोष और भी है। दो तीन विद्यार्थी कविताएँ याद करके सुनाते रहते हैं। दूसरे विद्यार्थियों को बहुत कम समय दिया जाता है। यह सर्वथा अनुचित है। यदि विद्यार्थियों को कविता के चुनाव में अध्यापक सहयोग दे, तो उन का बहुत लाभ हो सकता है।

सुभाषित प्रतियोगिता

अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता के उपरोक्त दोषों को देखते हुए अब पाठशालाओं में सुभाषित प्रतियोगिताएँ कराई जाने लगी हैं। यह अन्त्याक्षरी का ही सुगम परन्तु अधिक लाभदायक रूप है। इस में बालकों को अधिक स्वतन्त्रता मिलती है।

कवि समादर

कभी कभी पाठशालाओं में किसी कवि विशेष को बुलाकर, उसकी कवितानों का व्याख्यान सहित पाठ कराना चाहिए । इसके द्वारा भी छात्र और छात्राएँ कविता में रस लेने लगेंगे ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What is poetry ? Why and how would you encourage its appreciation among the school children of different ages ? Illustrate from 'Hindi'.

(2) How does the method of teaching poetry in Hindi differ from that of prose ? Discuss fully.

(3) How far is the teaching of poetry desirable in school ? What form of of Hindi poetry should be taugt in schools ?

(4) Describe the various steps in a poetry lesson.

(५) विद्यार्थियों में काव्य के प्रति रुचि जाग्रत करने के लिए आप क्या करेंगे ?

(६) कविता की परिभाषा करते हुए, कविता और पद्य तथा पद्य और गद्य में अन्तर स्पष्ट करो ।

(७) कविता के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए, उसके भिन्न भिन्न सोपानों का उल्लेख कीजिए ।

अध्याय ११

खेल के द्वारा भाषा की शिक्षा

खेल एक ऐसा विषय है जो सभी बालकों तथा अधिकांश बड़ों को भी अच्छा लगता है। हम छोटे-छोटे बालकों को खेलते देखते हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन्हें खेल के अतिरिक्त और कुछ प्रिय नहीं। इसी प्रकार बड़े बूढ़े लोग भी खेल में बहुत आनन्द उठाते हैं। मनुष्यों की कौन कहे, पशु-पक्षियों तक को खेल बहुत अच्छा लगता है। हम प्रायः कबूतरों तथा कुत्तों आदि को आपस में खेलता हुआ देखते हैं।

यदि यह प्रश्न किया जाए कि हम क्यों खेलते हैं, तो इसका उत्तर देना अत्यन्त कठिन होगा। खेल की ठीक-ठीक परिभाषा करना सम्भव नहीं। परन्तु फिर भी बालकों की शिक्षा की दृष्टि से यह जानना आवश्यक हो जाता है कि हम क्यों खेलते हैं? यह जानकारी प्राप्त हो जाने पर ही हम खेल तथा खेल सम्बन्धी क्रियाओं का ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकेंगे।

खेल का वैज्ञानिक विवेचन

खेल के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने, भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनमें से कुछ प्रसिद्ध सिद्धान्त नीचे दिए जा रहे हैं:—

(क) अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक डा० शिलर (Schiller) हैं। परन्तु कुछ समय के पश्चात हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार हम में से प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति द्वारा

शक्ति प्राप्त होती है। उस शक्ति का बहुत सा अंश तो जीविकोपार्जन करने में तथा विपरीत परिस्थितियों से लड़ने में खर्च हो जाता है। जो शक्ति बच जाती है और किसी काम में नहीं आ सकती, उसका विकास खेलों के द्वारा किया जाता है। स्पेंसर ने खेल की तुलना इंजन के सेफ्टी वाल्व (Safety valve) से की है। जिस प्रकार इंजन की अतिरिक्त भाप, सेफ्टी वाल्व के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है, उसी प्रकार मनुष्य की अतिरिक्त शक्ति का व्यय खेल के द्वारा होता है।

(ख) शक्ति-वर्द्धन का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पहले पहल लार्ड किम्स (Lord Kims) ने किया। कालान्तर में पैट्रिक (Patrick) ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया। यह सिद्धान्त पहले सिद्धान्त के बिल्कुल विपरीत है। इस सिद्धान्त के अनुसार खेल के द्वारा अतिरिक्त शक्ति का व्यय नहीं अपितु, खोई शक्ति का पुर्ननिर्माण होता है। श्री पैट्रिक का कथन है कि वर्तमान सभ्यता में रह कर मनुष्य को ऐसे ऐसे थका देने वाले कार्य करने पड़ते हैं, कि उसमें कोई शक्ति नहीं रह पातीं। खेल के द्वारा मनुष्य, इस खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करते हैं।

(ग) भावी जीवन की तैयारी का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रवर्तक कार्ल ग्रूस (Karl Groos) को माना जा सकता है। जानवरों पर परीक्षण करने के पश्चात कार्ल ग्रूस इस परिणाम पर पहुँचा कि जानवरों के समान बालक तथा बालिकायें भी खेलों के द्वारा भावी जीवन की तैयारी करते हैं। जिस प्रकार बिल्ली के बच्चे खेल-खेल में शिकार करना सीखते हैं, उसी प्रकार मनुष्य खेलों के द्वारा वे बातें सीखते हैं, जो उनके आगामी जीवन में काम आएँगी। हम अक्सर देखा करते हैं कि बालिकाएँ गुड्डे गुड़ियों के कपड़े सीती हैं तथा उनका विवाह करती हैं। वे मिट्टी से खेलती हैं और खेल खेल में ही मिट्टी का चकला बेलन बना कर, मिट्टी की ही रोटियाँ सेकती हैं। वैलनटाईन (Valentine) के विचार में, इस सिद्धान्त के अनुसार बालक इसलिए नहीं खेलता कि वह छोटा होता है, अपितु वह इसलिए छोटा होता है ताकि खेल सके। उन्हीं के शब्दों में :—

"A child does not play because it is young, but is young in order that it may play."

Valesytine : "Psychology and its bearing on Education", p. 183.

(घ) पुनरावर्तन का सिद्धान्त

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टेनले हाल (Stanley Hall) ने खेल के सम्बन्ध में एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि खेल में बालक जातीय जीवन के अनुभवों का पुनरावर्तन करता है। इसी सिद्धान्त पर अपने विचार व्यक्त करते हुए रॉस (Ross) ने कहा है कि बालकों के बहुत से खेल जैसे छिपना और खोजना (Hide and Seek), मछली मारना, पत्थर फेंकना, आखेट करना आदि इसी सिद्धान्त की ओर संकेत करते हैं।

(च) रेचन का सिद्धान्त

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) ने पहले पहल रेचन (Catharsis) शब्द का प्रयोग किया था। इस सिद्धान्त के अनुयायियों का कथन है कि बालकों की जिन प्रवृत्तियों का दमन किया जाता है, उनका निकास तथा प्रकाशन खेलों के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इस सम्बन्ध में इंगलैंड के प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री टी० पी० नन (T. P. Nunn) का विचार है कि "मनुष्य दमन करने की पुरानी आदत को नहीं छोड़ सकता, परन्तु खेल के द्वारा इस दोष को दूर किया जा सकता है।" उन्हीं के शब्दों में :—

"Men cannot shed altogether the ancient tendency to cruelty and vice but play is at once a means by which the mischief may be taken out of them."

खेल की विशेषताएँ

उपरोक्त सिद्धान्तों के होते हुए भी, खेल क्या है, यह ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं होता। इसलिए हमें खेल की विशेषताओं से परिचित होना होगा ताकि हम खेल के अर्थ को ठीक प्रकार से समझ सकें।

श्री राईबर्न (Ryburn) ने खेल की नीचे लिखी विशेषताओं का उल्लेख किया है :—

(i) **उद्देश्यहीनता:**—बालक जब कोई खेल खेलते हैं तो उनके सामने किसी प्रकार का कोई उद्देश्य नहीं होता। वे इसलिए खेलते हैं, क्योंकि वे खेलना चाहते हैं। इनके लिए खेल का और कोई प्रयोजन नहीं। खेल की क्रिया आत्म स्फूर्ति से उत्पन्न होती है।

(ii) **स्वतन्त्र क्रिया :**—बालकों के लिए खेल एक स्वतन्त्र क्रिया है, अर्थात् वे खेलने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं। जब तक वे चाहते हैं, तभी तक वे खेलते है। इच्छा न रहने पर वे खेल बन्द कर देते हैं। वे जितना समय चाहें खेल सकते हैं। यह उनके ऊपर निर्भर है कि थोड़ा समय खेलें, अथवा बहुत समय। खेल के समय, उनके सामने कोई सीमा रेखा नहीं होती।

(iii) **मनोरंजकता** :—खेल की सबसे बड़ी विशेषता, उसकी मनोरंजकता है। खेल के द्वारा हमें असीम आनन्द की प्राप्ति होती है। खेल का यदि कोई उद्देश्य हो सकता है, तो वह आनन्द की प्राप्ति ही। जो खेल मनोरंजक न होगा अथवा जिसके द्वारा हमें आनन्द की प्राप्ति न होगी, उसे हम खेल नहीं कह सकते।

(v) **कल्पना की प्रबलता** :—खेल की एक विशेषता कल्पना की प्रबलता है। बालक अपने खेलों में कल्पना का सहारा लेते हैं। कभी वे छड़ी को घोड़ा समझ कर दौड़ाते हैं तो कभी एक दूसरे की कमर पकड़ कर रेलगाड़ी और इंजन का अभिनय करते हैं। इस प्रकार बालक अपने खेलों में कल्पना का भी प्रयोग करते हैं।

(v) **सामूहिकता की भावना** :—खेलों के द्वारा बालकों की सामूहिक भावना का भी विकास होता है। खेल के द्वारा उन्हें ऐसे अवसर प्रदान किए जाते हैं जब कि वे एक दूसरे के साथ मिल कर खेल सकें। जब बालक आपस में एक दूसरे के साथ मिल कर खेलते हैं, तो उनमें सहयोग का भावना पैदा होती है। वे सीखते हैं कि समुदाय (group) में किस प्रकार रहना चाहिए। इस प्रकार धीरे धीरे उनका सामाजिक जीवन विकसित होता है।

(vi) **आत्म गौरव की भावना** :—खेलों के द्वारा बालकों के आत्म गौरव की भावना सन्तुष्ट होती है। एक बार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वैलनटाईन (Valentine) ने अपने दस वर्ष के पुत्र से पूछा कि वह खेलों में विद्यालय के अध्यापक का अभिनय क्यों करता है। बालक का उत्तर था कि इसके द्वारा वह अन्य बालकों पर हुक्म चला सकता है। इसीलिए वैलनटाईन महोदय ने एक स्थान पर कहा है :—

"Make believe play is no doubt often a means by which a child can satisfy his self-assertive tendencies without the hinderance which reality would impose upon him."

अर्थात् बिना किसी प्रकार की बाधा के, बालक खेल के द्वारा अपनी आत्म-गौरव की भावना को सन्तुष्ट कर सकता है।

खेल की आदर्श परिभाषा

खेल के सम्बन्ध में इतना विवेचन कर चुकने के पश्चात, अब खेल की परिभाषा भली भाँति कर सकते हैं। खेल की सबसे अच्छी परिभाषा ग्यूलिक (Gulick) ने की है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "फ़िलासफ़ी आफ़ प्ले" (Philosophy of Play) में वे लिखते हैं कि:—

"Play is what we do when we are free to do what we will."

अर्थात जो कार्य हम अपनी इच्छा से, स्वतन्त्रता पूर्वक करें, वही खेल है। इस परिभाषा में खेलों की सभी विशेषताएं आ जाती हैं।

पाठशालाओं में खेल का महत्व

पाठशालाओं में खेलों को समुचित स्थान देने से निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं :—

१—खेलों तथा खेल सम्बन्धी क्रियाओं के द्वारा विद्यार्थियों में कुशलता (Skill) का विकास होता है। खेलों के द्वारा विद्यार्थियों को ऐसे अवसर प्रदान किए जाते हैं जिनके द्वारा वे अपने कुशलता सम्बन्धी गुणों का वर्द्धन कर सकते हैं।

२—खेल तथा खेल सम्बन्धी क्रियाओं के द्वारा विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहायता मिलती है। खेलों के द्वारा बालकों के अनुभवों की वृद्धि होती है। खेल खेल में ही वे अपनी कितनी ही समस्याओं को हल करते हैं।

३—खेल एक बड़े भारी मनोवैज्ञानिक तथ्य की पूर्ति करता है और वह मनोवैज्ञानिक तथ्य है "क्रिया द्वारा सीखना" (Learning by doing)। जब बालक किसी काम को करके सीखते हैं, तो उनका ज्ञान सुदृढ़ हो जाता है, और वे सीखी हुई बात को नहीं भूलते।

४—खेलों के द्वारा बालकों के शारीरिक विकास में सहायता मिलती है।

५—खेलों के द्वारा बालकों में सामाजिक भावना का विकास होता है। वे एक दूसरे के साथ सहयोग करना सीखते हैं।

६—खेलों के द्वारा बालकों की नेतृत्व शक्ति विकसित होती है। खेलों में ऐसे कई अवसर आते हैं, जब कि बालक को नेता के रूप में कार्य करना पड़ता है।

७—खेलों के द्वारा बालक अनुशासन का पाठ पढ़ते हैं। कोई भी खेल तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक खेलने वाले नियमों का पालन नहीं करेंगे। इसलिए खेलते समय बालकों को अनुशासन में रहना पड़ता है। उन्हें अनुशासन में रहने की आदत हो जाती है।

८—खेलों के द्वारा विद्यार्थियों का मानसिक तनाव दूर होता है और उन की भाव-प्रेरक शक्ति को प्रकाशन का उचित अवसर मिल जाता है।

९—खेलों तथा खेल सम्बन्धी क्रियाओं के द्वारा बालकों तथा बालिकाओं में आत्म-विश्वास की भावना का विकास होता है। खेलों में सफलता मिलने पर, उन्हें इस बात का विश्वास हो जाता है कि वे जीवन में भी सफ़ल होंगे।

शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में खेलों का प्रयोग

श्री राईबर्न के मतानुसार चार ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा खेलों का प्रयोग पाठशालाओं में तथा पाठशाला सम्बन्धी कार्यों में किया जा सकता है। वे चार साधन यह हैं :—

१—शिक्षा सम्बन्धी खेल

२—ऐसी क्रियाएं (prejects) जिनमें खेल सम्बन्धी भावना पाई जाए।

३—अनेक प्रकार की रचनात्मक क्रियाएं।

४—नाटकीकरण (Dramatics)

इन सभी साधनों का प्रयोग, पाठशाला सम्बन्धी कार्यक्रमों में प्रथम कक्षा से लेकर उच्च कक्षा तक किया जा सकता है।

अब उपरोक्त चारों साधनों का वर्णन कुछ विस्तार से किया जाएगा और उनको स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण भी दिए जाएंगे।

शिक्षा सम्बन्धी खेल

शैक्षणिक खेलों का महत्व निम्नलिखित कारणों से हैं :—

(क) शिक्षा को रोचक बनाने के लिए।

(ख) विविधता (Variety) के लिए।

(ग) बालकों को इस बात में सहायता देना कि वे खेल के द्वारा सीखें।

शैक्षणिक खेल साधन हैं, साध्य नहीं। वे केवल खेल ही नहीं हैं। कक्षा में जब हम उनका प्रयोग करते हैं, तो हमारे सामने उपरोक्त तीन प्रयोजन होते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि अध्यापक उनका प्रयोग प्रत्येक पाठ में करे। आवश्यकता पड़ने पर उनका प्रयोग कभी-कभी करना चाहिए जिससे कि बालक अपने कार्य को खेल की भावना से कर सकें।

खेल का चुनाव करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि बालक उसके द्वारा कुछ न कुछ सीखें। खेल के द्वारा उनके शिक्षा सम्बन्धी कार्य में कुछ सहायता मिलनी चाहिए। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि खेल के द्वारा, प्रत्येक बार, बालक कुछ न कुछ नई बात ही सीखेंगे। वे पुरानी सीखी हुई बातों का अभ्यास भी कर सकते हैं।

खेल ऐसा होना चाहिए जिस में सभी बालक भाग ले सकें। कक्षा में यदि विद्यार्थियों की संख्या अधिक हो तो उसे दो या तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

कुछ खेलों का प्रयोग प्राथमिक कक्षाओं के बालकों के लिए ही किया जा सकता है। बड़ी कक्षाओं के बालक, इन खेलों में कोई रुचि नहीं लेंगे।

परन्तु कई ऐसे खेलों का आयोजन किया जा सकता है जो सभी प्रकार के बालकों के लिए उपयुक्त हों। ऐसे खेलों को विद्यार्थियों की अवस्था के अनुसार सरल या कठिन बनाया जा सकता है।

बहुत से खेल ऐसे होते हैं, जिनमें उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे कार्ड इत्यादि। इन उपकरणों को धीरे-धीरे पाठशालाओं में ही तैयार करवाया जा सकता है।

हिन्दी भाषा की शिक्षा के लिए कुछ खेल

१—बालकों को एक वृत्त में बिठा दिया जाता है। पहला बालक अपने साथ वाले बालक से कहता है, "मेरे पास एक डिब्बा है।" दूसरा बालक पूछेगा, "इस डिब्बे में क्या है ?" पहला कहेगा, "इस डिब्बे में "क" है।" अब दूसरा बालक एक ऐसी वस्तु का नाम लेगा, जिसका प्रारम्भ "क" अक्षर से होगा। अब दूसरा बालक तीसरे बालक से कहेगा, "मेरे पास एक डिब्बा है।" तीसरा बालक पूछेगा, "इस डिब्बे में क्या है ?" दूसरा बालक उत्तर देगा, "इस डिब्बे में "ख" है।" अब तीसरा बालक एक ऐसी वस्तु का नाम लेगा जिसका प्रारम्भ "ख" अक्षर से हो। इस प्रकार यह खेल चलता रहेगा और बारी बारी से वर्णमाला के सभी अक्षरों को लिया जाएगा।

२—कार्डों के दो सैट तैयार किए जाते हैं। पहले प्रकार के कार्डों में कुछ व्यवसायों से सम्बन्धित शब्द होते हैं जैसे लुहार, बढ़ई, दर्जी, धोबी, मोटर डराईवर, टाँगे वाला, किसान इत्यादि। दूसरे प्रकार के कार्डों में इनसे सम्बन्धित चित्र बने होंगे, जैसे लुहार का चित्र, बढ़ई का चित्र, दर्जी का चित्र, धोबी का चित्र, मोटर डराईवर का चित्र, टाँगे वाले का चित्र, किसान का चित्र इत्यादि। अध्यापक चित्रों वाले कार्ड अपने पास रखता है और शब्दों वाले कार्ड आपस में मिलाकर एक सन्दूक में डाल दिए जाते हैं। कक्षा को दो दलों में विभाजित कर दिया जाता है। अब अध्यापक एक चित्र वाला कार्ड दिखाता है। पहले दल का पहला बालक, उस चित्र से सम्बन्धित शब्द वाले कार्ड को सन्दूक में से खोजता है और दूसरे दल के पहले बालक को दे देता है। वह इस शब्द को श्यामपट पर लिखता है। इस प्रकार यह खेल चलता रहता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए, सरल या कठिन शैक्षणिक खेलों का आयोजन किया जा सकता है ?

रचनात्मक क्रियाओं द्वारा भाषा की शिक्षा

रचनात्मक क्रियाओं को हम खेल सम्बन्धी क्रियाएँ कह सकते हैं। इस

सम्बन्ध में हमें सबसे पहले खेल और कार्य में अन्तर समझ लेना होगा। ऐसा होने पर ही हम भाषा की शिक्षा में रचनात्मक क्रियाओं का प्रयोग ठीक-ठीक प्रकार से कर सकेंगे।

खेल और कार्य में अन्तर

मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार, हम खेल और कार्य में निम्नलिखित अन्तर कर सकते हैं :—

१—काम करते समय हमारा उद्देश्य काम के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है जैसे अध्यापक पढ़ाने का कार्य करता है। अब उसका उद्देश्य केवल पढ़ाना ही न होकर जीविकोपार्जन भी होता है। परन्तु यह बात खेल में नहीं। खेलते समय, खेल के अतिरिक्त, उसका और कोई उद्देश्य नहीं होता।

२—खेलने में हम पूरे स्वतन्त्र होते हैं। यदि हम किसी दिन न भी खेलें तो भी कोई हानि नहीं। परन्तु काम करने अथवा न करने में हम स्वतन्त्र नहीं। प्रत्येक दशा में हमें काम करना ही पड़ता है।

३—प्रत्येक खेल के द्वारा हमें आनन्द की प्राप्ति होती है। परन्तु काम के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं।

अन्त में हम कह सकते हैं कि जिस कार्य के द्वारा हमें आनन्द की प्राप्ति होती है, वह हमारे लिए खेल ही है और जिस खेल से हमारा मनोरंजन न हो, वह काम से भी अधिक अरुचिकर कार्य है। इसीलिए तो कहा गया है कि खेल और काम में केवल दृष्टिकोण का ही अन्तर है।

अब हम देखेंगे कि रचनात्मक कार्यों द्वारा भाषा की शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है :—

प्राथमिक कक्षाएँ :

प्राथमिक कक्षाओं में नीचे लिखे रचनात्मक कार्यों का आयोजन किया जा सकता है :

(i) रूप रेखा के आधार पर छोटी-छोटी कहानियों का निर्माण करवाना।

(ii) चित्रों के आधार पर कहानी बनवाना।

(iii) सुनी हुई कहानियों को फिर से सुनाने के लिए कहना।

(iv) यदि वे "अध्यापक" "राजा" या "रुपया" होते तो क्या करते ?

(v) वाक्य सम्बन्धी खेल। इस खेल में बालक वृत्त में बिठला दिए जाते हैं। अध्यापक उन्हें बतलाता है कि वे सब मिलकर एक कहानी बनाएँगे। फिर वह एक वाक्य से प्रारम्भ करता है। "एक बार एक अध्यापक पाठशाला से अपने घर को जा रहा था।" अब वह पहले बालक को दूसरा वाक्य जोड़ने

के लिए कहता है । इस प्रकार प्रत्येक बालक एक एक वाक्य जोड़ता है और कहानी बनती जाती है ? यदि कहानी जल्दी पूरी हो जाए तो इसी प्रकार की दूसरी कहानी शुरू की जा सकती है ।

माध्यमिक कक्षाएँ

माध्यमिक कक्षाओं के लिए नीचे लिए रचनात्मक कार्य उपयुक्त हो सकते हैं :—

(क) किसी एक चित्र के आधार पर कहानी बनाने के किए कहना ।

(क) विद्यार्थियों को किसी घटना विशेष के आधार पर कहानी बनाने के लिए कहना ।

(ग) विद्यार्थियों से काल्पनिक वार्तालाप करवाना जैसे गाय और ग्वाले का वार्तालाप, मोटर और रिकशे का वार्तालाप, नगर की बिल्ली और गाँव की बिल्ली का वार्तालाप ।

(घ) विद्यार्थियों को उनके स्वप्नों के आधार कहानी बनाने के लिए कहना ।

(च) बालक जो कहानियाँ पढ़ चुके हैं, उन्हें फिर से सुनना । परन्तु अब कहानी का कोई पात्र अपनी कथा कहेगा ।

(छ) विद्यार्थियों को घटनाओं तथा समारोहों का वर्णन करने के लिए कहना ।

उच्च कक्षाएँ

उच्च कक्षाओं में विद्यार्थियों से नीचे लिखे कार्य करवाये जा सकते हैं ।

(i) किसी भावी घटना का वर्णन करने के लिए कहना जैसे भारत का चीन से अपनी भूमि वापस लेने के लिए युद्ध ।

(ii) काल्पनिक भेंट (interview) का वर्णन करने के लिए कहना जैसे पराजित होने के पश्चात् हिटलर से भेंट, भूतपूर्व रूसी प्रधान मन्त्र बलगानिन से भेंट कि कैसे उसे पदच्युत किया गया ।

(iii) विद्यार्थियों को मौलिक कहानियाँ लिखने के लिए प्रोत्साहन देना । इसके लिए कभी कभी उन्हें कुछ शब्द दिए जा सकते हैं जिनका प्रयोग वे कहानी में करेंगे और कभीं वे अपने स्वप्न आदि को ही कहानी का आधार बना सकते हैं ।

(iv) ऐतिहासिक तथा इसी प्रकार की अन्य कहानियों को संवादों के रूपों में लिखवाना ।

(v) ऐसे चरित्रों के काल्पनिक वार्तालापों का वर्णन करवाना जैसे महा-

राणा प्रताप और अकबर का वार्तालाप, छत्रसाल और औरंगजेब का वार्तालाप, सुभाषचन्द्र वसु और चर्चिल का वार्तालाप।

(vi) विद्यार्थियों को मौलिक कविताएँ लिखने के लिए प्रोत्साहन देना।

(vii) उच्च कक्षाओं में हस्तलिखित पत्रिकाएँ भी प्रारम्भ करवाई जा सकती हैं।

नाटकीकरण

नाटकीकरण के द्वारा हम हिन्दी भाषा के शिक्षण में क्या सहायता ले सकते हैं, इस सम्बन्ध में पिछले एक अध्याय में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) खेल का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए, खेल की विशेषताएँ लिखो। खेल की आदर्श परिभाषा क्या हो सकती है ?

(२) पाठशालाओं में खेलों का क्या महत्व हैं ? शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में खेलों का प्रयोग कैसे किया जासकता है ?

(३) कुछ ऐसे खेल बताओ जिन के द्वारा, बालकों को भाषा की शिक्षा दी जा सके।

(४) बालकों की शिक्षा में रचनात्मक कार्यों का क्या महत्व है ? भिन्न-भिन्न कक्षाओं में कौन कौन सा रचनात्मक कार्य करवाया जा सकता है ?

(५) भाषा के शिक्षण में नाटकों से किस प्रकार सहायता ली जा सकती है, विस्तार से लिखो।

(६) What do you understad by the play-way method in teaching ? How would you utilige this method in the teaching of the mother tongue to primary school childoen ? Give examples.

अध्याय १२

भाषा की शिक्षा और सहायक साधन

भाषा की शिक्षा को प्रभावशाली बनाने के लिए, अनेकों सहायक साधनों का प्रयोग किया जाता है। इन साधनों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

(i) मौखिक साधन
(ii) दृश्य-श्रव्य साधन

मौखिक साधनों में मुख्य रूप से प्रश्नोत्तर आते हैं और दृश्य-श्रव्य साधनों में श्यामपट, फैल्ट बोर्ड, चित्र, एपीडायस कोप, चल चित्र, रेडियो, टेलीविजन, ग्रामोफोन तथा टेप रिकार्डर आदि को लिया जा सकता है।

भाषा शिक्षण में सहायक साधनों की आवश्यकता

यह विज्ञान का युग है। जहाँ विज्ञान ने सामाजिक जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों पर अपना प्रभाव डाला है, वहाँ शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। अब अध्यापक को शिक्षण कार्य में सहायता देने के लिए, विज्ञान ने अनेकों सहायक साधनों को उपलब्ध कर दिया है। इन सहायक साधनों में वे सब साधन, प्रणालियाँ तथा उपकरण आ जाएंगे जिनकी सहायता से अध्यापक बालकों की नेत्र और कर्ण इन्द्रियों को प्रभावित करता है। ऐसा कहा जाता है कि आज जो भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक दूसरे को परस्पर नहीं समझते, उसके दो प्रमुख कारण हैं—

(i) वे दूसरे पक्ष की बात को नहीं सुनते।
(ii) वक्ता द्वारा कहे हुए शब्दों का वे भिन्न अर्थ लगाते हैं। सहायक

साधनों द्वारा हम प्रारम्भ से बालकों को इस बात का प्रशिक्षण देते हैं कि वक्ता द्वारा कहे गये शब्दों को ठीक प्रकार से सुनें और उसका ठीक ठीक अर्थ लगाएँ। ऐसा होने पर वे ज्ञान को ठीक प्रकार से ग्रहण करेंगे। इस दृष्टि से देखा जाए तो सहायक साधन अध्यापक की इस बात में सहायता करते हैं कि वह अपना कार्य अधिक कुशलता से कर सके।

प्रयोग न होने के कारण

शिक्षा के क्षेत्र में, सहायक साधनों की इतनी उपयोगिता होने पर भी, इनका यथोचित प्रयोग नहीं हो रहा। अनेकों शिक्षा अधिकारी तथा अध्यापक भी इन साधनों का प्रयोग करने से हिचकचाते हैं। अभी भी सन्देह बना हुआ है। इस सन्देह के क्या कारण हैं ?

सन्देह का एक कारण है मशीनों के प्रति अनास्था की भावना चाहे उस मशीन का प्रयोग करना कितना सरल ही क्यों न हो जैसे कि टेप रिकार्डर।

अध्यापक लोग इस बात से घबराते हैं कि कहीं यह उपकरण उनका स्थान न ले लें। विशेष रूप से वे अध्यापक जिनका भाषा सम्बन्धी उच्चारण अशुद्ध है इनके प्रयोग से और भी डरते हैं। वे समझते हैं कि यदि भाषा-शिक्षण में फिल्म या टेप रिकार्डर आदि की सहायता ली गई तो उनकी गलती पकड़ ली जायगी।

कुछ लोगों को इस बात का डर भी है कि इन साधनों को जुटाने में धन का अधिक खर्च होगा।

उपरोक्त कारणों को देखने से प्रतीत होता है कि भ्रांति का मुख्य कारण है, उन उपकरणों को साध्य समझ लेना। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह उपकरण तो साधन मात्र हैं, जिनका प्रयोजन अध्यापन कार्य में सहायता करना है। अध्यापक को पता होना चाहिए कि किस स्थान पर किस उपकरण का प्रयोग किया जाए। जहाँ तक धन के खर्च का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि अनेकों ऐसे उपकरण हैं, जहाँ धन का खर्च बहुत कम होता है।

अब हम भिन्न भिन्न दृश्य-श्रव्य उपकरणों का वर्णन करेंगे और देखेंगे कि उनका प्रयोग भाषा-शिक्षण में किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रश्नों का प्रयोग

भाषा की शिक्षा में प्रश्न एक महत्वपूर्ण स्थान रखते है। प्रश्नों के द्वारा ही, अध्यापक विद्यार्थियों के सम्पर्क में आता है। सैलमन के मतानुसार जो व्यक्ति ठीक ढंग से प्रश्न करना नहीं जानता, वह कभी भी अच्छा अध्यापक नहीं हो सकता। रेमन्ड के विचार में प्रत्येक अध्यापक की यही सब से बड़ी

आकांक्षा रहती है कि प्रश्न करने की उत्तम शैली का विकास किया जाए। एक ओर शिक्षा शास्त्रों का ऐसा कथन है कि जो अध्यापक "क्या", "क्यों", "कैसे"; "कब" "कौन" तथा "कहाँ" इन छः सहयोगियों का उत्तम सहयोग प्राप्त करता है, वही अच्छा अध्यापक है।

प्रश्न क्यों पूछे जाते हैं

भाषा की शिक्षा में प्रश्न पूछने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :—

१—इस बात का परिचय प्राप्त करना कि विद्यार्थियों का पूर्व ज्ञान क्या है ? पूर्वज्ञान के आधार पर ही नवीन ज्ञान दिया जाता है।

२—प्रश्नों के द्वारा यह देखा जाता है कि विद्यार्थी पाठ को समझ भी रहे हैं या नहीं।

३—प्रश्नों के द्वारा हम इस बात की जाँच करते हैं कि बालक अर्जित ज्ञान को कहाँ तक अभिव्यक्त कर सकते हैं।

४—प्रश्नों के द्वारा बालकों की कल्पनाओं तथा विचारों को उत्तेजित किया जाता है।

५—प्रश्नों के द्वारा विद्यार्थियों की कठिनाइयों और शंकाओं का ज्ञान हो जाता है। फिर अध्यापक उनको दूर करने का प्रयास कर सकता है।

६—प्रश्नों के द्वारा पठित अंश की आवृत्ति की जा सकती है ताकि अर्जित ज्ञान को बालकों के मस्तिष्क में स्थिर किया जा सके।

प्रश्नों का वर्गीकरण

भाषा-शिक्षण के आधार पर प्रश्नों के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं :—

(i) प्रस्तावना के प्रश्न
(ii) बोध परीक्षा प्रश्न
(iii) विचार-विश्लेषण प्रश्न
(iv) आवृत्यात्मक प्रश्न

(i) प्रस्तावना के प्रश्न

यह प्रश्न पाठ प्रारम्भ करने से पूर्व पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के द्वारा बालकों के पूर्व ज्ञान का परिचय प्राप्त किया जाता है तथा नवीन ज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की जाती है। ऐसे प्रश्नों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ii) बोध परीक्षा प्रश्न

यह प्रश्न वाचन के पश्चात् तथा आत्मीकरण से पहले पूछने चाहिए। इन

प्रश्नों के द्वारा यह देखा जाता है कि वाचन हो चुकने के पश्चात छात्रों तथा छात्राओं ने पठित अंश के भाव को कहाँ तक ग्रहण किया है। बोध परीक्षा प्रश्न दो-तीन से अधिक न हो।

(iii) विचार विश्लेषण प्रश्न

यह प्रश्न आत्मीकरण या विस्तृत व्याख्या हो चुकने पर ही पूछे जाते हैं। यह प्रश्न सरल, स्पष्ट तथा क्रमिक होने चाहिए ताकि इन के द्वारा पठित अंश का पूरा पूरा ब्यौरा निकलवाया जा सके।

(iv) आवृत्यात्मक प्रश्न

यह प्रश्न पाठ की समाप्ति पर पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों के द्वारा अध्यापक पाठ की मुख्य मुख्य बातों की आवृत्ति करा देता है। साथ ही साथ इनके द्वारा अध्यापक को पाठ की सफलता अथवा असफलता का ज्ञान हो जाता है।

अच्छे प्रश्नों की विशेषताएं

प्रश्नों को पूछते समय, निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाए—

(i) प्रश्न निश्चित होने चाहिएं।

(ii) प्रश्न प्रसंग के अनुसार होने चाहिएं।

(iii) प्रश्न न बहुत सरल हों और न बहुत कठिन हों।

(iv) प्रश्नों का उत्तर उन में ही निहित नहीं होना चाहिए।

(v) प्रश्न बहुत लम्बे न हों।

(vi) प्रश्नों को दोहराया न जाए।

पाठ्यपुस्तक

शिक्षा के क्षेत्र में यह सब से पुराना उपकरण है। यह दृश्य उपकरण है। बहुत समय तक तो अध्यापक के पास केवल यही एक साधन था, जिसके द्वारा वह जाति के पूर्व-संचित अनुभवों को बालकों तक पहुँचाता था। पाठ्य-पुस्तक एक विशेष कक्षा के लिए बनी होती है और उसमें वे सभी बातें होती हैं जो उस विशेष कक्षा के लिए आवश्यक हैं। जिस प्रकार एक डाक्टर भिन्न भिन्न रोगियों के लिए, भिन्न भिन्न औषधियाँ निर्धारित करता है, उसी प्रकार एक कुशल अध्यापक पाठ्य-पुस्तक से वे सभी बातें चुन लेता है जो उस की कक्षा के लिए नितान्त आवश्यक हैं। इसी के अनुसार वह अपनी कक्षा को तैयार करेगा। उसे मालूम होना चाहिए कि वर्ष भर में वह कितना पढ़ा सकता है, प्रत्येक पाठ में वह क्या पढ़ाएगा और कैसे पढ़ाएगा। इस कार्य की सिद्धि के लिए वह भिन्न-भिन्न दृश्य-श्रव्य उपकरणों की सहायता ले सकता है।

श्यामपट

शिशु (नर्सरी) शालाओं को छोड़कर सभी जगह इसका बोलबाला है। हम किसी ऐसे कक्षागृह की कल्पना ही नहीं कर सकते, जहाँ श्यामपट न हो। यूरोप आदि देशों में कहीं कहीं इसके विरुद्ध यह शिकायत की जाती है कि इस का रंग काला है जिससे कोई प्रेरणा प्राप्त नहीं होती। इसलिए फ्रांस आदि देशों में हरे रंग के बोर्ड प्रयोग में लाये जाने लगे हैं, जिन पर पीली चाक से लिखा जाता है।

अब भी अनेकों ऐसे भाषा शिक्षक हैं, जो श्यामपट का प्रयोग करना नहीं जानते। संक्षेप में इस के प्रयोग के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है, कि जिन शब्दों तथा वाक्यांशों को स्पष्ट करना है, उन्हें श्यामपट पर लिखा जाए। परन्तु इस सम्बन्ध में भी यह सावधानी रखी जाए कि जो कुछ लिखा जाए वह साफ-साफ तथा सुन्दर हो। अक्षर सुडौल हों तथा ऐसे हों, जिन्हें सरलता से पढ़ा जा सके। बालकों की नेत्र इंद्रिय को प्रभावित करने के लिए, भिन्न भिन्न रंगों की चाकों का प्रयोग किया जा सकता है।

किसी बात को स्पष्ट करने के लिए श्यामपट पर रेखा चित्र बनाए जा सकते हैं।

फैल्ट बोर्ड

यह शिक्षा के क्षेत्र में एक नवागंतुक है जिसे हम ब्लैक बोर्ड (श्यामपट) का भाई कह सकते हैं। यह एक बोर्ड (तखता) होता है जिस पर किसी भी रङ्ग का फैल्ट या बिलियर्ड क्लाथ (एक प्रकार का कपड़ा) लगाया जाता है। इस फैल्ट बोर्ड पर, अध्यापक गत्ते, रेग मार (Sand paper) अथवा किसी भी अन्य ऐसी वस्तु की बनाई आकृतियाँ, चित्र अक्षर आदि चिपका सकता है। यह कटे हुए अक्षर तथा चित्र आदि जल्दी से चिपकाए तथा हटाए जा सकते हैं। इसलिए भाषा शिक्षण के लिए यह एक महत्वपूर्ण दृश्य साधन है। वर्णमाला का ज्ञान, शब्द निर्माण का कार्य बड़ी सरलता से करवाया जा सकता है। अध्यापक यदि कोई कहानी सुना रहा है तो साथ ही साथ भिन्न भिन्न घटनाओं को स्पष्ट करने के लिए चित्रों की सहायता भी ले सकता है। इस सम्बन्ध में यदि कोई कठिनाई है तो यही कि इस के लिए अध्यापक को पहले से ही अच्छी तैयारी करनी पड़ती है।

चित्र

आज के इस युग में सभी जगह चित्रों का महत्व बढ़ता जा रहा है। किसी के घर में चले जाइए, वहाँ चित्रों का एलबम अवश्य मिल जाएगा।

दैनिक समाचार पत्रों, साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों तथा विज्ञापन के अनेकों साधनों में चित्रों का ही प्रयोग किया जाता है। धीरे-धीरे लिखित रचना का स्थान चित्र ले रहे हैं। साहित्य के बड़े बड़े ग्रन्थ चित्रों के रूप में प्रकट किए जा रहे हैं। फिर भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में चित्रों से सहायता क्यों न ली जाए!

बालकों की पाठ्यपुस्तकों में भी चित्र पाए जाते हैं। परन्तु वे यथेष्ट नहीं हैं। वे विषय को पूर्णतयः स्पष्ट करने में असमर्थ हैं। इसलिए अध्यापक को कक्षा में अन्य चित्रों को लाकर, इस कमी की पूर्ति करनी चाहिए। बालक अपनी पाठ्यपुस्तक में किसी प्रदेश, वहाँ के लोगों तथा रीति-रिवाजों के संबंध में पढ़ते हैं। इस पाठ को पढ़ाते समय यदि साथ में चित्रों का प्रयोग किया जाए तो पाठ्य-विषय की चर्चा करते समय वातावरण सजीव हो उठेगा। "दृश्य" साधनों में चित्रों का स्थान बहुत ऊँचा है।

एपीडायसकोप

यह एक यन्त्र है, जिसके द्वारा, चित्र, मान-चित्र, पुस्तक तथा पत्रिका आदि का कोई पृष्ठ बड़े आकार में पर्दे पर दिखाया जा सकता है। इसका प्रयोग भी चित्र के समान ही किया जाता है। परन्तु इस यन्त्र में एक विशेषता है। इस यन्त्र के द्वारा सारी कक्षा एक साथ ही, कोई चित्र आदि देख सकती है। परन्तु इस सम्बन्ध में एक कठिनाई है, वह यह कि इसका मूल्य अधिक होता है।

चल-चित्र

आज विश्व भर में करोड़ों व्यक्तियों पर चल चित्रों का जो प्रभाव पड़ा है उसे हम उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। शिक्षा को प्रभावी बनाने के लिए, आज भिन्न भिन्न राष्ट्रों में चल चित्रों से सहायता ली जा रही है। यह चल चित्र, छवि-गृहों में दिखाए जाने वाले चल-चित्रों से भिन्न होते हैं। यह चल-चित्र १६ मिलीमीटर फिल्म पर बनाए जाते हैं और १६ मिलीमीटर प्रोजैक्टर के द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं। यह चल-चित्र विशेष रूप से कक्षा में दिखाए जाने के लिए बनाए जाते हैं। यद्यपि विज्ञान, भूगोल तथा इतिहास आदि अनेकों विषयों पर इस प्रकार के फिल्म बनाए जा चुके हैं, परन्तु भाषा शिक्षण के क्षेत्र में इनका प्रयोग बहुत कम हुआ है।

भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में, एक सफल साधन के रूप में, इन चल-चित्रों का सम्बन्ध पाठ्यक्रम के साथ होना चाहिए। जिस विषय पर, छात्रों को चल-चित्र दिखाना हो, उसकी चर्चा पहले कक्षा में कर लेनी चाहिए और बालकों के सामने कुछ प्रश्न रखने चाहिए जिन का उत्तर उन्हें चल-चित्र के द्वारा

मिले । इसे कक्षा-कार्य का एक भाग ही समझना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर चल-चित्र को एक से अधिक बार भी दिखाया जा सकता है ।

आधुनिक भाषा के चल-चित्रों में नीचे लिखी विशेषताएँ होनी चाहिएः-

(i) चल-चित्र छोटा हो ।

(ii) जो कुछ भी रजत-पट पर दिखाया जाए, वह स्पष्ट होना चाहिए, चाहे इसके लिए फिल्म की गति कुछ कम ही क्यों न करनी पड़े ।

(iii) चल-चित्र की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे बालक सरलता से समझ सकें ।

(iv) चल-चित्र बालकों के स्तर तथा अवस्था के अनुसार होना चाहिए ।

(v) जिस विषय पर चल-चित्र बनाया गया है, उस विषय पर, साथ में, निर्देशक पुस्तिका भी होनी चाहिए ।

शिक्षा की दृष्टि से चल-चित्रों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि यह नेत्र और कर्ण, दोनों इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं, परन्तु दुर्भाग्य से यह उपकरण बहुत मँहगा है ।

रेडियो

बी० बी० सी० (British Broadcasting Corporation) के अंग्रेजी विभाग के प्रवक्ता के अनुसार, भाषा की शिक्षा में, रेडियो की निम्नलिखित चार विशेषताएँ हैं :—

(i) रेडियो, उच्चरित भाषा का शुद्ध रूप हमारे सामने रखता है और यही भाषा शिक्षण का प्रमुख आधार है ।

(ii) उच्चरित भाषा का शुद्ध रूप प्रस्तुत करने के लिए, रेडियो पर अच्छे से अच्छे वक्ताओं की सेवाएँ प्राप्त की जा सकती हैं ।

(iii) रेडियो सब स्थानों पर, तथा सभी प्रकार के श्रोताओं तक पहुँच सकता है । अध्यापकों तथा कक्षा-गृहों की कोई समस्या नहीं रहती ।

(iv) जितने परिमाण में रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रम, लोग सुन सकते हैं, उस हिसाब से यह मंहगा सौदा नहीं । जन-शिक्षण का कार्य रेडियो द्वारा ही सुगमता से हो सकता है ।

रेडियो के सम्बन्ध में मुख्य कठिनाइयाँ ये हैं :—

(i) रेडियो का कार्यक्रम एक निश्चित समय पर ही सुना जा सकता है जब कि पाठशालाओं में भाषा-शिक्षण का कार्य भिन्न भिन्न समय पर होता है ।

(ii) मौसम की खराबी के कारण कभी-कभी यह सम्भव नहीं होता कि

प्रसारित कार्य-क्रम स्पष्ट रूप से सुना जा सके जब कि भाषा की शिक्षा में यह आवश्यक है कि प्रत्येक ध्वनि शुद्ध रूप में सुनी जाए।

इतना होते हुए भी ऐसे प्रौढ़, रोगी अथवा अपंग व्यक्तियों के लिए जो पाठशालाओं में नहीं जा सकते, आधुनिक भाषाओं के प्रसारित कार्यक्रम बहुत सफल सिद्ध हुए हैं। इन कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें अनेकों विषयों में नया ज्ञान प्राप्त होता है और ग्रहण किए हुए ज्ञान को स्थिरता प्राप्त होती है।

भाषा-शिक्षण के प्रमुख साधन के रूप में रेडियों का प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है। भारत में, अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी के विकास में, रेडियो एक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। जापान तथा इंगलैंड आदि देशों में प्रारम्भिक तथा माध्यमिक कक्षाओं में तथा भाषा की शिक्षा के व्यापक प्रसार में रेडियो का पूरा पूरा उपयोग लिया जा रहा है।

टेलीविजन

रेडियो द्वारा, प्रसारित कार्यक्रम को हम केवल कानों द्वारा ही सुन सकते हैं परन्तु टेलीवियन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम को हम कानों द्वारा सुनने के साथ ही साथ उसे नेत्रों द्वारा देख भी सकते हैं। यद्यपि रेडियो का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों वर्षों से हो रहा है परन्तु इस दिशा में टेलीविजन अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही है। रेडियो द्वारा प्रसारित कार्यक्रम को जहाँ सैकड़ों, हजारों मीलों की दूरी से भी सुना जा सकता है वहाँ टेलीविजन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम अधिक से अधिक ५०-६० मील की परिधि में ही देखे और सुने जा सकते हैं।

इधर कुछ वर्षों से अमरीका तथा यूरोप के कुछ स्कूलों में भाषा की शिक्षा में टेलीवियन से भी सहायता ली जाने लगी है। टेलीवियन का प्रभाव रेडियो से अधिक होता है। क्योंकि यहाँ पर व्यक्ति सुनने के साथ ही साथ देखता भी जाता है।

ग्रामोफोन

शिक्षा के क्षेत्र में जिन श्रव्य-उपकरणों का प्रयोग किया जा रहा है, उन में, सब से सस्ता उपकरण ग्रामोफोन हैं। भाषा-शिक्षण में ग्रामोफोन का एक विशेष स्थान है। कविता और गद्य, नाटकीय पाठ, बड़े आदमियों के भाषण, शुद्ध उच्चारण आदि ग्रामोफोन द्वारा सीखे जा सकते हैं।

ग्रामोफोन की निम्नलिखित विशेषताएं हैं:—

(i) अध्यापक जब चाहे, रिकार्ड बजा सकता है।

(ii) आवश्यकता पड़ने पर ग्रामोफोन रिकार्ड एक से अधिक बार भी बजाया जा सकता है।

परन्तु दुर्भाग्य से अभी भारतवर्ष में ऐसे ग्रामोफोन रिकार्ड नहीं बने जिन का प्रयोग भाषा की शिक्षा में किया जाए।

टेप रिकार्डर

टेप रिकार्डर की सब से बड़ी विशेषता यह है कि जैसे जैसे भाषण अथवा वार्तालाप चल रहा होता है, वैसे वैसे उस की ध्वनि टेप में रिकार्ड हो जाती है। बाद में जब चाहें, वह भाषण अथवा वार्ता सुनी जा सकती है। इस प्रकार भाषा शिक्षण में ग्रामोफोन के समान, टेप रिकार्डर से भी सहायता ली जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक सुयोग्य अध्यापक भिन्न भिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग भाषा की शिक्षा में समुचित ढङ्ग से कर सकता है। पाठ्य पुस्तकों के द्वारा प्राप्त ज्ञान की, इन साधनों की सहायता से पूर्ति की जा सकती है।

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) भाषा शिक्षण में सहायक साधनों का क्या महत्व है? भारतीय विद्यालयों में इनका प्रयोग क्यों नहीं किया जाता?

(२) भाषा-शिक्षण में प्रश्नों का क्या महत्व है, विस्तार से प्रकाश डालो।

(३) शिक्षा में कौन कौन से दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग किया जाता है? आप इनका व्यवहार भाषा की शिक्षा में किस प्रकार करेंगे?

(४) What are the various types of audio-visual aids that may be used in the teaching of Hindi ? Discuss their suitability for the diflerent stages of a Higher secondary School.

अध्याय १३

कहानी शिक्षा

कहानी का महत्व

जब से मानव ने इस धरती पर जन्म लिया है, वह कहानियाँ पसन्द करता आया है। पुराने समय के भित्ति चित्र तथा साहित्य आदि इस बात के साक्षी हैं कि भारतवर्ष में कहानी कहने की कला भली भाँति विकसित हो चुकी थी। लोक कथाएँ, धार्मिक कथाएँ, वीरगाथाएँ इत्यादि इस बात की द्योतक हैं, कि पहले मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन में कहानी का कितना ऊँचा स्थान था। न केवल पहले ही, परन्तु आज भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कहानी के दर्शन होते हैं। क्या साहित्य, क्या चल-चित्र, क्या रेडियो, क्या नाटक, सभी जगह कहानी का ही बोलबाला है। कहानी मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन है और इसका प्रयोग पाठशालाओं में भी खुल कर किया जाता है।

शिक्षा में कहानी का प्रयोग

शैक्षणिक दृष्टि से कहानी का प्रयोग, अनेकों बातें सीखने के लिए किया जाता है। पढ़ना सीखना, भाषा का ज्ञान प्राप्त करना, इतिहास, जीवनियाँ, विज्ञान आदि अनेकों ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ, कहानी का प्रयोग किया जाता है। कहानी के माध्यम के द्वारा भिन्न भिन्न विषयों में बालकों की रुचि जागृत की जाती है। परन्तु श्री योकम और श्री सिम्पसन के कथनानुसार यह कहानी का दुरुपयोग है। कहानी साधन नहीं, अपितु साध्य है। परोक्ष रूप से चाहे कहानी के द्वारा नीति की शिक्षा मिलती हो अथवा भाषा का सुधार होता हो परन्तु

मुख्य रूप से कहानी का महत्व कहानी के रूप में ही अर्थात् मानव अभिव्यक्ति के अबाध प्रकटीकरण में ही है। मनोरंजन प्रदान करना ही कहानी की सब से बड़ी विशेषता है :—

"The story can be justified for its recreational values alone. If a story points a moral, well and good, if it improves language habits, so much the better but the story must first of all, be a good story and story telling must be worthwhile for its own sake."

—G. A. Yoakam & R. G. Simpson, "Modern Methods and Techniques of Teaching."

कहानी शिक्षा के तीन अंग

शिक्षा की दृष्टि से कहानी का विभाजन तीन अंगों में किया जासकता है—

१—अध्यापक द्वारा कहानी सुनाना

२—विद्यार्थियों द्वारा कहानी कहलाना

३—विद्यार्थियों द्वारा कहानी लिखवाना

कहानी सुनाना

कहानी सुनाना भी एक कला है। इसमें वर्णन की प्रधानता रहती है। इस में वास्तविक जीवन अथवा काल्पनिक जगत की किस बात का वर्णन रहता है। इतिहास में कहानी वास्तविक जीवन से सम्बन्ध रखती है परन्तु भाषा या साहित्य में, इस का सम्बन्ध काल्पनिक लोक से होता है। कहानी सुनाने की कला में पारंगत होने के लिए कहानी सुनाने वाले को या तो स्वयं ही अपनी कल्पना के आधार पर कहानी के कथानक की रचना कर, कहानी सुनानी चाहिए अथवा दूसरों की रची हुई कहानियों को प्रभावशाली ढङ्ग से सुनाना चाहिए। स्वयं अपनी कल्पना के आधार पर कहानी की रचना करना तो कठिन कार्य है परन्तु दूसरों की रची हुई कहानी का, प्रभावशाली ढङ्ग से सुनाने का कार्य तो कोई भी अध्यापक, थोड़े से प्रयास से कर सकता है।

कहानी सुनाने वाले अध्यापक की विशेषताएं

कहानी अच्छी प्रकार से बालकों को सुनाई जा सके, इसके लिए अध्यापक में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए :—

(i) वह उपयुक्त कहानी का चुनाव कर सके।

(ii) वह कहानी को भली-भाँति समझ कर, उसका प्रयोग प्रभावशाली ढंग से कर सके।

(iii) उसमें एक कुशल अभिनेता के गुण होने चाहिए। उसके चेहरे के

भावों से, उसके मुख से निकलने वाली ध्वनि तथा उसके द्वारा प्रयुक्त संकेतों से कहानी सजीव हो उठे ।

कहानी का चुनाव

कहानी सुनाते समय, सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो भी कहानी चुनी जाए, वह बालकों के लिए उपयुक्त हो , कहानी का उपयुक्त होना, सुनने वालों पर, उनकी आयु पर, उन के विकास की अवस्था पर, उन के ज्ञान पर, तथा जीवन के प्रति उन के दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा । इसलिए कहानी सुनाते समय, अध्यापक को अपने मन के सामने, उन बालकों को रखना होगा, जिन्हें वह कहानी सुना रहा है ।

यदि अध्यापक कहानी बहुत छोटे बालकों को सुना रहा है तो उसे, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक अपने वर्तमान जीवन में रुचि रखते हैं । वे ऐसी कहानियाँ पसन्द करते हैं जिनका सम्बन्ध उनके वर्तमान जीवन से हो अथवा उन वस्तुओं से हो जिनको वे जानते हैं, देखते हैं । यदि बालक ही कहानी का केन्द्र हो तो वे और भी हर्षित होंगे । कुछ समय के पश्चात्, जब, बालक पाठशाला में प्रवेश करते हैं, तो वे ऐसी कहानियों को पसन्द करते हैं, जिनका सम्बन्ध बाल्य जीवन से अथवा ऐसे पशु-पक्षियों से हो जिन्हें वे प्रतिदिन देखते हैं, अथवा जिनके विषय में उन्होंने सुना हुआ है । कहने का तात्पर्य यह कि कहानी का सम्बन्ध बालक के दैनिक जीवन के अनुभवों के साथ होना चाहिए ।

तीसरी याद रखने योग्य बात यह है कि बालक ऐसी कहानियाँ पसन्द करते हैं जो स्पष्ट हों, सरल हों, सीधे सादे ढंग से कही गई हों तथा जिन में गतिशीलता हो ।

पाठशाला में आने के कुछ वर्षों पश्चात बालक अप्सराओं की तथा अद्भुत कहानियाँ पसन्द करने लगते हैं । परन्तु यहाँ इस बात की सावधानी रखनी चाहिए, कि कहीं वे डर न जाएँ । और न ही, उन्हें ऐसी कहानियाँ सुनानी चाहिए जो दुःखान्त हों । बालकों का हृदय बड़ा संवेदनशील होता है । कहानी का कोई पात्र, जब मारा जाता है, अथवा उसे कष्ट पहुँचता है तो बालक के हृदय पर भी इसका आघात पहुँचता है । जीवन में आगे ही दुःख तथा निराशाएँ भरी पड़ी हैं, फिर अभी से ही, बालकों को क्यों उनका शिकार बनाया जाए ।

छोटे बालकों को सुनायी जाने वाली कहानियों में काफी परिमाण में वार्तालाप और आवृत्ति हो । छोटे बालक ऐसी कहानियाँ पसन्द करते हैं, जिसमें आए हुए वाक्यों तथा शब्द-समूहों की बार-बार आवृति हो जैसे "अली

बाबा चालीस चोर" नामक कहानी में, 'खुल सम सम' शब्द-समूह की बार-बार आवृत्ति होती है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बालकों को सुनाई जाने वाली कहानी सरल हो, वर्त्तमान जीवन से सम्बन्धित हो तथा उसमें यथेष्ट परिमाण में वार्तालाप हो, आवृत्ति हो तथा गति हो।

कहानी सुनाने का प्रयोजन

अध्यापक बालकों को कहानी सुनाते समय, अपने सामने कोई न कोई प्रयोजन अवश्य रखे। आमतौर पर अध्यापक निम्नलिखित उद्देश्यों को सामने रख कर बालकों को कहानियाँ सुनाते हैं :—

(i) कहानी ही एक सब से अच्छा साधन है जिसके द्वारा बालकों की कल्पना शक्ति तथा तर्क शक्ति का विकास किया जा सकता है।

(ii) कहानी के द्वारा, बालक जीवन की सुन्दरता के दर्शन करते हैं।

(iii) कहानी के द्वारा, बालकों को अच्छी भाषा का ज्ञान होता है और वे स्वयं भी वैसी भाषा का प्रयोग करने का यत्न करते हैं।

(iv) कहानी के द्वारा, बालकों तथा बालिकाओं में साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

परन्तु जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है कहानी सुनाने का सबसे बड़ा प्रयोजन है, बालकों को आनन्द प्रदान करना। आज अनेकों बालक स्कूल के नाम से घबराते हैं। वे स्कूल को हौआ न समझ कर आनन्द-निकेतन समझें। और यह तभी सम्भव हो सकता है जब पाठशाला के गम्भीर वातावरण द्वारा बालकों के मतिष्क पर जो दबाव पड़ता है, उसे कम कर दिया जाए, कहानी के द्वारा ही इस कार्य की सिद्धि हो सकती है। कहानी के द्वारा बालक और अध्यापक एक दूसरे के निकट आते हैं और अध्यापक कक्षा में उचित वातावरण निर्माण करने में सफल हो सकता है।

कहानी कैसे सुनाई जाए?

इस सम्बन्ध में साधारणतया पहली बात यह है कि कहानी पढ़ी न जाए, अपितु सुनाई जाए। यदि अध्यापक कहानी सुनाता है तो वह उसकी अपनी हो जाती है। उसका व्यक्तित्व कहानी में झलकता है। श्रोताओं के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जब अध्यापक कहानी सुना रहा है और उसके नेत्र कक्षा की ओर हैं, तो बालकों का अवधान स्थिर रखना सरल हो जाता है।

दूसरी बात जो हमारे सामने आती है वह यह कि क्या अध्यापक को

कहानी कण्ठस्थ कर लेनी चाहिए। इस सम्बन्ध में राईबर्न का कथन है कि ऐसा करने से वह कहानी ठीक प्रकार से नहीं सुना सकेगा। सब से अच्छा ढंग तो यही है कि शब्द उसके सामने आते जाएँ और वह बोलता जाए। सबसे आवश्यक बात है अध्यापक को कहानी का ज्ञान होना। कहानी सुनाते समय बीच बीच में पुस्तक देखना तो अत्यन्त घातक बात है। व्यक्ति, व्यक्ति में अन्तर होता है। यदि कोई अध्यापक ऐसा समझता है कि कहानी जबानी याद किए बिना, उसका काम ही नहीं चलेगा तो वह ऐसा कर सकता है। अध्यापक ऐसा करे या न करे, कहानी के अन्दर कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जिनकी आवृत्ति होना आवश्यक है। ऐसे वाक्यों को अध्यापक को याद कर लेना चाहिए।

अध्यापक जो कहानी सुना रहा है, उसकी उसे अच्छी तैयारी करनी चाहिए, विशेष कर नए अध्यापकों को। कई विद्वानों का ऐसा मत है कि कहानी की तैयारी करते समय, अध्यापक पहले कहानी को लिख लेवे। कहानी की तैयारी का सबसे अच्छा तरीका तो यही है कि कहानी सुनाने से पहले, दो तीन बार उसका पूर्वाभ्यास कर लिया जाए। धीरे-धीरे अभ्यास हो जाने पर फिर इस की आवश्यकता न पड़ेगी।

अध्यापक जो कहानी सुना रहा है, वह उसे भी अच्छी लगनी चाहिए। यदि वह कहानी अध्यापक को अच्छी नहीं लगेगी तो सुनने वाले बालक भी उसमें रुचि नहीं लेंगे। कहानी सुनाते समय, उसकी आत्मा कहानी में लीन हो जाए। वह पात्रों की भावनाओं के साथ एक रूप हो जाए।

जब यह कहा जाता है कि अध्यापक को कहानी का ज्ञान होना चाहिए तो हमारा तात्पर्य केवल कहानी की घटनाओं से ही नहीं होता। कहानी की घटनाओं के साथ ही साथ अध्यापक को कहानी की पृष्ठभूमि का भी पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे उन परिस्थितियों की जानकारी होनी चाहिए जिनके अन्दर पात्र रहते हैं और काम करते हैं। कहानी का सम्बन्ध जिस काल से है उस समय का सामाजिक वातावरण, कहानी का सम्बन्ध जिस भू-भाग से है, वहाँ का भौतिक वातावरण, इन सब की जानकारी अध्यापक को होनी चाहिए। ऐसा होने पर कहानी में सजीवता आ जाएगी।

कहानी सुनाते समय, अध्यापक ऐसे शब्दों का प्रयोग करे, जो रोचक हों और जिन्हें, सुनने वाले विद्यार्थी पसन्द करें। उसकी आवाज स्वाभाविक होनी चाहिए और कहानी की घटनाओं तथा गति के अनुसार, उसमें उचित उतार-चढ़ाव होना चाहिए।

कहानी सुनाते समय एक आवश्यक बात है, अध्यापक का कहानी के प्रति

दृष्टिकोण। इस सम्बन्ध में श्री कैथर (K. D. Cather) ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

"By the story-teller's attitude is meant her bearing towards the work she is attempting to do. Does she believe that through the medium of story-telling, she may achieve results difficult of realization without it? Unless she has a regard for the dignity and importance of story-telling that amounts almost to reverence, she cannot be depended upon to achieve the best result."

K. D. Cather : "Religious Education Through Story-telling", p. 206.

अर्थात् भाषा पर अधिकार होने के साथ साथ अध्यापक के मन में कहानी सुनाने का उत्साह होना चाहिए। और यह तभी हो सकता है जबकि उसकी कहानी की क्षमताओं में गहरी आस्था हो। उसे इस बात का दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि वह कहानी के द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेगा। कहानी के प्रति ऐसी भक्ति-भावना होने पर ही, वह एक सफल कहानी सुनने वाला बन सकता है।

जब हम चल-चित्र देखने जाते हैं तो हमारी आँखों के सामने एक के बाद एक चित्र आता चला जाता है। कहानी सुनाते समय, अध्यापक के मन में भी, कहानी से सम्बन्धित ऐसे ही दृश्य-चित्र उपस्थित होते चले जाने चाहिएँ और अध्यापक हर दृश्य-चित्र का वर्णन करता चले।

कभी कभी अध्यापक को कहानी में थोड़ा हेर फेर करने की भी आवश्यकता होती है कुछ कहानियाँ बहुत छोटी होती हैं। कुछ कहानियाँ बहुत लम्बी होती हैं। कुछ कहानियों का सारा वातावरण विदेशी होता है, उसे श्रोताओं की आवश्यकता के अनुसार भारतीय ढाँचे में ढालना पड़ता है। एक अनुभवी अध्यापक के लिए तो इन बातों को करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती परन्तु नए अध्यापकों को अवश्य ही, इसकी पूरी तैयारी करनी चाहिए।

अध्यापक को इस बात की सावधानी रखनी है कि कहानी सुनाने का तात्पर्य बालकों के सामने भाषण कला का प्रदर्शन करना नहीं है। अध्यापक विद्यार्थियों को कहानी सुनाते समय, वही तरीका अपनाए, जो वह अपने घर में, अपने बच्चों के साथ अपनाता है।

अध्यापक कभी कभी हास्य रस की कहानियाँ भी सुनाए, ऐसी कहानियाँ जिन्हें सुनकर बालकों को हँसी आए जिससे कि बालक पाठ-शाला को सुख तथा आनन्द का स्थान समझें।

बड़ी कक्षा के बालकों को यदि कहानी दोबारा सुनानी है तो उसके रूप में कुछ परिवर्तन कर देना चाहिए। उदाहरण स्वरूप कहानी का कोई पात्र अपने मुख से यह कहानी कहे तो कैसे कहेगा। इससे बालकों की कल्पना शक्ति का विकास होगा।

विद्यार्थियों द्वारा कहानी कहलवाना

विद्यार्थियों से कहानी कहलाने के पश्चात ही इस बात का अनुमान लग सकता है कि अध्यापक कहानी सुनाने की कला में किस सीमा तक सफल हुआ है। विद्यार्थियों द्वारा जो कहानी कहलवाई जाएगी, उसमें भी, उनकी अवस्था के अनुसार अन्तर रहेगा।

प्रारम्भक अवस्था के बालकों से ऐसे छोटे छोटे प्रश्न पूछने चाहिए जिनके द्वारा कहानी के भिन्न अंगों पर प्रकाश पड़ सके। कभी कभी बालकों द्वारा कही हुई कहानी को भी भिन्न भिन्न प्रश्नों द्वारा कक्षा के अन्य बालकों से कह-लवाना चाहिए।

कभी कभी कहानी के प्रमुख अंगों को स्पष्ट करने के लिए चित्र प्रस्तुत करके उन पर प्रश्न पूछने चाहिए।

ऐतिहासिक तथा घटना प्रधान कहानी कहलवाने के पश्चात, उस का कक्षा अभिनय करवाना विशेष रूप से लाभदायक रहेगा।

माध्यमिक कक्षाओं में बालकों से कहानी कहलवाते समय, शब्दों, सूक्तियों तथा लोकोक्तियों आदि के ठीक-ठीक प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया जाए। इन कक्षाओं में, विद्यार्थियों से कहानी, उनके अपने शब्दों में ही कहलवानी चाहिए। यदि कहानी लम्बी हो तो उसे संक्षेप में कहलवाया जा सकता है।

उच्च कक्षाओं में, विद्यार्थियों के द्वारा किसी अधूरी कहानी को पूरा कर-वाया जा सकता है। कभी कभी बालकों को, किसी पुस्तक में से कहानी पढ़ने के लिए कहा जाए। इस कहानी को वे अगले दिन सारी कक्षा को सुनाएं। इन कक्षाओं के विद्यार्थियों को इस बात का प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे उच्च कोटि की साहित्यिक, सामाजिक, नैतिक, ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक कहानियाँ पढ़ें।

विद्यार्थियों द्वारा कहानी लिखवाना

विद्यार्थियों द्वारा कहानी लिखवाते समय भी हमें उनकी अवस्था का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि सुनाने की अपेक्षा लिखते समय बालकों को अधिक सोचना-विचारना तथा प्रयास करना पड़ता है।

प्रारम्भिक कक्षाओं में कहानी से सम्बन्धित कुछ प्रश्न अध्यापक श्यामपट पर लिख दें। इन प्रश्नों का उत्तर बालक अपनी अभ्यास-पुस्तिका में लिख देवें। अध्यापक बीच बीच में निरीक्षण करता रहे। जहाँ तक सम्भव हो, यह कार्य कक्षा में ही करवा लिया जाए।

माध्यमिक कक्षाओं में विद्यार्थियों ने अध्यापक से जो कहानी सुनी है, उसे वे घर से, अपने शब्दों में, लिखकर लावें। अध्यापक निरीक्षण कर लेवें कि विद्यार्थियों की लिखी हुई कहानी में कोई त्रुटि तो नहीं रह गई।

उच्च कक्षाओं में विद्यार्थियों द्वारा किसी कहानी का सार लिखाया जा सकता है, किसी कहानी पर आलोचनात्मक दृष्टि से लेख लिखवाया जा सकता है, अथवा एक ही लेखक की या भिन्न भिन्न लेखकों की दो कहानियों की आपस में तुलना कराई जा सकती है। इस प्रकार विद्यार्थियों को उत्साह मिलेगा और वे कहानियों की विशेषताओं को हृदयंगम कर सकेंगे।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) What is the significance of story telling in the teaching of the mother tongue? What are the essentials of a good story?

(2) What part do the stories play in the education of children? What principles will you bear in mind while selecting stories for the different grades of schools?

(३) कहानी का हमारे जीवन में क्या महत्व है? शैक्षणिक दृष्टि से कहानी का प्रयोग कैसे किया जा सकता है?

(४) कहानी का चुनाव करते समय किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? आपके विचार में कहानी सुनाने के क्या उद्देश्य हो सकते हैं?

(५) कहानी सुनाते समय, अध्यापक को कौन कौन सी बातें अपने सामने रखनी चाहिए?

(६) विद्यार्थियों द्वारा कहानी का अभ्यास कैसे कराया जा सकता है—स्पष्ट करो।

अध्याय १४

वर्धा योजना और भाषा शिक्षण

भारतवर्ष में जब विदेशी सत्ता थी तो अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर ही अधिक बल दिया गया। भारतीय भाषाओं की बिल्कुल अवहेलना की गई। उसका एक कारण भी था। अंग्रेजों को अपना राज्य चलाने के लिए अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबुओं की आवश्यकता थी। अंग्रेजी भाषा का अन्य कारणों से, चाहे कितना ही महत्व क्यों न हों, परन्तु यह बात शिक्षा सिद्धान्तों के बिल्कुल विपरीत थी। किसी भी शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय योजना में, विदेशी भाषा को कभी भी सर्वोच्च स्थान नहीं दिया जा सकता। इसीलिए वर्धा योजना (बुनियादी शिक्षा) में बालकों तथा बालिकाओं की मातृभाषा को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

नई तालीम का नयापन

वर्धा योजना, जिसे गान्धी जी ने "नई तालीम" का नाम दिया है, का प्रमुख आधार कोई उत्पादक उद्योग होता है। उद्योग ही वर्धा योजना की जान है। गान्धी जी के शब्दों में "नई तालीम का नयापन यही है कि तालीम कुछ भी हो, ग्राम-उद्योग की मार्फत दी जाए।" फ्रोबेल की किण्डर गार्टन पद्धति में भी हस्त उद्योग को स्थान दिया गया है। अमेरिका में प्रचलित "प्रोजेक्ट पद्धति"(Project Method) तथा रूस में प्रचलित "कम्पलैक्स पद्धति (Complex Method) का प्रमुख आधार भी कोई उद्योग ही होता है।

वर्धा योजना में समवाय

वर्धा योजना में प्रारम्भ से ही किसी न किसी स्थानीय उद्योग की शिक्षा

दी जाती है। यह उद्योग ही शिक्षा का माध्यम होता है। अन्य सभी विषय जैसे भाषा, इतिहास, भूगोल, सामान्य विज्ञान, गणित, नागरिक शास्त्र इत्यादि उद्योग के माध्यम से पढ़ाये जाते हैं। उद्योग के माध्यम से सभी विषयों को पढ़ाना ही समवाय कहलाता है। समवाय में एक केन्द्रीय विषय होता है और अन्य विषय उसी के आधार पर पढ़ाए जाते हैं। हरबार्ट ने इतिहास को केन्द्रीय विषय बनाया, कर्नल पारकर ने प्रकृति विज्ञान को केन्द्रीय विषय बनाया परन्तु वर्धा योजना में उद्योग ही केन्द्रीय विषय है। भाषा की शिक्षा भी उद्योग के आधार पर ही दी जाती है।

क्रिया द्वारा सीखना

पेस्टालाजी, फ्रोबेल, मांटेसरी आदि सभी शिक्षा शास्त्रियों ने, तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी अपने अनेकों प्रयोगों के आधार पर कहा है कि बालक एक क्रियाशील प्राणी है। वह सदा कुछ न कुछ करना चाहता है। इसलिए बालक की शिक्षा में किसी न किसी क्रिया (activity) को अवश्य स्थान देना चाहिए। वर्धा योजना में "क्रिया द्वारा सीखने" (Learning by doing) के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है। इसीलिए प्रत्येक बालक को कोई न कोई उद्योग सिखाया जाता है।

किसी भी उद्योग को करते समय विद्यार्थियों को कई क्रियाएं करनी पड़ती हैं। उन्हें कभी बोलकर कुछ पूछना पड़ता है, कभी पढ़ कर समझना पड़ता है तथा कभी-कभी हिसाब भी रखना पड़ता है। बालकों तथा बालिकाओं की इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, उन्हें अन्य विषय भी पढ़ाए जाते हैं। अन्य विषय तो बालकों को मातृभाषा के माध्यम के द्वारा पढ़ाए जा सकते हैं, परन्तु भाषा की शिक्षा उद्योग के द्वारा कैसे दी जा सकती है, अब इसकी कुछ चर्चा की जाएगी।

जहाँ कहीं कोई विषय, उद्योग के द्वारा न पढ़ाया जा सके, वहाँ सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण से भी सहायता ली जाती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भाषा का ज्ञान उद्योग, सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक वातावरण, तीनों के द्वारा ही दिया जा सकता है।

उद्योग के द्वारा भाषा की शिक्षा

बालक जब पाठशाला में आता है तो उसे अपनी मातृभाषा का कुछ ज्ञान होता है। वह अपनी मातृभाषा में बातचीत कर सकता है। पाठशाला में आकर जब वह कोई उत्पादक उद्योग करता है तो उस उद्योग के द्वारा उसका

भाषा ज्ञान और विकसित होता है। मान लीजिए पाठशाला में "कृषि" उद्योग है। अब इस उद्योग की पूर्ति के लिए अनेकों कार्य करने पड़ते हैं जैसे भूमि को तैयार करना, हल जोतना, बीज बोना, सोहागा चलाना आदि। इसी प्रकार सिंचाई, गोड़ाई इत्यादि कार्य भी करने पड़ते हैं। फसल के शत्रुओं से बचाव करना, तैयार अन्न का सम्हालना, उसका ठीक-ठीक वितरण करना पशुओं को पालना आदि अनेकों कार्य भी "कृषि" उद्योग में आ जाते हैं।

बालक स्वाभाविक तौर पर बोलना चाहता है। वह जो कुछ भी करता है, उसका विवरण बोलकर प्रकट करता है। भाषा सिखाते समय बालक की इस मूल प्रवृत्ति से लाभ उठाया जाता है और स्वाभाविक ढङ्ग से उसे भाषा का ज्ञान कराया जाता है। वही शब्द बालक को सिखाए जाते हैं, जिनकी उसे आवश्यकता पड़ती है और उसी समय सिखाए जाते हैं, जब वह उन शब्दों की आवश्यकता अनुभव करता है।

मौखिक तथा लिखित कार्य

मौखिक कार्य के द्वारा बालक को नए शब्दों का ज्ञान कराया जाता है। बालक जिन वस्तुओं को काम में लाता है, उनके नामों को वह वार्तालाप द्वारा बड़ी आसानी से सीख जाता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उदाहरण स्वरूप अध्यापक बालक से कहता है कि—

"अनिल ! यह फावड़ा उठाओ। आओ मूली उगाने के लिए भूमि तैयार करें।"

बालक फावड़े को देखता है, फावड़ा उठाता है, उसे हाथ से चलाता है। साथ ही साथ वह अध्यापक से बातचीत भी करता रहता है। इस प्रकार वह शब्द और अर्थ में सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लेता है अब इस अर्थ को वह कभी भी नहीं भूल सकता। अनावश्यक शब्दों को सीखने के बोझ से भी बच जाता है।

ऐसे ही बालक, अनेकों वस्तुओं जैसे—पौधों, पेड़ों, फलों आदि को देखता है। इन वस्तुओं को देखकर, बालक के मन में अनेकों भाव उठते हैं। वह फलों को देखकर प्रसन्न होता है, फलों को देखकर खाना चाहता है। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में वह बातचीत करता है। इस प्रकार मौखिक भाषा का अभ्यास होता है।

मौखिक कार्य द्वारा बालक जिन शब्दों को सीखता है, उन शब्दों के अक्षर उसे सिखाये तथा लिखाए जाते हैं। धीरे-धीरे वह शब्द और वाक्य लिखने लगता है। चित्रों की सहायता से इस कार्य को और भी रोचक बनाया जाता है।

जैसे जैसे बालक कृषि का और काम सीखता जाता है, उसका शब्द भण्डार बढ़ता जाता है। श्रेणी क्रम तथा अपने अनुभवों के आधार पर बालक कविता नाटक, कहानियाँ, निबन्ध आदि पढ़ता है तथा उन्हें लिखने का अभ्यास करता है। उनको साप्ताहिक सभाओं में पढ़ कर सुनाता है। उनमें से कई लेख, हस्त लिखित पत्रिकाओं में दिए जाते हैं। इस प्रकार बालक बड़े रोचक ढङ्ग से भाषा का बोलना, पढ़ना तथा लिखना सीखता है। कृषि के समान अन्य उद्योगों जैसे कताई, बुनाई, गन्ने, लकड़ी, धातु आदि के द्वारा भी भाषा, सिखाई जाती है।

सामाजिक वातावरण के द्वारा भाषा की शिक्षा

भाषा सिखाने का दूसरा साधन है, सामाजिक वातावरण। सामाजिक वातावरण में त्यौहारों का मनाना, रोगी की सेवा, सफाई, भोजनालय, ग्राम सुधार आदि कार्य आ जाते हैं। इनको केन्द्र मानकर भाषा की शिक्षा दी जाती है। विद्यालय में दशहरे का त्यौहार मनाया जाता है। बालक रामचन्द्रजी के जीवन के सम्बन्ध में पढ़ता है। रामायण का पाठ किया जाता है। राम के सम्बन्ध में लेख आदि लिखाए जाते हैं। इस ढङ्ग से सामाजिक वातावरण द्वारा भाषा की शिक्षा दी जाती है।

प्राकृतिक वातावरण द्वारा भाषा की शिक्षा

प्राकृतिक वातावरण तीसरा साधन है जिसकी सहायता से भाषा की शिक्षा दी जाती है। बालक तथा बालिकाएँ प्रतिदिन प्रकृति के सम्पर्क में आते रहते हैं। वे नदियों, नालों, झीलों, समुद्र पर्वतों, पौधों, वृक्षों, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों इत्यादि को देखते हैं। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में वे अपने अध्यापकों तथा साथियों से बातचीत करते हैं। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में उनसे लिखाया जाता है। इस प्रकार विद्यार्थी प्राकृतिक वातावरण के द्वारा भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) समवाय से आपका क्या तात्पर्य है ? वर्धा योजना में क्रिया द्वारा सीखने को इतना अधिक महत्व क्यों दिया गया है ?

(२) वर्धा योजना में मातृभाषा का क्या स्थान है ? गान्धी जी ने इसे नई तालीम का नाम क्यों दिया है ?

(३) वर्धा योजना में उद्योग के द्वारा भाषा की शिक्षा कैसे दी जाती है, उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करो।

(४) उद्योग के अतिरिक्त और कौन से ऐसे साधन हैं जो वर्धा योजना में भाषा की शिक्षा के लिए अपनाए जाते हैं। इन साधनों का प्रयोग भाषा-शिक्षण में किस प्रकार किया जाएगा ?

अध्याय १५

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ शिक्षा का महत्व

भारतवर्ष को स्वतन्त्र हुए, आज तेरह वर्ष से भी ऊपर होगए हैं परन्तु फिर भी अभी तक केवल १८ प्रतिशत जनता ही साक्षर कही जा सकती है। इसका क्या कारण है ? केन्द्रीय सरकार को इस ओर जितना प्रयास करना चाहिए, उतना नहीं कर रही। सरकार की ओर से जो पंचवर्षीय योजनाओं की व्यवस्था की गई है, उसमें भी शिक्षा के लिए धन बहुत कम रखा गया है। शिक्षा के लिए जो थोड़ा बहुत धन रखा भी जाता है; उसका अधिकांश भाग बालकों तथा बालिकाओं के लिए पाठशालाएं स्थापित करने में खर्च हो जाता है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए बहुत कम धन रह पाता है। भारतवर्ष में असाक्षरता की समस्या तब तक बनी रहेगी जब तक यहाँ के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का प्रयास नहीं किया जाता।

भारतवर्ष एक प्रजातन्त्रवादी देश है। प्रजातन्त्रवाद की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ के लोगों में नागरिकता के गुणों का विकास हो तथा वे अपने उत्तरदायित्वों को समझ कर भले बुरे की परख कर सकें। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है, जब कि प्रौढ़ लोगों में भी शिक्षा का प्रसार किया जाए। जब तक यहाँ की जनता अशिक्षित हैं, तब तथा स्वार्थी राजनैतिक नेता लोगों को बहकाते रहेंगे। शिक्षा की ओर पहला कदम साक्षरता का है। इस लिए जहाँ बालकों तथा बालिकाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क बनाना आवश्यक है, वहाँ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का काम भी कम आवश्यक नहीं। यदि भारत राष्ट्र को प्रगति के पथ पर बढ़ना है तो प्रौढ़ शिक्षा की समस्या को अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता।

बालकों और प्रौढ़ों की शिक्षा में अन्तर

बालकों तथा प्रौढ़ों को जो पढ़ाया जाएगा तथा जिस ढंग से पढ़ाया जाएगा, उस में अन्तर रहेगा। दोनों के लिए पाठ्य-वस्तु भिन्न-भिन्न होगी पाठ्य-पुस्तकें भिन्न-भिन्न होंगी, तथा पाठन प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न होंगी। प्रौढ़ों का अनुभव तथा व्यावहारिक ज्ञान बालकों तथा बालिकाओं की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। बालकों का ज्ञान तथा शब्द भण्डार दोनों ही बहुत सीमित रहते हैं परन्तु अशिक्षित होने पर भी प्रौढ़ों में ज्ञान, अनुभव, शब्द भण्डार तथा विषय को ग्रहण करने की शक्ति बहुत अधिक विकसित तथा व्यापक रहती है।

प्रौढ़ों की बुद्धि बालकों की अपेक्षा परिपक्व होती है, उनके संस्कार दृढ़ हो चुके होते हैं तथा विचारधारा किसी विशेष लक्ष्य की ओर निश्चित सी होती है। अतएव प्रौढ़ों को साक्षर बनाते समय, इस बात का ध्यान रखा जाए कि उनके संचित ज्ञान और अनुभव का तथा परिपक्व बुद्धि का पूरा पूरा लाभ उठाया जा सके। केवल "चतुर सियार" या "लोमड़ी और कौआ" जैसी कहानियों से उन्हें कोई लाभ नहीं होगा। उनकी शिक्षा में रामायण, महा-भारत, जैसी पुस्तकों की कथाओं को स्थान देना होगा। परन्तु इस बात की सावधानी रखी जाए कि उन की पुस्तकों की भाषा सरल तथा बोधगम्य हो।

प्रौढ़ों को कैसे पढ़ाया जाए

प्रौढ़ों को शिक्षा प्रदान करते समय जो सबसे बड़ी कठिनाई सामने आती है, वह यह कि उन की पढ़ने में रुचि नहीं होती। हमें ऐसी पाठ्यवस्तु तथा पाठ्य-प्रणाली की खोज करनी होगी, जिसके द्वारा पाठ को रोचक बनाया जा सके। केवल बहुत थोड़े से लोग ही ऐसे होते हैं जो स्वयं शिक्षण में रुचि लें।

प्रौढ़ों के मन में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करना

प्रौढ़ों के मन में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने से पहले, यह आवश्यक है कि वे शिक्षा की उपादेयता का समझें। कई बार ऐसा देखा जागा हैं पढ़ाई में, प्रौढ़ों की अपेक्षा उनके शिक्षकों में अधिक उत्साह होता है। जब तक प्रौढ़ यह नहीं समझ लेते कि शिक्षा का व्यावहारिक उपयोग क्या होगा, तब तक उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयास सफल नहीं हो सकता।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में, प्रौढ़ों के मन में, शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए, कई साधन प्रयोग में लाए गए हैं। उन में से कुछ साधन नीचे दिए जा रहे हैं—

१—मद्रास आदि कुछ प्रान्तों में, समाचार तथा अन्य रोचक सामग्री, गाँव की दीवारों पर लिखवा दी जाती है। इस का बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता

है। जो प्रौढ़ पढ़ नहीं सकते, वे ऐसा समझते हैं कि वे बहुत सी आवश्यक तथा मनोरंजक बातों से वंचित रह रहे हैं । अतएव उन के मन में पढ़ने का चाव उत्पन्न होता है ।

२—कई स्थानों पर भिन्न भिन्न गामों की आपस में प्रतियोगिता होती है जिसमें देखा जाता है कि किस ग्राम में अधिक से अधिक असाक्षर लोगों को साक्षर बनाया गया । इस काम में जो गाँव सब से आगे होता है, उसे शील्ड आदि के रूप में पुरस्कार प्रदान किया जाता है ।

३—कई ग्रामों में, कुछ लोग व्यक्तिगत रूप से, किसी ग्राम विशेष के संरक्षक बन जाते हैं। वे ग्रामों में पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलवाते हैं, और अपने व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा गाँव के लोगों में पढ़ने के प्रति उत्साह उत्पन्न करते हैं।

४—बहुत से स्थानों पर ग्राम-स्वास्थ्य तथा खेती बाड़ी आदि के सम्बन्ध में, जिनमें गाँव वालों की रुचि होती है, छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ मुद्रित करवा के बाँट दी जाती है। ग्रामों के जो वयस्क लोग इन पुस्तिकाओं को पढ़ नहीं सकते, उन के मन में बड़ी ग्लानि होती है और वे यह सोचने लगते हैं यदि वे पढ़ना सीख जाएँ तो उन्हें कितनी ही उपयोगी बातों का ज्ञान हो जाए ।

५—कई बार ग्राम के लोगों में पढ़ने के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए कुछ समाज सेवी व्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों आदि से कुछ अंश पढ़कर सुनाते हैं और शेष अंश के सम्बन्ध में कह देते हैं कि वे इसे स्वयं ही पढ़ लेवें । इस कार्य के द्वारा भी ग्रामवासियों में पढ़ने की प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है ।

६—ऐसे छपे हुए कागज प्रौढ़ों में बाँटे जाते हैं जिनमें पहेलियाँ तथा उन के उत्तर दिये रहते हैं। ग्राम सेविका पहेलियाँ पढ़कर सुना देती हैं परन्तु उत्तर नहीं पढ़ती। उत्तर के सम्बन्ध में वह कह देती हैं कि प्रौढ़ लोग स्वयं पढ़ना सीख कर, उत्तर देख सकते हैं। ऐसी बातों से अशिक्षित प्रौढ़ों में भी पढ़ने के प्रति उत्साह आ जाता है ।

७—फिर ग्राम सेवक प्रौढ़ों को शिक्षा की उपयोगिता के सम्बन्ध में बताते हुए कह सकता है कि यदि वे पढ़ना लिखना जानते होंगे तो गाँव का बनिया और महाजन उन्हें धोखा नहीं दे सकेगा। उनके हिसाब-किताब को वे स्वयं अपनी आँखों के सामने देख सकेंगे। इसी प्रकार यदि उन्हें पढ़ना लिखना आता होगा तो वे अपने अवकाश का उचित प्रयोग कर सकेंगे और आवश्यकता होने पर अपनी आय भी बढ़ा सकेंगे ।

व्यक्तिगत शिक्षा

बहुत से प्रौढ़ लोग फिर से पाठशाला में जाना पसन्द नहीं करेंगे । प्रायः ऐसा देखा गया है कि प्रौढ़ों के लिए प्रस्थापित पाठशालाओं के द्वारा पूरा पूरा लाभ नहीं होता । इसलिए ऐसे वयस्कों को, जो पाठशाला में नहीं जाना चाहते यह विश्वास दिलाना होगा कि उन्हें फिर से पाठशाला में नहीं भेजा जाएगा । ऐसे वयस्कों को व्यक्तिगत रूप से ही शिक्षा देनी चाहिए ।

शिक्षा सम्बन्धी योजना की जानकारी

समाज सेवकों तथा अध्यापकों द्वारा, व्यस्कों को इस बात की पूरी पूरी जानकारी मिलनी चाहिए कि उन को क्या क्या पढ़ाया जाएगा । वयस्क, बालकों की अपेक्षा जल्दी पढ़ना सीख लेते हैं, इसलिए उनके लिए योजना बनाते समय सावधान रहने की आवश्यकता है । उनके लिए, सोच समझ कर पुस्तकें निर्धारित की जाएँ । वयस्कों में जो अधिक चतुर तथा समझदार हो, पहले उसे ही शिक्षा प्रदान की जाए । उस को देखकर, अन्य वयस्क लोग भी पढ़ने के लिए आतुर हो उठेंगे ।

धन की समस्या का निराकरण

भारतवर्ष के लोग प्रायः निर्धन हैं । उन के पास इतना अधिक धन नहीं जो वे शिक्षा पर खर्च कर सकें । इसलिए प्रौढ़-शिक्षा सम्बन्धी कोई ऐसी योजना नहीं होनी चाहिए, जिसमें अधिक धन की आवश्यकता पड़े । डा० लाबैक (Dr. Laubach) के कथनानुसार यदि हम भारतवर्ष में, थोड़े समय में, साक्षरता का प्रसार देखना चाहते हैं, तो हमारा आदर्श होना चाहिए "एक को एक पढ़ाए" (One teach one) । "किसी भी ऐसे योग्य वयस्क को जिसने पढ़ना लिखना अच्छी प्रकार से सीख लिया है, पढ़ाने का काम सौंपा जा सकता है । इस के कई लाभ होंगे । एक तो उस व्यस्क व्यक्ति में ज्ञान-प्राप्ति के प्रति उत्साह बढ़ेगा । दूसरे जो ज्ञान उसने प्राप्त किया है, वह सुदृढ़ हो जाएगा । तीसरे उसे इस बात में बड़ा आत्म-सन्तोष मिलेगा कि वह भी दूसरों की कुछ सेवा का सकता है ।"[1]

---

1. Nearly every bright adult, after learning a lesson can teach it to someone else. This has several advantages, where it can be done. It gives him a strong incentive for learning, fixes the lesson firmly in his mind and lets him know the joy of helping others.

Dr. F. C. Laubach : "Teaching Illiterates", p. 3-4.

पास अवकाश हो। अतएव प्रौढ़-शिक्षा की जो भी योजना बनाई जाय, वह बहुत अधिक लम्बी न हो।

शिक्षण-पद्धति

वयस्कों को शिक्षा किस विधि से दी जाए, इस सम्बन्ध में अभी परीक्षण हो रहे हैं। इन परीक्षणों के आधार पर नीचे लिखी पद्धतियों का अनुमोदन किया जाता है :—

(i) कहानी पद्धति

(ii) तालिका शब्द पद्धति

(iii) ध्वन्यात्मक पद्धति

(iv) चित्र-पद्धति

कहीं कहीं पर कहानी तथा ध्वन्यात्मक पद्धति का मिश्रण अच्छा रहेगा। कहीं पर चित्र पद्धति का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि वयस्कों की आवश्यकताअनुसार किसी विशेष पद्धति या कई पद्धतियों के मिश्रण को अपनाया जा सकता है।

पाठ्यक्रम

वयस्कों की शिक्षा के लिए उचित पाठ्यक्रम का न होना, सबसे बड़ी खटकने वाली बात है। इस ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया गया है। प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए, पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसे थोड़ी अवधि में ही पूरा किया जा सके। हिन्दी में, वयस्कों की शिक्षा के लिए श्री पं० सीताराम चतुर्वेदी ने एक दस दिन का पाठ्यक्रम तैयार किया है जो बड़ा उपयोगी प्रतीत होता है। अभी इस दिशा में और भी प्रयास होने चाहिए। उचित पाठ्यक्रम के द्वारा, हमें, प्रौढ़-शिक्षा के विकास में बड़ी सहायता मिलेगी। आशा है सरकार का ध्यान भी इस ओर जाएगा।

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) प्रौढ़ शिक्षा का महत्व बतलाते हुए लिखो कि बालकों और प्रौढ़ों की शिक्षा में क्या अन्तर है ?

(२) प्रौढ़ों के मन में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिए आप किन किन साधनों का प्रयोग करेंगे ?

(३) प्रौढ़ों को पढ़ाते समय हमें किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(४) संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :—

(क) प्रौढ़-शिक्षा के लिए अध्यापक।

(ख) प्रौढ़ शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम।

अध्याय १६

हिन्दी साहित्य में नवीन प्रवृत्तियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की भिन्न भिन्न गतिविधियों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है। वास्तव में वही साहित्य प्रगतिशील कहा जाता है, जो समाज के साथ साथ चलता है। साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए, "बहु जन हिताय, बहु जन सुखाय।" और यह लक्ष्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब कि साहित्य समाज को साथ लेकर आगे बढ़े। इन दोनों में किसी भी प्रकार का व्यवधान न हो। और देशों के साहित्य के समान, हमारा हिन्दी साहित्य भी, समय समय पर भिन्न भिन्न सामाजिक गति-विधियों से प्रभावित होता रहा है। समाज में चलने वाली सभी राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक हलचलों के दर्शन, आज हमें, इसमें मिल जाते हैं। अब हम संक्षेप में हिन्दी साहित्य की कुछ प्रमुख धाराओं पर विचार करेंगे और देखेंगे कि उनमें कौन कौन सी नई प्रवृत्तियाँ काम कर रही हैं।

काव्य साहित्य—

भारतेन्दु युग के कलाकारों ने खड़ी बोली के प्रचार में पर्याप्त योगदान दिया, परन्तु उस समय खड़ी बोली का क्षेत्र गद्य साहित्य तक ही सीमित रहा। काव्य में अभी ब्रजभाषा ही सिंहासन पर विराजमान थी। जिस समय खड़ी बोली काव्य साहित्य की भाषा बनी, उस समय साहित्य में द्विवेदी युग ही चल रहा था। द्विवेदी युग की कविता मुख्य रूप से इत्तिवृत्तात्मक थी। उसे हम उच्चकोटि के काव्य साहित्य में नहीं रख सकते। ऐसा होना स्वाभाविक ही था क्योंकि खड़ी बोली में, कविता लिखी जानी प्रारम्भ ही हुई थी। जब आचार्य द्विवेदी आदि विद्वानों के प्रयत्न से खड़ी बोली शुद्ध और परिमार्जित हुई तो

इसका प्रभाव काव्य साहित्य पर भी पड़ा। कविता इतिवृत्तात्मकता से बाहर निकल, एक नवीन कल्पना लोक में विहार करने लगी। यह छायावादी काल था। अब नई नई कल्पनाएँ और नए नए उपमान हमारे सामने आए। शब्दों के अर्थ ही बदल गये। प्रकृति की भिन्न भिन्न वस्तुएँ सचेतन हो उठीं। जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय इत्यादि द्विवेदी युग के प्रमुख कवि थे उसी प्रकार जयशङ्कर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि छायावाद के प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं।

१९३६ ई० के लगभग, समाज पर मार्क्सवाद का जो प्रभाव पड़ा उसके दर्शन हमें साहित्य में भी मिलते हैं। मार्क्सवादी रचनाएँ प्रगतिवाद के अन्दर आती हैं। प्रगतिवादी रचनाओं में हमें वर्ग संघर्ष के चित्र मिलते हैं। कविता में फिर वही द्विवेदी कालीन शुष्कता आ गई। साहित्य के चरम लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुन्दरं की पूर्ण रूप से उपेक्षा की गई। पुरानी मान्यताओं का खण्डन किया गया। प्रगतिवाद ज्यादा देर तक न पनप सका क्योंकि इसके कर्णधार इसको एक विशेष पार्टी के प्रोपेगैन्डा (प्रचार) के मुक्त न कर सके।

श्री अज्ञेय की कविताओं से, हम काव्य साहित्य में एक नई धारा के दर्शन करते हैं। इस धारा को प्रयोगवाद का नाम दिया गया है। यह धारा फ्रायड, एडलर और युंग आदि मनोविश्लेषणवादियों से प्रभावित है। अतः प्रेरणा की दृष्टि से यह छायावाद तथा प्रगतिवाद दोनों से भिन्न हैं। इसमें वस्तु-जगत तथा भाव-जगत से सम्बन्धित नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। कभी कभी इन प्रयोगों का मायाजाल इतना सघन हो उठता है कि साहित्य के चरम लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुन्दरं को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। संक्षेप में प्रयोगवादी कविता की विशेषताएँ यह हो सकती हैं:—

(i) यह रचनाएँ मुख्य रूप से व्यक्तिपरक होती हैं।

(ii) इन रचनाओं में छन्द शास्त्र का पूर्ण रूप से वहिष्कार किया जाता है। इसलिए यह रूखे गद्य के समान लगती हैं।

(iii) प्रयोगवादी रचनाओं में किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह के प्रति एक विद्रोह की भावना है।

(iv) प्रयोगवादी कविताओं के प्रतीक बड़े अजीब होते हैं। उपमेय के स्थान पर, उपमान से भाव चित्र खड़े किए जाते हैं।

(v) इन रचनाओं में कल्पना, भावुकता, तथा नियमबद्धता आदि का पूर्ण अभाव है। इसलिए कभी-कभी यह कविताएँ अत्यन्त भोंड़ी हो उठती हैं।

(vi) वर्तमान परिस्थितियों के फलस्वरूप इस कविता में मानसिक उलझन की अभिव्यञ्जना भी पाई जाती है।

बड़े सन्तोष की बात है कि आज अनेकों कवि इन अभावों की पूर्ति में लगे हुए हैं। जिस दिन ऐसा हो सकेगा, वह दिन हिन्दी साहित्य के लिए अत्यन्त शुभ समझा जाएगा।

गद्य साहित्य

गद्य-साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व हम इसे तीन भागों में विभाजित कर लेंगे:—

(i) कथा साहित्य
(ii) नाट्य साहित्य
(iii) आलोचना साहित्य

और तीनों पर अलग अलग दृष्टि से विचार करेंगे।

(i) कथा साहित्य

कथा साहित्य में हम कहानी तथा उपन्यास दोनों पर एक साथ ही विचार करेंगे। कविता और नाटक की अपेक्षा, कहानियाँ और उपन्यास साहित्य का नवीनतम रूप हैं। इसलिए यह नित्य नई विकास-दिशाएँ अपना रहे हैं। हिन्दी का वर्तमान कथा साहित्य बड़ी तीव्रता ते आगे बढ़ रहा है। जीवन के घात प्रतिघात की प्रतिक्रिया जितनी तीव्रता से कथा साहित्य में अभिव्यक्त हो रही है, उतनी तीव्रता से साहित्य के किसी अन्य अङ्ग में नहीं। कविता में प्रयोगवाद ने अपना विशेष प्रभाव नहीं डाला परन्तु घटनाओं की मनोरंजक क्रियाओं ने कथा साहित्य में एक विकास-अवस्था प्राप्त की है। आज का कथा साहित्य एक ऐसी अवस्था तक पहुँच गया है, जहाँ कि व्यक्ति और उसकी समस्या में अथक संघर्ष है। व्यक्ति अपनी पूरी शक्ति के साथ जीवन से जूझ रहा है। आज व्यक्ति का मस्तिष्क प्रकाश की खोज में है। कथा साहित्य की वर्तमान स्थिति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस की पूर्व-प्रेरणाओं पर भी कुछ विचार करलें।

श्री बटुक के शब्दों, "चूँकि यह कथा साहित्य, कविता और नाटक की विविधताओं भरी गलियों के बीच होकर आया है, इसलिए उसने भाव सत्य, गति और प्रवाहमानता, उक्ति-वैचित्र्य और नीति सत्य, चिरन्तन संघर्ष और करुणा आदि पुराने साहित्य रूपों की शिल्प और वस्तुगत विशेषताओं को अपनाया।"[१]

१—पृष्ठ २, "सारंग", १ अग्रहायण १८८२ शकाब्द।

अपने तीस-चालीस वर्षों के जीवन काल में हिन्दी कथा साहित्य ने सामाजिक जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को चित्रित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न करते हुए बीच बीच में पाठकों को तिलिस्मों की सैर कराई, जासूसी गोरखधन्धे के खेल दिखलाये और भाव-लोक के सुनहले संसार के मनोरम दृश्यों का परिचय दिया। वास्तव में अपनी शैशव और वय:सन्धि की अवस्था तक हिन्दी कथा साहित्य ऐसा ही रहा।

प्रेमचन्द के द्वारा हिन्दी कथा साहित्य को युवावस्था की शक्ति मिली। प्रेमचन्द के युग में इस बात का प्रयास हुआ कि मानव की अन्तरात्मा का उद्घाटन किया जाए। प्रेमचन्द जी ने भारतीय संस्कृति के उस वास्तविक स्वरूप से परिचित कराया, जो जन साधारण के जीवन में घुल-मिल गई थी। पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में ग्राम जीवन की अपेक्षा, नागरिक जीवन अच्छा लगने लगा था। हम ग्राम्य जीवन को निकृष्ट तथा असभ्य समझने लगे थे। प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के द्वारा कला के ऐसे सुन्दर नमूने देश किए कि ग्राम्य जीवन मुखर हो उठा।

प्रेमचन्द जी के पश्चात जयशंकर प्रसाद ने अपनी कहानियों के द्वारा मानव अन्तरात्मा के वह अनूठे और मनोवैज्ञानिक चित्र खींचे कि सभी अश अश कर उठे। दूसरी ओर इन्होंने अपने उपन्यासों में समाज की व्यवस्था का वीभत्स, कराल परन्तु वास्तविक रूप अनावृत करके रख दिया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि दो परस्पर विरोधी सभ्यतायें भी एक केन्द्र बिन्दु पर आकर मिल सकती हैं।

श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने अपनी कृतियों के द्वारा जीवन का संघर्ष हमारे समक्ष प्रस्तुत किया।

श्री भगवती चरण वर्मा ने अपनी कहानियों तथा अपने उपन्यास "चित्र लेखा" के द्वारा सामाजिक परम्पराओं का बोझ उतार फेंकने का साहसपूर्ण कदम उठाया। यह कार्य श्री यशपाल ने भी किया। श्री यशपाल पर तो स्पष्ट रूप से मार्क्सवाद का प्रभाव था।

हिन्दी साहित्य में मनोविश्लेषण प्रधान उपन्यास लाने का श्रेय श्री इलाचन्द जोशी को है जिन्होंने "सन्यासी" तथा इस प्रकार के अन्य उपन्यासों के द्वारा मानव जीवन सम्बन्धी कई ग्रन्थियों को खोला। उन्होंने फ्रायड, एडलर तथा युंग के विचारों से प्रभावित होकर, मानव जीवन के बाह्याभ्यन्तर जगत के संघर्ष का अध्ययन किया और जीवन के नए माप दण्डों के आधार पर नई नैतिक आस्था का अन्वेषण किया।

मार्क्स और फ्रायड आदि का प्रभाव ग्रहण करके जो रचनाएं लिखी गईं,

वे अतिवादी हो गईं। श्री विश्व प्रकाश दीक्षित बटुक के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "राजनैतिक प्रचार और यौन जगत के तथ्यों का उल्लेख करते रहना ही तो साहित्य का उद्देश्य नहीं है।"

आंचलिकता हिन्दी उपन्यास का नवीनतम धरातल है। "दिया जला दिया बुझा," "नैपाल की बेटी", "देवताओं के देश में" "बलचनामा" इत्यादि आंचलिक उपन्यास हैं। आंचलिक उपन्यास किसी विशेष क्षेत्र तक सीमित रहते हैं। इन उपन्यासों में क्षेत्र-विशेष के निवासियों का रहन सहन, वेश-भूषा, भाषा तथा उनकी समस्याओं का वास्तविक चित्रण किया जाता है।

इन आंचलिक उपन्यासों के द्वारा हिन्दी का शब्द भण्डार बढ़ा है। क्षेत्र-विशेष की विभाषाओं तथा बोलियों के शब्दों को हिन्दी ने ग्रहण किया है। परन्तु इन उपन्यासों के द्वारा एक हानि भी हुई है। इन्होंने लेखकों का दृष्टि-कोण बड़ा संकुचित बना दिया है।

(ii) नाट्य साहित्य

बहुत से लोग हिन्दी के नाट्य साहित्य को, बँगला, मराठी आदि भाषाओं से पिछड़ा हुआ मानते हैं। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं। हिन्दी में रंगमंचों की कमी अवश्य है परन्तु वस्तु, परिमाण तथा शिल्प की श्रेष्ठता की दृष्टि से हिन्दी नाट्य साहित्य बहुत आगे है। भारतेन्दु युग से अब तक, हमारा साहित्य सदा परिवर्तनों से प्रभावित रहा है।

भारतेन्दु कालीन लेखकों का प्रेरणा स्रोत, संस्कृत साहित्य ही था। इस काल में मुख्य रूप से संस्कृत की अनेकों रचनाओं का अनुवाद किया गया। भारतेन्दु कालीन नाटकों में हमें विविधता के दर्शन होते हैं। भारतेन्दु कालीन नाटकों का साहित्यिक तथा रङ्गमंचीय दोनों ही दृष्टियों से बड़ा महत्व है। भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों ने हिन्दी रंगमंच के बनाने में पर्याप्त प्रयास किया और समय समय पर स्वयं अभिनय भी किया। यद्यपि शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु कालीन नाटक संस्कृत से प्रभावित हैं, परन्तु विषयों की दृष्टि से इन नाटकों ने नई प्रेरणाएँ ग्रहण की। राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना का प्रभाव नाटकों के विषयों पर भी पड़ा। इसलिए नए नए विषय ग्रहण किये गये।

श्री जयशङ्कर प्रसाद अपने नाटकों के साथ कई नए धरातल भी हमारे सामने लाए। विषय सम्बन्धी परिवर्तनों का श्री गणेश तो भारतेन्दु युग में हो ही चुका था। अब नाटकों में विषय के साथ ही साथ शिल्प सम्बन्धी परिवर्तनों भी हुए। उन्होंने अपने नाटकों में नान्दी पाठ आदि को कोई स्थान नहीं दिया। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा भारत की उज्ज्वल संस्कृति के दर्शन कराये। इनके नाटक राष्ट्रीय जागरण भावों से ओत प्रोत है तथा उनमें

मानसिक अन्तर्द्वन्द की प्रधानता पाई जाती है। प्रसाद जी का 'कामना' नाटक उक्त भावनाओं का प्रतीक है। बाद में श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने भी 'ज्योत्स्ना' नाम का नाटक, इसी ढङ्ग पर लिखा।

श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र ने हिन्दी में समस्यात्मक नाटकों की नींव डाली। इन्होंने अपने नाटकों में भावना की अपेक्षा बुद्धि को ही अधिक महत्व दिया है। मिश्र जी पर इब्सन और बरनार्ड शा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रारम्भ में इन्हें ऐतिहासिक नाटकों से चिढ़ थी परन्तु बाद में इन्होंने कई ऐतिहासिक नाटक भी लिखे।

श्री अश्क, मिश्र जी की भाँति कल्पनाशील नहीं कहे जा सकते। वे अधिक यथार्थवादी हैं। इनके नाटकों में कथोपकथन तथा व्यंग्य बड़ा सजीव होता है। आपके नाटक बोल चाल की भाषा में ही लिखे गए हैं।

हरिकृष्ण "प्रेमी" ने कई ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं परन्तु वे प्रसाद जी के नाटकों के समान उन्नत नहीं हो पाए हैं। प्रेमी जी के नाटकों में गांधी जी की हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्पष्ट झलक पाई जाती है।

सेठ गोविन्ददास तथा विष्णु प्रभाकर के नाटक भी गान्धीवादी विचार धारा से प्रभावित हैं।

आजकल हिन्दी नाट्य साहित्य में एकांकी नाटकों की बाढ़ सी आगई है। एकांकी नाटक लिखने वालों में रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, विष्णु प्रभाकर, उपेन्द्रनाथ "अश्क" आदि के नाम लिए जा सकते हैं। यद्यपि संस्कृत नाट्य साहित्य में भी एकांकी नाटक मिलते हैं परन्तु यह बात निस्संकोच कही जा सकती है हिन्दी के वर्तमान एकांकी नाटकों पर पश्चिम का ही विशेष प्रभाव पड़ा है।

१९२५ ई० के पश्चात आकाशवाणी (रेडियो) ने नाट्य कला का स्वतंत्र तन्त्र ग्रहण किया है। रेडियो नाटक ने नाटक तन्त्र में कई परिवर्तन किए हैं। नाटकों में एकांकी नाटक, रूपक तथा झलकी को रेडियो द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है।

यद्यपि आज आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों पर ही, सबसे अधिक नाटक अभिनीत हो रहे हैं परन्तु समय समय पर, अब भी अभिनय शालाओं में नाटकों के अभिनय की व्यवस्था होती रहती है। विद्यालयों में नाटकों के पठन-पाठन का क्रम भी उसी प्रकार चल रहा है। गोष्ठियों में बैठकर, नाटकों का रस लेने की प्रथा भी अवरुद्ध नहीं हुई।

अन्त में हम डा० दशरथ ओझा के शब्दों में कह सकते हैं कि "आज हिन्दी में मुख्य रूप से चार प्रकार के नाटकों का सृजन प्रचलित है। अधिकांश

नाटक श्रव्य हैं, जो रेडियो के माध्यम से सुने जारहे हैं । द्वितीय श्रेणी में वे नाटक आते हैं जो केवल रंगमंच के लिए ही लिखे जाते हैं, जिन्हें रङ्ग-मन्चीय नाटक कहना चाहिए। तीसरी कोटि के नाटक केवल पाठ्य हैं। उनका न तो कोई अभिनय करना चाहता है और न वे रङ्गमंच पर सफलतापूर्वक खेले जा सकते हैं। चौथी कोटि में वे नाटक आते हैं जिनका अभिनय भी सफल होता है और जो रंगमंच के अभाव में पाठ्यरूप में भी प्रचलित हो सकते हैं। किन्तु ऐसे नाटक अत्यन्त विरल हैं।"[1]

आलोचना साहित्य

कहानी, उपन्यास, नाटक इत्यादि के साथ हमारा आलोचना साहित्य भी काफी समृद्ध हुआ है । ऊपर आदर्शवादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, आदि जिन धाराओं का दर्शन कर आए हैं, वे सब आलोचना साहित्य में भी मिलती हैं। रामचन्द शुक्ल, नन्द दुलारे बाजपेयी इत्यादि आलोचक साहित्य में लोक-मंगल की भावना देखना चाहते हैं। मार्क्सवादी आलोचकों में, डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द गुप्त इत्यादि प्रमुख हैं। इलाचन्द जोशी और अज्ञेय इत्यादि मनोविश्लेषणवादी आलोचक हैं।

यद्यपि ऊपर हमने काव्य साहित्य और गद्य साहित्य के भिन्न-भिन्न युगों और भिन्न-भिन्न धाराओं का वर्णन किया है परन्तु साहित्य को किसी प्रकार के बन्धन में नहीं बांधा जा सकता। काव्य साहित्य में प्रयोगवादी रचनाओं के साथ ही साथ छायावादी, रहस्यवादी, प्रगतिवादी कविताएं अब भी लिखी जा रही हैं। इसी प्रकार गद्य साहित्य में भी राजनीतिक विचारधारा, सामाजिक समस्याएं, ऐतिहासिकता, मनोविश्लेषणवाद आदि सब कुछ मिल जाते हैं। जब तक समाज में कोई समस्या है, जब तक समाज में; एक विशेष प्रकार की विचारधारा के कुछ लोग हैं, तब तक इनके दर्शन साहित्य में होते ही रहेंगे । इसीलिए तो कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण है।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Write an essay on trends in modern Hindi literature.

(२) "साहित्य समाज का दर्पण है"—स्पष्ट करो।

१—पृष्ठ २४, नाटक—पाठ्य या प्रेक्ष्य "देव नागर", भाद्रपाद २०१३ विक्रमी।

(३) हिन्दी साहित्य में कौन कौन सी नई प्रवृत्तियां पाई जाती हैं—संक्षेप से उल्लेख करो।

(४) वर्तमान समाज में कौन कौन सी विचारधाराएं पाई जाती हैं ? इनका काव्य साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(५) आधुनिक विचारधारा का कथा साहित्य तथा नाट्य साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है ? स्पष्ट करो।

(६) What are the modern trends and tendencies in Hindi Poetry ? Examine the suitability of their introduction at the High School stage.

अध्याय १७

पाठ की तैयारी

तैयारी क्यों की जाय

साधारण जीवन में हम देखते हैं कि यदि बालक के मन में किसी वस्तु के प्रति जिज्ञासा उठती है तो वह अपने माता-पिता, गुरुजन अथवा अपने से बड़े भाई बहनों से पूछ कर, उसे शान्त कर लेता है। इस प्रकार धीरे-धीरे बालक का ज्ञान भी बढ़ता जाता है। बालक देखता है कि उसके माता-पिता, बाजार से उसके लिए कपड़ा लाते हैं और कुछ ही दिन बाद, उस कपड़े के वस्त्र सिलकर आ जाते हैं। वह जानना चाहता है कि कपड़े से वस्त्र कैसे बन जाते हैं ? इसी प्रकार किसी बालिका को खीर बहुत अच्छी लगती है। वह जानना चाहती है कि खीर कैसे बनती है। कितना दूध लिया जाए, कितनी चीनी हो, कितने चावल डाले जाएँ। उन्हें कैसे पकाया जाए। बाद में उसमें और कौन-कौन से मेवे डाले जाएँ। यहाँ पर ज्ञान देने वाले को किसी प्रकार की तैयारी की आवश्यकता नहीं पड़ती। न ही उसे इस बात का यत्न करना पड़ता है कि बालक का अवधान प्रस्तुत विषय पर कैसे लगाया जाए। बालक ने जिस विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की है उसमें उसकी रुचि तो रहेगी ही। परन्तु कक्षा शिक्षण का ढंग बिल्कुल अस्वाभाविक है। वहाँ भिन्न-भिन्न रुचि वाले तथा भिन्न-भिन्न बुद्धि वाले बालकों को एक साथ एक ही विषय का ज्ञान कराना होता है। यह कार्य इता सरल नहीं है। सभी बालकों का अवधान पाठ्य-विषय पर केन्द्रित रहे, इसके लिए अध्यापक को पहले से ही तैयारी करनी होगी। तभी वह इस कार्य में सफल हो सकेगा।

तैयारी कैसे की जाए

तैयारी के सम्बन्ध में अध्यापक के लिए दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात यह कि जो विषय उसे पढ़ाना है, उसका उसे पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। कई अध्यापक पाठ प्रणालियों के चक्कर में इतने पड़ जाते हैं कि मूल विषय की ओर दुर्लक्ष करने लगते हैं। वे सोचते हैं कि छोटे बालकों को तो पढ़ाना ही है। बस रंग बिरंगी खड़िया, सुन्दर चित्र और प्रदर्शन सामग्री का प्रबन्ध कर देना ही वे यथेष्ट समझते हैं। विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी के शब्दों में यह तो वही बात हुई कि बाजे हैं, बरात है, सजावट तथा धूमधाम है, केवल दूल्हा ही नहीं है। जैसे सबसे अधिक अनावश्यक वही हो। आधुनिक अध्यापकों का यह आचरण विषय को और भी नीरस बना देता है। अध्यापकों को जब तक विषय का पर्याप्त ज्ञान नहीं होगा, वह सफलतापूर्वक अध्यापन नहीं कर सकेगा।

तैयारी के सम्बन्ध में जो दूसरी बात अध्यापक को याद रखनी है वह यह कि कक्षा के सामने विषय को ठीक प्रकार से उपस्थित किया जाए। विषय को सिखाने का एक निश्चित ढङ्ग होना चाहिए जिससे वह विषय सरलतापूर्वक तथा ठीक-ठीक पढ़ाया जाए। यह अधिक अच्छा होगा, यदि अध्यापक पहले से ही पाठ-संकेत बना ले। इस सम्बन्ध में आमतौर पर हरबार्ट के पंच सोपानों का ही व्यवहार किया जाता है।

हरबार्ट (Herbart) का मनोविज्ञान

हरबार्ट के मतानुसार हमारा मन विचारों का संग्रह मात्र है। जब कोई भी विचार किसी व्यक्ति के मन में आता है तो वह वहीं रहता है और नाश को नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार मन में जितने भी विचार होते हैं, वे मन की ऊपरी सतह पर आने के लिए, आपस में निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। वे अवचेतन मन से चेतन मन में आना चाहते हैं।

विचारों का आपस में सम्बन्ध

हरबार्ट के मतानुसार हमारे विचार आपस में तीन प्रकार से सम्बन्धित होते हैं। इसे हम अनुकूलता, सम्बन्ध हीनता तथा विरोध का नाम दे सकते हैं।

अनुकूलता

मन में जब कोई नया विचार आता है, तब यदि वह किसी पुराने विचार के अनुकूल हो, तो वह उसके साथ मिल कर एक रूप हो जाता है। उन दोनों

में कोई अन्तर नहीं रहता जैसे दूध और पानी अथवा वाद्य-यन्त्रों की भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ। जब दो या दो से अधिक अनुकूल विचार आपस में इस प्रकार मिल जाते हैं तो वे शक्तिशाली हो जाते हैं और दूसरे अनुकूल विचारों को अपनी ओर खींचते हैं।

सम्बन्ध हीनता

यदि कोई नया विचार हमारे मन में आता है और वह पुराने विचारों के अनुकूल नहीं होता तो दोनों विचार मिल तो जाएँगे परन्तु वे एक रूप नहीं हो सकेंगे—जैसे जंजीर की कड़ियाँ। यद्यपि वे आपस में मिली हुई होती हैं परन्तु फिर भी एक दूसरे से अलग अलग हैं।

विरोध

जब कोई नया विचार मन में आता है और वह पूर्व स्थित विचारों से विरोध रखता है तो ऐसी स्थिति में, न तो वह उन के साथ एक रूप हो सकेगा और न दूसरी प्रकार से मिल ही सकेगा। ऐसे विरोधी विचार को, पूर्व स्थित विचार, मन से धकेल कर बाहर कर देंगे।

हरबार्ट के मनोविज्ञान का शिक्षा में प्रयोग

नवीन (अज्ञात) विचारों के प्रति, पूर्व स्थित (ज्ञात) विचारों की प्रतिक्रिया पूर्वानुवर्ती ज्ञान (Apperception) कहलाती है। इसका शिक्षा में बड़ा महत्व है। नया ज्ञान पूर्व ज्ञान के सहारे ही टिक सकता है। यदि बालक को दिया जाने वाला नया ज्ञान उसके पूर्व ज्ञान के अनुकूल हुआ तो ग्रहण कर लिया जाएगा अन्यथा मन के एक कोने में अलग भटकता रहेगा। यदि नया ज्ञान पूर्व ज्ञान का विरोधी हुआ तो बालक का मन उसे ग्रहण नहीं करेगा और वह उसे जल्दी ही भूल जाएगा। पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध रहित नया ज्ञान कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है।

अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे पाठ सामग्री को इस ढंग से व्यवस्थित करें कि उसका सम्बन्ध बालक के पूर्व ज्ञान से हो जाए। इसी की पूर्ति के लिए ही पंच सोपानों की व्यवस्था की गई है।

पंच सोपान

१—प्रस्तावना

नए ज्ञान को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करने के लिए, पाठ के प्रारम्भ में बालकों से दो तीन प्रश्न पूछे जाते हैं अथवा उनके सामने कोई समस्या रख दी जाती है।

प्रस्तावना के द्वारा बालकों के पूर्व ज्ञान को उत्तेजित करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि हम देखते हैं कि थोड़े-थोड़े समय के बाद बालकों को नए-नए विषय पढ़ने पड़ते हैं और उनसे यह आशा कदापि नहीं की जा सकती कि जैसे-जैसे नए विषयों को पढ़ने का समय आएगा तत्सम्बन्धी रुचि एवं जिज्ञासा स्वतः ही जागृत हो जाएगी । बालकों के पूर्व संचित ज्ञान पर कुछ प्रश्न पूछ कर अध्यापक नए ज्ञान के प्रति रुचि और जिज्ञासा जागृत करता है ।

उद्देश्य कथन

प्रस्तावना हो चुकने के पश्चात् पाठ का प्रारम्भ किया जाएगा । परन्तु पाठ को प्रारम्भ करने से पूर्व, बालकों को पाठ का उद्देश्य बताना नितान्त आवश्यक है । किसी कार्य को करने से पूर्व, यदि बालकों को लक्ष्य का ज्ञान न होगा तो पाठ्य-विषय के प्रति उन का अवधान केन्द्रित न हो सकेगा । इसलिए विषय में प्रवेश करने से पूर्व "उद्देश्य कथन" अवश्य होना चाहिए ।

२—उपस्थिति या विषय प्रवेश

इस सोपान में अध्यापक यह बताएगा कि पाठ के सम्बन्ध में उस की योजना क्या है ? वह पाठ को कितनी अन्वितियों (units) में विभाजित कर रहा है ? इस के पश्चात् अध्यापक इस बात का दिग्दर्शन कराएगा कि वह एक अन्विति को किस प्रकार से उपस्थित कर रहा है । एक एक अन्विति को उपस्थित करने का क्रम इस प्रकार रहेगा :—

(i) अध्यापक द्वारा सस्वर आदर्श वाचन

(ii) छात्रों द्वारा व्यक्तिगत (सस्वर अथवा मौन) वाचन

(iii) उस अन्विति पर बोध परीक्षात्मक प्रश्न

परन्तु यह बात ध्यान में रखनी होगी कि कविता में मौन वाचन नहीं होगा क्योंकि जैसे पहले भी कहा जा चुका है, कविता का सम्बन्ध कानों के साथ है । कविता में मौन वाचन करवाना, उस की हत्या करना है ।

"तुलना" और "सिद्धान्त निरूपण", इन दोनों सोपानों की व्यवस्था भी हरबार्ट के अनुयायियों ने की थी । परन्तु विज्ञान तथा गणित के पाठों को छोड़ कर अन्य विषयों में, इन का निर्देश नहीं किया जाता । भाषा की शिक्षा में, इनके स्थान पर निम्नलिखित सोपान रहेंगे :—

३—आत्मीकरण

शिक्षा शास्त्रियों के कथनानुसार, पहले कठिन शब्दों को श्यामपट पर लिख कर, उन का अर्थ विद्यार्थियों द्वारा निकलवाया जाता है । जब विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार से अर्थ का ज्ञान हो जाए तो उन शब्दों का वाक्यों में प्रयोग

करवाया जाता है। विद्यार्थियों को शब्दों का अर्थ सीधे रूप में कभी न बताया जाए, अपितु भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग कर, उन से ही अर्थ निकलवाया जाए, उदाहरण स्वरूप :—

(i) वास्तविक वस्तु को प्रस्तुत करके
(ii) चित्र, मान-चित्र अथवा मूर्ति के द्वारा
(iii) सन्धि या समास को तोड़ कर
(iv) प्रयोग द्वारा
(v) तुलना द्वारा
(vi) प्रश्नों द्वारा
(vii) श्यामपट पर रेखा चित्र बनाकर
(viii) संकेत द्वारा
(ix) व्युत्पत्ति द्वारा
(x) अन्तर्कथा द्वारा
(xi) अभिनय अथवा अंग संचालन द्वारा

४—विचार विश्लेषण

आत्मीकरण के सोपान में जब शब्दों की विस्तृत व्याख्या हो चुके और बालक शब्दों के अर्थ को समझकर, उनको वाक्यों में ठीक ठीक प्रयोग करना सीख लेवें, तब छात्रों से कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाएं जिनसे पठित अंश का पूरा पूरा ब्यौरा निकलवाया जा सके। ऐसे प्रश्नों को विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न कहा जाएगा।

सौन्दर्य-निर्देशन

यहाँ अध्यापक को यह सावधानी, रखनी होगी कि कविता के पाठ में आत्मीकरण तथा विचार-विश्लेषण के स्थान पर सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न पूछे जाएंगे क्योंकि कविता के अन्दर हमारा मुख्य ध्येय कविता के सौन्दर्य का उद्घाटन करना है।

(५) प्रयोग या पुनरावृत्ति

बालकों ने जो ज्ञान अर्जित किया है, वह मन में स्थिर हो सके इसके लिए अन्त में दो तीन प्रश्न पूछ कर पूरे पाठ की आवृत्ति कर ली जाती है। इसी पूर्व अर्जित ज्ञान को स्थिर करने के लिए गृह कार्य की भी व्यवस्था की गई है।

गद्य के पाठ-संकेत की रूप रेखा

दिनाङ्क : कक्षा :
विषय : हिन्दी (गद्य) अवधि :
प्रस्तुत पाठ : समय चक्र :
विद्यालय : औसत आयु :

छात्राध्यापक :

सामान्य उद्देश्य :
मुख्य उद्देश्य :
सहायक सामग्री :
पूर्व ज्ञान :
प्रस्तावना :
उद्देश्य कथन :
विषय प्रवेश : अन्वितिकरण की योजना
(क) वाचन
(i) अध्यापक द्वारा सस्वर आदर्श वाचन
(ii) विद्यार्थियों द्वारा अनुकरणीय वाचन
(ख) बोध परीक्षा प्रश्न
आत्मीकरण :
(क) विस्तृत व्याख्या
(ख) मौन वाचन
(ग) विचार-विश्लेषण प्रश्न
यह बातें दोनों अन्वितियों में होंगी।
पुनरावृत्ति :
(क) आवृत्यात्मक प्रश्न
(ख) गृह कार्य
सहायक पुस्तकें :

कविता के पाठ-संकेत की रूप रेखा

दिनाङ्क : कक्षा :
विषय : हिन्दी (पद्य) अवधि :
प्रस्तुत पाठ : समय चक्र :
विद्यालय : औसत आयु

छात्राध्यापक :

सामान्य उद्देश्य :

विशेष उद्देश्य :

सहायक सामग्री :

पूर्व ज्ञान :

प्रस्तावना :

उद्देश्य-कथन :

विषय प्रवेश : अन्वितिकरण की योजना

(क) वाचन

(i) अध्यापक द्वारा लयानुसार आदर्श वाचन

(ii) छात्रों द्वारा अनुकरणीय वाचन

(ख) भाव परीक्षा प्रश्न :

सौन्दर्य-निर्देशन

(क) सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न

(i) शब्द सौन्दर्य का स्पष्टीकरण

(ii) भाव सौन्दर्य का स्पष्टीकरण

(ख) तुलना के लिए समान भाव की कविता

यह कार्य्य दोनों अन्वितियों में होगा ।

(ग) मूल कविता का फिर से वाचन

पुनरावृत्ति:

(क) आवृत्त्यात्मक प्रश्न

(ख) गृह कार्य

सहायक पुस्तकें

UNIVERSITY QUESTIONS

(१) पाठ देने से पूर्व तैयारी क्यों करनी चाहिए ? यह तैयारी किस प्रकार की होनी चाहिए ?

(२) पाठ की तैयारी में, विद्यार्थियों का पूर्व-ज्ञान जानना क्यों आवश्यक है, हरबार्ट के मनोविज्ञान के अनुसार स्पष्ट करो ।

(३) पाठ-संकेत के निर्माण में, हरबार्ट के किन पंच सोपानों का प्रयोग किया जाता है ? उन पर विस्तार से प्रकाश डालो । हिन्दी भाषा के शिक्षण में, उनमें कौन कौन से परिवर्तन वाँछनीय हैं ।

(४) गद्य तथा पद्य के पाठ-संकेतों की रूप रेखा बनाते हुए स्पष्ट करो कि दोनों में क्या अन्तर है ?

अध्याय १८

पाठ संकेत का विधान

(क) गद्य पाठ—शेरपा तेनसिंह

नगाधिराज हिमालय भारत भाल का विशाल मुकुट है। उसके अनेकों शैल-शृङ्ग हैं। उन सब में उच्चतम शृङ्ग एवरेस्ट के नाम से प्रख्यात है। यह सम्पूर्ण शृङ्ग हिमाच्छादित है। इस पर्वत शृङ्ग का नामकरण सरवेयर जेनरल सर जोन एवरिस्ट के नाम पर सन् १८५२ में हुआ, किन्तु इस चोटी को संसार का उच्चतम शिखर घोषित करने का वास्तविक श्रेय एक भारतीय को ही है। उनका नाम श्री राधानाथ सिकन्दर था। इस पर्वत शिखर के आरोहण के बारह प्रयास हो चुके थे। सब से पहला प्रयास सन् १९३४ में हुआ था। बारहवाँ प्रयास सफलता के निकट पहुँच गया था किन्तु आक्सीजन के अभाव के कारण उन आरोहियों को २८१५ फीट से वापिस आना पड़ा था। यह अभियान स्विरजरलैंड निवासी पर्वतारोहियों के नेतृत्व में हुआ था। इसमें पहली बार हिमकेसरी शेरपा तेनसिंह को अभियान दल के सदस्य होने का महत्व मिला। इससे पूर्व वह एक सहायक भार-वाहक के रूप में जाता था।

चढ़ाइयों पर सच्चा श्रम और अटूट साहस अपना मान स्वयं करा लेता है। सन् १९५३ में कर्नल हृट की अध्यक्षता में एक दल पर्वतारोहणार्थ आया था। इस आंग्ल-देशी दल को भी तेनसिंह के लिए समानता का सम्मान प्रदान करना पड़ा था। तेनसिंह एवं हिलारी के अखण्ड साहस और आत्म-विश्वास के प्रयास ने विश्व को यह दिखा दिया कि परिश्रमी के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं है। तेनसिंह ने युगों से मानव द्वारा अविजित संसार के सर्वोच्च दुर्गम पर्वत शिखर पर विजयपताका फहराई और संसार में भारत-विजय की शंख-

ध्वनि प्रसारित की। हमारे देश के सपूत हिमकेसरी शेरपा तेनसिंह ने दिखा दिया कि साहस के कार्यों में भी भारतीय जन अपना गौरव पूर्ण स्थान रखते हैं।

पाठ—संकेत

दिनाङ्क : ३—१०—५८
विषय : हिन्दी (गद्य)
प्रस्तुत पाठ : "शेरपा तेनसिंह"

कक्षा नवम (ब)
अवधि : ३५ मिनट
औसत आयु : चौदह वर्ष
विद्यालय : सिन्धी मॉडल हाई स्कूल, आगरा।

छात्राध्यापक : कु० का० शर्मा

सामान्य उद्देश्य:—(१) छात्रों के शब्द भण्डार तथा सूक्ति भण्डार की वृद्धि करना।
(२) उनमें स्पष्ट अर्थ समझने की शक्ति का विकास करना।
(३) उनमें अर्जित ज्ञान को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।
(४) उन्हें इस योग्य बनाना कि वे शुद्ध वाचन कर सकें।
(५) उनमें पाठ के भाव को भली-भाँति समझ कर दूसरों को समझाने की योग्यता उत्पन्न करना।

विशेष उद्देश्य:—एवरिस्ट विजय का प्रयास करने वाले भिन्न भिन्न व्यक्तियों के कार्यों से अवगत कराकर, विद्यार्थियों में तेनसिंह का महत्व प्रदर्शित करते हुए, श्रम एवं साहस की भावनाएँ जाग्रत करना।

सहायक सामग्री:—(१) श्री तेनसिंह व हिलारी का पर्वत पर चढ़ते समय का चित्र।
(२) श्री तेनसिंह का एवरिस्ट की चोटी पर ध्वजारोहण करते समय का चित्र।

पूर्व ज्ञान:—विद्यार्थी हिमालय पर्वत, एवरिस्ट की चोटी से पूर्व परिचित हैं तथा तेनसिंह का नाम भी समाचार पत्रों और आकाशवाणी के द्वारा सुन चुके हैं।

प्रस्तावना:—प्रस्तावना में निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर पूछा जायगा :—

(१) भारत का सबसे ऊँचा पर्वत कौन सा है ?

(२) हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी का क्या नाम है ?

(३) इस चोटी पर चढ़ने का किस-किस ने प्रयास किया ?

उद्देश्य कथन—आज हम पढ़ेंगे कि एवरिस्ट की चोटी पर चढ़ने का प्रयास किस-किस ने किया तथा शेरपा तेनसिंह वहाँ पहुँचने में कैसे सफल हुए।

विषय प्रवेश—आज का पाठ, अध्यापक द्वारा दो अन्वितियों में विभाजित किया जायगा।

प्रथम अन्विति—नागाधिराज हिमालय······रूप में जाता था।

द्वितीय अन्विति—चढ़ाइयों पर······गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं।

आदर्श वाचन—(क) अध्यापक द्वारा सम्पूर्ण गद्यांश का उचित आरोह-अवरोह सहित, धाराप्रवाहक, प्रभावोत्पादक, स्वाभाविक, भाव पूर्ण, सस्वर वाचन।

प्रथम अन्विति

नागधिराज हिवालय·····················रूप में जाता था।

(ख) अध्यापक द्वारा प्रथम अन्विति का भाव पूर्ण सस्वर वाचन।

(ग) विद्यार्थियों द्वारा प्रथम अन्विति का अनुकरणीय वाचन।

अध्यापक छात्रों के अशुद्ध उच्चारणों को शुद्ध करेगा।

बोध परीक्षा

अध्यापक निम्नलिखित पश्न पूछेगा :—

(१) हिमालय को नगाधिराज क्यों कहा जाता है ?

(२) इसका सबसे उच्च शिखर किस नाम से प्रसिद्ध है ?

आत्मीकरण

शब्द	अर्थ-विधि	श्यामपट कार्य्य
नगाधिराज	(क) सन्धि विच्छेद (ख) उदाहरण द्वारा	नग+अधिराज पर्वतराज, गिरिराज
मुकुट	प्रदर्शन द्वारा	
भार-वाहक	प्रयोग द्वारा	हर स्टेशन पर यात्रियों की सुविधा के लिए **भार-वाहक** रहते हैं।
आक्सीजन	अर्थ द्वारा	प्राण वायु
शैल	पर्याय द्वारा	पर्वत, पहाड़, नग
हिमाच्छादित	सन्धि विच्छेद द्वारा	हिम+आच्छादित

लिखित एवं निरीक्षण कार्य—अध्यापक, विद्यार्थियों को श्यामपट कार्य, अपनी अभ्यास पुस्तिका पर लिखने के लिए कहेगा और स्वयं इसका निरीक्षण करेगा।

मौन वाचन—प्रथम अन्विति का भाव हृदयंगम करने के लिए विद्यार्थी मौन वाचन करेंगे।

विचार विलेश्षण—अध्यापक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा—

१—इस पर्वत शृंग का नामकरण किस प्रकार हुआ ?

२—एवरिस्ट की चोटी पर चढ़ने के कितने प्रयास किए गए ?

३—बारहवें प्रयास वाला दल, बीच से ही क्यों लौट आया ?

४—तेनसिंह को बराबरी का सम्मान कैसे मिला ?

द्वितीय अन्विति

चढ़ाइयों पर..........................गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं।

आदर्श वाचन—(क) अध्यापक द्वारा द्वितीय अन्विति का भावपूर्ण सस्वर वाचन।

(ख) विद्यार्थियों द्वारा द्वितीय अन्विति का अनुकरणीय वाचन।

(ग) अध्यापक छात्रों के अशुद्ध उच्चारणों को शुद्ध करेगा।

बोध परीक्षा—अध्यापक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा—

१—सन् १९५३ में हिमालय पर जाने वाले दल का अध्यक्ष कौन था ?

२—शेरपा तेनसिंह ने भारत के गौरव को किस प्रकार बढ़ाया ?

आत्मीकरण

शब्द	अर्थ विधि	श्यामपट कार्य्य
पर्वतारोहणार्थ	सन्धि विच्छेद	पर्वत+आरोहण+अर्थ
श्रम	प्रयोग द्वारा	गरीब लोग श्रम करके अपना पेट पालते हैं।
प्रयास	पर्याय द्वार	यत्न, प्रयत्न, कोशिश।
असाध्य	विलोम द्वारा	साध्य
शंख	प्रदर्शन द्वारा	
पताका	प्रयोग द्वारा	भारत की राज्य-पताका तिरंगी है।

लिखित एवं निरीक्षण कार्य—अध्यापक विद्यार्थियों को श्यामपट कार्य्य, अपनी अभ्यास पुस्तिका पर लिखने का आदेश देगा एवं इसका निरीक्षण करेगा।

मौन वाचन—विद्यार्थी द्वितीय अन्विति के भाव को हृदयंगम करने के लिए मौन वाचन करेंगे।

विचार-विश्लेषण—अध्यापक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा—

१—तेनसिंह ने संसार के किस अजेय कार्य को किया ?

२—तेनसिंह ने भारत तथा अन्य देशों को क्या सिखाया ?

३—तेनसिंह को हिम-केसरी क्यों कहा गया है ?

पुनरावृत्ति

(क) **आवृत्यात्मक प्रश्न**—(१) एवरिस्ट का नामकरण किस प्रकार हुआ ?

२—तेनसिंह ने किस प्रकार भारत के गौरव की रक्षा की ?

(ख) **गृह कार्य**—तेनसिंह की एवरिस्ट विजय पर संक्षिप्त निबन्ध लिखो।

(ख) व्याकरण पाठ

दिनाङ्क । १८-१२-५४ **कक्षा ८ (अ)**

विषय : हिन्दी व्याकरण **अवधि** : ४० मिनट
प्रस्तुत : पाठ कर्मधारय, द्विगु और **औसत आयु** १३ वर्ष
द्वन्द्व समास **विद्यालय** : आदर्श कन्या विद्यालय
छात्राध्यापिका—वेणी शर्मा नारनौल

सामान्य उद्देश्य—१—छात्राओं को व्याकरण की सहायता से शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा को व्यवहार में लाने के लिए समर्थ बनाना।

२—छात्राओं में नवीन शब्द-निर्माण की क्षमता उत्पन्न करना।

३—छात्राओं में भाषा तथा उसके अङ्गों और उपाङ्गों की रचना समझने की योग्यता उत्पन्न करना।

४—उनमें किसी प्रयोग की शुद्धि अथवा अशुद्धि की युक्ति सहित विवेचन की क्षमता उत्पन्न करना।

मुख्य उद्देश्य—छात्राओं को व्याकरण में समास के कर्मधारय, द्वन्द्व और द्विगु नामक भेदों का ज्ञान कराना।

सहायक सामग्री—सामान्य कक्षोपयोगी उपकरण।

पूर्व ज्ञान—छात्राओं को समास की परिभाषा तथा उसके भेदों के विषय में पढ़ाया जा चुका है।

प्रस्तावना—छात्राध्यापिका छात्राओं से उनके पूर्व-ज्ञान के आधार पर निम्नलिखित प्रश्न करेगी।

१—समास किसे कहते हैं ?
२—समास कितने प्रकार के होते हैं ?
३—समास के भेदों के नाम बताओ ?

उद्देश्य कथन—आज हम इनमें से द्वन्द्व, द्विगु और कर्मधारय नामक भेदों के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

प्रथम अन्विति

(द्वन्द्व समास)

छात्राध्यापिका श्यामपट पर निम्नलिखित वाक्य लिखकर सामासिक पद छटवाएगी।

वाक्य : माता-पिता की आज्ञा का पालन करो।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है ?

उत्तर—"माता-पिता"।

प्रश्न—माता-पिता का विग्रह किस प्रकार करोगी ?

उत्तर—"माता और पिता"।

वाक्य—रात-दिन ईश्वर का ध्यान करो।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है ?

उत्तर—"रात-दिन"

प्रश्न—"रात-दिन" में कौन सा शब्द छिपा है ?

उत्तर—"और"।

वाक्य : यश अपयश की चिन्ता मत करो।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है ?

उत्तर—"यश-अपयश"।

प्रश्न—यश और अपयश के बीच में किस शब्द का लोप है।

उत्तर—"और" शब्द का।

सिद्धान्त निरूपण—जिस सामासिक पद के बीच में "और" शब्द का लोप होता है, उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। इस में दोनों पद प्रधान होते हैं।

प्रयोग—छात्राध्यापिका नीचे लिखे वाक्यों को श्यामपट पर लिख कर छात्राओं से विग्रह सहित द्वन्द्व समास छँटवाएगी।

वाक्य—(१) भाई-बहन का प्रेम सच्चा होता है।

(२) जीवन में सुख-दुःख आते ही रहते हैं।

(३) मालती खीर-पूड़ी खाती है।

द्वितीय अन्विति

(द्विगु समास)

छात्राध्यापिका श्यामपट पर निम्नलिखित वाक्य लिख कर छात्राओं से सामासिक पद छटवाएगी :—

वाक्य—श्रीरामचन्द्र जी द्वारा धनुष तोड़ने पर, उसकी आवाज त्रिभुवन में गूंज उठी।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है ?

उत्तर—त्रिभुवन

प्रश्न—त्रिभुवन किन शब्दों के योग से बना है ?

उत्तर—त्रि+भुवन से।

प्रश्न—इस में प्रथम पद व्याकरण के अनुसार क्या है ?

उत्तर—"संख्या वाचक"

वाक्य—विक्रमादित्य के दरबार में नव-रत्न रहते थे।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है ?

उत्तर—"नव-रत्न"।

प्रश्न—इसमें प्रथम पद व्याकरण के अनुसार क्या है ?

उत्तर—"संख्या वाचक"।

सिद्धान्त निरूपण—जिस सामासिक पद में प्रथम पद संख्या-वाचक होता है, उसे द्विगु समास कहते हैं। इस में उत्तर पद प्रधान होता है।

प्रयोग—छात्राध्यापिका निम्नलिखित वाक्यों को श्यामपट पर लिखकर छात्राओं से विग्रह कराते हुए द्विगु समास छटवाएगी।

वाक्य—आकाश में **नव-ग्रह** होते हैं।

विश्व में **सप्त सिन्धु** प्रसिद्ध हैं।

तृतीय अन्वित

(कर्मधारय समास)

छात्राध्यापिका श्यामपट पर नीचे लिखे वाक्य लिखकर, छात्राओं से सामासिक पद छटवाएगी।

वाक्य—**मृदु-वचन** बोलना सदैव अच्छा होता है।

प्रश्न—इस वाक्य में कौन सा सामासिक पद है

उत्तर—मृदु-वचन।

प्रश्न—"मृदु" शब्द व्याकरण में क्या कहलाता है।

उत्तर—विशेषण।

प्रश्न—"मृदु" शब्द किस की विशेषता बताता है ?

उत्तर—"वचन" शब्द की।

प्रश्न—मृदु-वचन, किस-किस शब्द विभाग से बना है ?

उत्तर—विशेषण और विशेष्य से।

सिद्धान्त निरूपण—जब कोई सामासिक पद विशेषण और विशेष्य के मेल से बनता है तो उसे कर्मधारय समास कहते हैं।

प्रयोग—छात्राध्यापिका नीचे लिखे वाक्यों में से, छात्राओं द्वारा कर्मधारय समास छटवाएगी।

वाक्य—श्रीकृष्ण **पीताम्बर** पहने हुए थे।

नील-गगन में चन्द्रमा निकल रहा है।

पुनरावृत्ति

(क) आवृत्यात्मक प्रश्न—१—जब दो शब्दों के बीच से "और" शब्द का लोप हो, तो वहाँ कौन सा समास होता है ?

२—द्विगु समास किसे कहते हैं ?

३—जब सामासिक पद विशेषण और विशेष्य के योग से बनता है, तो वहाँ कौन सा समास होता है ?

गृह कार्य—द्वन्द्व, द्विगु और कर्मधारय समासों के तीन-तीन उदाहरण लिखकर लाओ।

(ग) हिन्दी निबन्ध

दिनाङ्क : १४-६-५६
कक्षा ७ (ब)
विषय : हिन्दी निबन्ध
अवधि : ३५ मिनिट
प्रस्तुत पाठ : ताजमहल
विद्यालय : डी० ए० वी० हाई स्कूल, आगरा।

छात्राध्यापक : ह० च० मिश्र

सामान्य उद्देश्य—१—छात्रों के विविध विषयों के ज्ञान की वृद्धि करना।

२—उनकी तर्क शक्ति और विचार शक्ति का विकास करना।

३—छात्रों की रचनात्मक वृत्ति को सचेष्ट करना।

४—छात्रों के अस्त व्यस्त विचारों को एक व्यवस्था देना और उन में, क्रमबद्ध रूप से किसी विषय पर सोचने की क्षमता उत्पन्न करना।

मुख्य उद्देश्य—छात्रों को ताजमहल के विषय में विस्तृत विवरण देकर, उन से निबन्ध लिखवाना।

सहायक सामग्री—ताजमहल के अनेकों चित्र, तथा ताजमहल की मूर्ति।

पूर्व ज्ञान—छात्रों ने ताजमहल, सिकन्दरा, तथा दयाल बाग आदि अनेकों स्थानों की समाधियाँ देखी हुई हैं।

प्रस्तावना—छात्राध्यापक निम्नलिखित प्रश्न पूछेगा :—

१—आगरा में कौन कौन सी प्रसिद्ध समाधियाँ हैं ?

२—वह कौन सी समाधि है जिसे देखने के लिए लोग दूर दूर से आते हैं ?

उद्देश्य कथन—आज हम ताजमहल के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त करेंगे और उस पर एक निबन्ध लिखेंगे।

विषय विस्तार—अध्यापक प्रश्नोत्तर द्वारा पाठ का विकास करेगा और जैसे जैसे निबन्ध का विकास करेगा, उसकी रूप रेखा श्यामपट पर लिखता जाएगा।

विकासात्मक प्रश्न—१—ताजमहल कहाँ पर स्थित है ?

२—ताजमहल का निर्माण किसने कराया ?

३—उसने ताजमहल का निर्माण क्यों कराया ?

अध्यापक द्वारा पूर्ति—ताजमहल, आगरा में यमुना के किनारे स्थित है। इसे १६३१ ई० में शाहजहाँ ने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज महल की यादगार में बनवाया। मरने से पूर्व मुमताज की इच्छा—उसके प्रेम की स्मृति स्वरूप ऐसा भवन जो संसार में अद्वितीय हो।

विकासात्मक प्रश्न—१—ताजमहल का निर्माण, किस प्रकार के पत्थर से हुआ है ?

२—इसे बनने में कितना समय लगा होगा ?

३—इसे बनाने में कितने लोगों ने काम किया होगा ?

४—ताजमहल बनाने वाले मजदूरों को शाहजहाँ ने क्या पुरस्कार दिया होगा ?

अध्यापक द्वारा पूर्ति—सफेद संगमरमर के पत्थर से ताजमहल का निर्माण—२० वर्ष समय—२० लाख मजदूर—तथा करोड़ों रुपयों का व्यय-निर्माण के पश्चात् मजदूरों के हाथ कटवाना—वे ऐसी कोई और इमारत न बना सकें।

विकासात्मक प्रश्न—१—ताजमहल में घुसने पर हमें क्या क्या दिखाई देता है ?

२—मुमताज महल और शाहजहाँ की कब्र कहाँ पर हैं ?

३—वहाँ पर हमें कारीगरी का कौन सा नमूना मिलता है ?

४—ताजमहल के आस पास का दृश्य कैसा है ?

५—शरद पूर्णिमा की रात को लोग ताजमहल में क्यों आते हैं ?

६—संसार की सुन्दर इमारतों में ताजमहल का क्या स्थान है ?

अध्यापक द्वारा पूर्ति—

अन्दर घुसने पर पहले लाल पत्थर का द्वार—रंग बिरंगी मछलियों वाला जलाशय—जलाशय में सुन्दर कमल के फूल—चार कब्रें, दो ऊपर, दो नीचे—असली कब्रें नीचे—कब्रों के चारों ओर सुन्दर जालीदार परकोटा—स्थान-स्थान पर सुन्दर चित्रकारी तथा फूलों की खुदाई—मुमताज की कब्र पर कुरान की आयतें—शाहजहाँ की कब्र पर आयतों का न होना—औरंगजेब इसका विरोधी ···ताजमहल के चारों ओर सुन्दर उद्यान जहाँ तरह-तरह के पौधे, फूल आदि···शरदपूर्णिमा की रात्रि को ताजमहल का सौन्दर्य अनेकों गुना बढ़ जाता—सफेद संगमरमर चाँदी के समान चमकता······इस सुन्दरता के कारण ताज का स्थान संसार के सात आश्चर्यों में—देश-विदेश सभी स्थानों के लोग इसके दर्शनों के लिए आते।

श्यामपट कार्य—

पाठ के विकास के साथ ही साथ, श्यामपट पर निबन्ध की जो रूप रेखा लिखी जाएगी वह इस प्रकार होगी :—

ताजमहल

रूपरेखा—

१—**प्रस्तावना**—भारत के भिन्न-भिन्न नगरों में अनेकों प्रसिद्ध इमारतें—ताजमहल का विशेष स्थान—लोग दूर दूर से इसे देखने को आते।

२—**स्थिति**—आगरा में—यमुना के किनारे।

३—**निर्माण**—सफेद संगमरमर—अपनी प्रेमिका की यादगार—करोड़ों रुपयों की लागत, लाखों मजदूर तथा २० वर्ष का समय।

४—**सौन्दर्य**—सुन्दर जलाशय, उद्यान, जाली का परकोटा, दीवाल पर खुदे फूल, खूबसूरत चित्रकारी, सुन्दर हस्ताक्षर में कुरान की आयतें—शरद पूर्णिमा की रात्रि को सफेद पत्थरों का चाँदी जैसे चमकना।

५—**उपसंहार**—इस सुन्दरता के कारण, इसकी गिनती संसार के सात आश्चर्यों में—देश विदेश सभी स्थानों से लोग देखने आते।

निबन्ध लेखन—

पाठ का विकास हो चुकने के पश्चात, उपरोक्त रूप रेखा के आधार पर, बालकों से निबन्ध लिखने के लिए कहा जाएगा।

(घ) नाटक का पाठ

अन्तर की पुकार

एक दृश्य

दृश्य—(गर्म जलते हुए लोहे के लाल खम्भे से बालक प्रह्लाद लोहे की जंजीरों से बँधे हुए हैं । सामने भयंकर क्रोध और गर्व की मुद्रा में चमकती हुई तलवार लिये हिरण्यकश्यप राजसिंहासन पर बैठा हुआ है, कुछ दूरी पर दो चार सिपाही हाथ में भाला लिये और जलती हुई मशाल लिए खड़े हैं ।)

बालक प्रह्लाद—पिताजी ! आप व्यर्थ में क्रोध कर अपनी शक्ति का ह्रास कर रहे हैं । ईश्वर की महान् शक्ति से बढ़कर कोई शक्ति नहीं । आपका अपने आपको ईश्वर घोषित करना कोरा दम्भ है । ईश्वर ने आपको राजा इसलिए नहीं बनाया कि आप सबका गला घोंटें और लोगों पर अत्याचार और अन्याय करें । राजा ईश्वर के रूप में जनता का कल्याण करता है । अतः आप भी उन्हें राम की पूजा करने दें ।

हिरण्यकश्यप—चुप रह ! फिर वही हठ की, लोगों को तेरे राम की पूजा करने दूँ । ईश्वर होता कौन है जो मेरे राज-काज में हस्तक्षेप करे । मैं ऐसे ईश्वर को मिट्टी में मिला दूँगा और साथ में तुझे भी जो फिर उसका नाम लिया ।

प्रह्लाद—क्यों ऐसा सोचते हो पिताजी ? क्यों अपने विनाश को अपने हाथों निमंत्रण दे रहे हो ? क्यों निरीह नर, नारी, साधु, सन्त, वृद्ध और बालक के खून से अपने हाथ रंगते हो । इसमें क्या हानि है यदि वे राम का नाम लेते हैं ? अच्छा होगा यदि आप भी उस राम को पाने का प्रयत्न करें और सत्य मार्ग पर चलकर पृथ्वी में स्वर्ग लावें । देवता तब पृथ्वी की पूजा करेंगे ।

हिरण्यकश्यप—(भयंकर अट्टाहास करता हुआ) मैं और राम की पूजा करूँ अरे राम तो क्या सारे देवता और देवियाँ मेरे यहाँ दास बनकर रहें—यदि मेरी तलवार एक बार उठ जाय ।

प्रह्लाद—राम राम ! अब भी आपको अपनी शक्ति का यह गर्व । जिस बालक को आप अपनी शक्ति से मिटाने चले थे उसे तो मिटा न सकें । होली की भयंकर ज्वालाएँ उसके लिए जल सरोवर हो गईं, पर्वत की नुकीली चट्टानें उसके लिए पुष्प शय्या हो गईं और आज आपने मुझे तपते लोहे के खंभे से बाँध दिया तो ऐसा लगता है मानो कोमल कदली (केला) वृक्ष के सहारे खड़ा हूँ और ऊपर से जल की बूँदें पड़ रहीं हैं । तब भी आप आँखे रहते देखना तो दूर रहा अपनी शक्ति का दम्भ भरते हैं ।

हिरण्यकश्यप—चुप रह ! यह सब इसलिए कि मैंने तुझे एक दम मरने नहीं दिया, मेरा मोह जाग जाता था और हर बार तुम बच जाते थे । पर तू इतना दुष्ट है कि अब भी राम को पुकारता है । उसे मुझसे बड़ा बतलाता है । देखता हूँ अभी कि कौन बड़ा है ।

प्रह्लाद—(प्रसन्न मुद्रा में) मैं तो यही कहूँगा कि राम बड़े हैं और आपको उनके समक्ष झुकना पड़ेगा । वे मेरी पुकार पर मेरी रक्षा अवश्य करेंगे । भले ही आप मुझे मारें ।

हिरण्यकश्यप—तो बुलाले अपने राम को तू ! (कहता हुआ तलवार का तेज वार बड़े क्रोध और गर्जन के साथ प्रह्लाद की गर्दन पर करता है । तलवार खंभे से टकरा कर झन झनाकर टूट जाती है । खम्भे में से भगवान् "नरसिंह" प्रकट होते हैं और प्रह्लाद को अपनी ओर खींच लेते हैं ।)

प्रह्लाद – देखा ! आत्म विश्वास के बल को ! मेरे राम का यह स्वरूप जो आपका काल बनकर आया है । अब भी समय है यदि अपने पापों को स्वीकार कर क्षमा माँग लो ।

हिरण्यकश्यप—(क्रोध में पागल होकर) अच्छा तो यह है । तेरा राम अभी तुझे और तेरे राम दोनों को यम लोक पहुँचा देता हूँ । (पुनः पूरी शक्ति से दोनों पर आक्रमण करता है । नरसिंह भगवान् उसे पकड़ कर गोद में डाल लेते हैं और उसके पेट को अपने पैंने और तेज नाखूनों से चीरने लगते हैं ।)

हिरण्यकश्यप—पराजित हुआ ! आज मै अपने पुत्र से—नहीं राम से··· इसलिये हे राम मुझे तो सजा चाहे देना, पर इस बालक की रक्षा करना । और······(अन्तिम बात नहीं कह पाया और उसके प्राण निकल गये ।)

नरसिंह भगवान्—(प्रह्लाद को स्नेह से गोद में बिठाते हुए एवं आशीष देते हुए) जाओ विश्व में राम का सन्देश पहुँचाओ और सदैव राम के साथ अमर रहो ! तथा अब जब पुकारोगे मैं अवश्य आऊँगा । (नरसिंह भगवान् का अदृश्य होना)

(प्रह्लाद के बाहर निकलने पर जनता द्वारा गगन भेदी स्वर में राम की जय; 'प्रह्लाद की जय' से उसका स्वागत)

पाठ संकेत

दिनांक :—११. २. ५५ **कक्षा** :—८

विषय :—हिन्दी (नाट्य-पठन) **प्रस्तुत पाठ** "अन्तर की पुकार"

समय विभाग :—चतुर्थ **विद्यालय** रा. स्वा. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दयाल बाग, आगरा ।

अवधि :— ४० मि०

अध्यापक :— देवदत्त शर्मा **औसत आयु** :—१४ वर्ष ।

सामान्य उद्देश्य :—१—भाषा का ज्ञान बढ़ाते हुए विभिन्न प्रकार के मनुष्यों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कराना तथा बालकों में रसानुभव एवं सौन्दर्य आत्म-सात करने की शक्ति का यथातथ्य विकास कराना।

२—अवसर के अनुकूल वार्त्तालाप और आचरण सिखाना तथा मानव चरित्र का अध्ययन करना।

३—जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, दशाओं और मानसिक अवस्थाओं से परिचित कराना तथा उन अवस्थाओं में कैसा व्यवहार करना आवश्यक है इसकी शिक्षा देना।

४—सम्यक रीति से उच्चारण करने, बोलने, अभिनय करने तथा भाव युक्त करने की कला का ज्ञान कराना।

विशिष्ट उद्देश्य :—बालकों को प्रह्लाद के ईश्वर प्रेम एवं आत्म विश्वास के लिए अनेकों कष्ट उठाने का बोध कराना।

पूर्व ज्ञान :—छात्रों को भारतवर्ष के अनेकों ऐसे बालकों के विषय में ज्ञान है जिन्होंने ईश्वर की भक्ति के लिये सब कुछ त्याग दिया और अनेकों कष्ट सहे।

सहायक सामग्री :—१–हिरण्यकश्यप के राज दरबार का चित्र,
२–नरसिंह भगवान का राज दरबार में प्रकट होना।

प्रस्तावना—प्र० १—ईश्वर भक्त बालक भारतवर्ष में कौन कौन हुए हैं ?
प्र० २—राम की पूजा करने पर किस बालक को अपने पिता से टक्कर लेनी पड़ी ?

उद्देश्य कथन—आज हम हिरण्यकश्यप और उसके पुत्र प्रह्लाद के विषय में पढ़ेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार उसने अपने पुत्र को राम की पूजा करने के कारण कितने कष्ट दिये और किस प्रकार अन्त में प्रह्लाद की विजय हुई।

प्रस्तुतीकरण—पिताजी ! आप·········उसका स्वागत।

आदर्श नाट्य प्रणाली—अध्यापक स्वयं सभी पात्रों का वाचिक और आंगिक अभिनय करते हुये आदर्श नाटक का पाठ करेगा। तदुपरांत छात्रों द्वारा नाटक का पाठ होगा जिससे शब्दोच्चारण छात्र शुद्ध रूप से कर सकें।

कक्षा अभिनय—अलग अलग विद्यार्थियो द्वारा भिन्न भिन्न पात्रों का अभिनय ।

अभिनय के पश्चात छात्रों से अधोलिखित प्रश्न पूछे जाएंगे

प्र० १—प्रह्लाद के चरित्र में क्या क्या विशेषतायें थीं ?

प्र० २—हिरण्य कश्यप का चरित्र कैसा था ?

प्र०३—प्रह्लाद को जनता क्यों चाहती थी ?

प्र० ४—इस नाटक में तुम्हें कौन कौन से भाव मिलते हैं ?

आदर्श पाठ—अध्यापक द्वारा नाटक का आदर्श पठन ।

पुनरावृत्ति—प्र० १—प्रह्लाद ने किस प्रकार अपने पिता को समझाया ?

प्र० २—प्रह्लाद ने ईश्वर भक्ति के लिये कौन कौन से कष्ट उठाये ?

प्र० ३—इस पाठ से हमें क्या-क्या शिक्षायें मिलती हैं ?

प्र० ४—ऐसे किस और बालक के विषय में तुम जानते हो जिसने ईश्वर भक्ति के लिये कष्ट उठाये ?

श्यामपट कार्य—कठिन शब्दों के निर्देशन विद्यार्थियों की सहायता से किया जायगा ।

गृह कार्य—प्रह्लाद के जीवन से हमें क्या शिक्षायें मिलती हैं ?

(च) कविता का पाठ

ओरछा नृपति की वीरता

(१)

ओरछा नृपति वह वीर सुभट
दाँतों में हय की बाग थाम
दोनों हाथों में महा काल
तलवार—कालिका मूठ थाम

(२)

उन्मत्त बना कर्तव करता
घुस गया शत्रु के संगर में,
सब काट-काट कर पाट दिए
जो पड़े सामने संगर में

(३)

कुछ बुन्देलों का विकट काट
कुछ भूपति का उन्मत्त रोष
डट सकी न दारा की सेना
सुन भीषण 'हर हर' महाघोष

(४)

तब देख पलायन सेना का
दारा ने अपना हाथ बढ़ा
ललकार पुकारा वीरों को
अपना हय आगे दिया बढ़ा

(५)

लौटो लौटो मेरे शेरो
है तेग तबर की आन तुम्हें
जी लो जी लो मर कर जी लो
जीने पर रहे गुमान तुम्हें

(६)

उत्साह बढ़ाकर वीरों को
दारा ने रण में रेल दिया
उनके प्राणों का मोह भगा
जलती-ज्वाला में ठेल दिया

पाठ संकेत

कक्षा—सातवीं **दिनाङ्क**—६-१०-५८
विषय—हिन्दी (पद्य) **अवधि**—४० मिनट
प्रस्तुत पाठ—"ओरछा नृपति की वीरता" **औसत आयु**—१२ वर्ष
विद्यालय—आर० ई० आई० विद्यालय, दयालबाग

छात्राध्यापक—म० प्र० वाजपेयी

सामान्य उद्देश्य—१—छात्रों में उचित स्वर, प्रवाह और भावपूर्ण रीति से कविता पढ़ने की आदत डालना।
२—बालकों की कल्पना शक्ति का विकास करना।
३—छात्रों के मन में काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
४—कवि की अनुभूतियों, आदर्शों एवं कल्पनाओं को बालकों तक पहुँचाने का यत्न करना।

विशेष उद्देश्य—बालकों को ओरछा नृपति चम्पतराय की वीरता का ज्ञान करा कर, उनके हृदय में वीर रस का परिपाक करना।

सहायक सामग्री—ओरछा नृपति का युद्ध करते समय चित्र।

पूर्व ज्ञान—बालक इससे पूर्व वीर रस की कई कविताएं पढ़ चुके हैं।

प्रस्तावना—छात्राध्यापक नीचे लिखी कविता का पाठ करेगा और प्रश्न पूछेगा।

"चढ़ चेतक पर तलवार उठा।
रखता था भूतल पानी को॥
राणा प्रताप सिर काट काट।
करता था सफल जवानी को॥

क्षण मार दिया कर कोड़े से।
रण किया उतर कर घोड़े से॥
राणा रण-कौशल दिखा दिखा।
चढ़ गया उतर कर घोड़े से॥"

प्रश्न—१—चेतक पर सवार हुआ राणा क्या कर रहा था ?

२—राणा युद्ध में किस प्रकार लड़ रहा था ?

३—यह युद्ध किस किस के बीच हो रहा था ?

उद्देश्य कथन—आज हम इसी प्रकार की एक अन्य कविता पढ़ेंगे जिसमें बुन्देले वीर, ओरछा नृपति चम्पत राय की वीरता का कथन किया गया है।

विषय प्रवेश—छात्राध्यापक सम्पूर्ण पाठ को दो अन्वितियों में विभक्त करेगा।

प्रथम अन्विति ओरछा नृपति······महाघोष

द्वितीय अन्वति तब देख······ठेल दिया

वाचन—(क) छात्राध्यापक द्वारा सम्पूर्ण कविता का भाव पूर्ण एवं लयानुसार, सस्वर आदर्श वाचन।

प्रथम अन्विति

ओरछा नृपति···················महाघोष।

(ख) छात्राध्यापक द्वारा प्रथम अन्विति का भाव पूर्ण लयानुसार सस्वर आदर्श वाचन।

(ग) छात्रों द्वारा प्रथम अन्विति का अनुकरणीय वाचन।

छात्राध्यापक बालकों के अशुद्ध उच्चारण को ठीक करेगा और आवश्यकता पड़ने पर किसी शब्द का सीधा अर्थ बता देगा।

भाव परीक्षा प्रश्न—(१) ओरछा नरेश किस प्रकार युद्ध कर रहे थे ?

(२) बुन्देलों के युद्ध कौशल को देखकर दारा की सेना की क्या दशा हो गई ?

सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न—(१) कविता में वीर-सुभट शब्द किस के लिए आया है ?
(२) ओरछा नरेश को वीर सुभट क्यों कहा गया है ?
(३) कवि ने करबाल-कालिका शब्द का प्रयोग किस के लिए किया है ?
(४) यहाँ तलवार की समानता कालिका से क्यों की गई है ?
(५) "उन्मत्त रोष" से कवि का क्या तात्पर्य है ?
(६) युद्ध स्थल में वीर पुरुष दीवाने क्यों हो जाते हैं ?
(७) 'हर हर' का महाघोष कौन कर रहे थे ?
(८) शत्रु सेना पर इस महाघोष का क्या प्रभाव पड़ा ?

अब छात्राध्यापक प्रथम अन्विति के भावों से मिलती जुलती एक अन्य कविता छात्रों के सामने प्रस्तुत करेगा।

समानान्तर कविता—

रंचक राना ने देर न की।
घोड़ा बढ़ आया हाथी पर॥
बैरी दल का सिर काट काट।
राणा चढ़ आया हाथी पर॥

करबाल उठा कर राणा ने।
बैरी का मस्तक काट लिया॥
ताण्डव करते लड़ते लड़ते।
भाले ने लोहू चाट लिया॥

द्वितीय अन्विति

तब देख ... ...ठेल दिया

वाचन—(क) छात्राध्यापक द्वारा द्वितीय अन्विति का भावपूर्ण, लयानुसार, सस्वर आदर्श वाचन।

(ख) छात्रों के द्वारा द्वितीय अन्विति का अनुकरणीय वाचन, छात्राध्यापक बालकों के अशुद्ध उच्चारण को ठीक करेगा और यदि बालकों को कोई शब्द कठिन प्रतीत होगा, तो उसका सीधा अर्थ बता दिया जायगा।

भाव-परीक्षा प्रश्न—

(१) भागते हुए सैनिकों को दारा ने किस प्रकार लौटाया ?
(२) उत्साहित होकर दारा के सैनिकों ने क्या किया ?

सौन्दर्य निर्देशक प्रश्न—

(१) "तेग तबर की श्रान" से कवि का क्या तात्पर्य है ?
(२) दारा ने अपने सैनिकों को यह कसम क्यों दिलाई ?
(३) "मर कर जी लो" में क्या भाव पाया जाता है ?
(४) "जीने पर रहे गुमान तुम्हें" यह शब्द किससे कहे ?
(५) दारा ने इन शब्दों का प्रयोग क्यों किया ?
(६) सेना पर इन शब्दों का क्या प्रभाव पड़ा ?
(७) 'रण में रेल दिया' से क्या भाव निकलता है ?
(८) 'जलती ज्वाला' इस शब्द के द्वारा कवि क्या कहना चाहता है ?
(९) रण भूमि को जलती ज्वाला क्यों कहा है ?

अब छात्राध्यापक द्वितीय अन्विति के भावों से मिलती जुलती एम अन्य कविता छात्रों के सामने प्रस्तुत करेगा ।

समानान्तर कविता—

"क्या देख रहे हो हे शेरो ।
रण भूमि नहीं सोने को है ।।
दूना उत्साह बढ़ा फिर से ।
जननी के वीर सपूतों में ।।
फिर भभक उठी क्रोधाग्नि शीघ्र ।
उन क्षत्रिय वीर कुमारों में ।।
वे कूद पड़े अरि तोपों के ।
दुर्गम गोलों की मारों में ।।

आवृत्यात्मक प्रश्न—

(१) ओरछा नरेश के युद्ध कौशल का वर्णन अपने शब्दों में करो ।

(२) दारा के भागते हुए सैनिक कैसे वापिस लौटे ?

अन्तिम वाचन—कक्षा में काव्यमय वातावरण बनाए रखने के लिए मूल कविता का फिर से वाचन करवाया जाएगा।

गृह कार्य—किन्हीं दो पदों के भाव अपने शब्दों में लिखकर लाओ।

UNIVERSITY QUESTIONS

(1) Plan notes of a lesson on any poem for class IX in a period of 40 minutes.

(2) Prepare a lesson note on the teaching of "adjectives" to class VI.

(3) Write detailed teaching notes on a composition lesson. Select the subject yourself, giving the name of class to which the lesson will be given.

(५) किसी एक पर पाठ-संकेत बनाइए:—

(क) सन्धि

(ख) समास

(ग) तुलसीदास या कबीर के छै (६) दोहे।

(६) कक्षा ८ को सिखाने के लिए "रचना" का एक पाठ-संकेत प्रस्तुत कीजिए और यह बताइए कि इसमें किन उद्देश्यों की पूर्ति होगी ?

(६) सातवीं कक्षा को पढ़ाने के लिए, देश भक्ति से सम्बन्धित किसी कविता का पाठ-संकेत बनाइए जो ३५ मिनट में पूरा हो सके।

१८—वर्नन मैलिन्सन "—टीचिंग ए मार्डन लैंगवेज।"

१९—योगेन्द्र नाथ —"भाषा कैसे पढ़ाएं ?"

२०—लाबैक एफ० सी० —"टीचिंग इल्लिट्रेट्स।"

२१—लाबैक एफ० सी० —"टूवार्ड ए लिटरेट वर्ल्ड।"

—:•:—